गुप्तकालीन कला का उद्भव एवं विकास : स्थापत्य कला के विशेष सन्दर्भ में

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

से इतिहास विषय में

पी-एच.डी.

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2009

शोध निर्देशिका
डॉ0 (श्रीमती) मंजू जौहरी
रीडर
इतिहास-विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (जालौन)
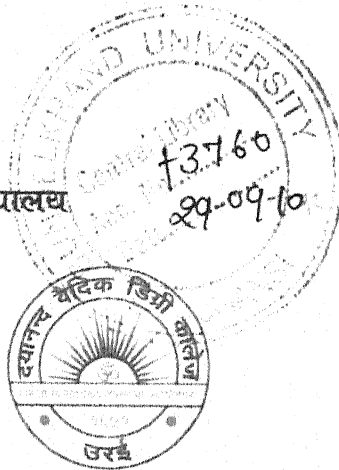
शोधकर्ता
मृत्युञ्जय शरण शुक्ल
प्रवक्ता (इतिहास)
डी.ए.वी. इण्टर कालेज
उरई (जालौन)

शोध केन्द्र
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (जालौन), उ0प्र0 285001

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री मृत्युंजय शरण शुक्ल आत्मज कैप्टन श्रीनाथ शुक्ल, जो बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में इतिहास विषय में पी–एच0डी0 की उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में शोध कार्य हेतु पंजीकृत थे, ने अपना शोध कार्य पूर्ण कर लिया है। इनका शोध विषय है– **''गुप्तकालीन कला का उद्भव एवं विकास : स्थापत्य कला के विशेष संदर्भ में''**

मैं यह भी प्रमाणित करती हूँ कि –

1. मेरी पूर्ण जानकारी में यह शोध प्रबन्ध मौलिक है और अनुसंधानकर्ता के अथक प्रयासों का परिणाम है।
2. अनुसंधानकर्ता (श्री मृत्युंजय शरण शुक्ल) ने मेरे निर्देशन में 200 दिन उपस्थित होकर अपना शोध कार्य पूर्ण किया है।

शोध निदेशिका,

Manju Jauhri

डॉ0 (श्रीमती) मंजू जौहरी
रीडर (इतिहास विभाग)
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, उरई (जालौन)

घोषणा - पत्र

मैं शपथ पूर्वक घोषणा करता हूँ कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मेरी मौलिक कृति है। मेरी जानकारी के अनुसार इस कार्य को इसके पूर्व किसी के द्वारा अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

शोधकर्ता

मृत्युंजय शरण शुक्ल

मृत्युंजय शरण शुक्ल
प्रवक्ता (इतिहास)
डी०ए०वी० इण्टर कालेज,
उरई (जालौन)

भूमिका

किसी भी राष्ट्र की प्राचीनता और भव्यता का मूल्यांकन उसके ऐतिहासिक और मानवीय स्रोतों से किया जा सकता है। इतिहास सभ्यताओं और संस्कृतियों के बारे में जानने का मूल माध्यम है। इतिहास और संस्कृति की पड़ताल से ही किसी राष्ट्र के अस्मिता का मूल्यांकन किया जा सकता है। ऐतिहासिक स्रोत केवल किसी सभ्यता की प्राचीनता का ही सन्देश नहीं देते हैं अपितु उसकी भव्यता और कलात्मक वैभव का भी दस्तावेज प्रस्तुत करते हैं। इतिहास का मुख्य उपादान कला भी किसी राष्ट्र की गरिमा का मूल्यांकन करती है। कला न केवल अतीत के अतीतत्व अपितु वर्तमान की वर्तमानता तथा भविष्य के भविष्यत्व का भी बोध कराती है।

कला आत्मा का श्रेष्ठ अंश है। क्योंकि कलात्मक प्रतिरूप संवेदनाओं का प्रतिफल होता है। बात यदि स्थापत्य कला की की जाय तो यह और भी प्रासंगिक हो जाती है क्योंकि मानवीय पीढ़ी के पास अपनी प्राचीन भव्यता के बारे में जानने का बड़ा स्रोत स्थापत्य ही है। कला का उत्कृष्टतम रूप स्थापत्य मानवीय संवेदना का सजग दस्तावेज माना जाता है।

भारतीय स्थापत्य परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इतिहास को जानने के प्रमुख स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय स्थापत्य परम्परा विश्व की स्थापत्य परम्पराओं में सदैव सर्वश्रेष्ठ रही है। भारतीय स्थापत्य परम्परा की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें जनता की धार्मिक, सामाजिक आदि सभी चित्तवृत्तियों का सुन्दरतम निदर्शन मिलता है। एक साथ विशिष्ट मानवीय संवेदनाओं का इतना विराट चित्रण शायद ही किसी संस्कृति की स्थापत्य कला में मिलता है। अनुभव, संवदेना और मनोवृत्ति का सुन्दर समन्वय भारतीय स्थापत्य परम्परा में सहज ही ढूढ़ा जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य के माध्यम से शोधकर्ता का यह विनम्र प्रयास है कि भारतीय स्थापत्य कला की विशेषतायें तलाश करके

कला के मूल्यों की पड़ताल की जाये। पूर्व में स्थापित इस अवधारणा का कि "गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है", का सम्यक विवेचन करना भी शोधकर्ता का एक उद्देश्य है। गुप्तकाल की कला विशेष रूप से स्थापत्य कला को रेखांकित करना और विश्लेषित करना शोधकर्ता का प्रधान लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शोधकर्ता द्वारा पूर्वाग्रह मुक्त होकर इतिहास की नब्ज टटोलने के लिए सम्बन्धित विषय हेतु कुछ अध्यायों का निर्माण किया गया है जिसका विश्लेषण इस प्रकार है–

सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध को 5 अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय के पूर्व में प्रस्तावना को शामिल किया गया है जिसमें कला का अर्थ, भारतीय कला का उदभव एवं विकास एवं भारतीय कला की विशेषतायें सम्मिलित हैं। शोध प्रबन्ध को क्रमवार व्यवस्थित करने के लिए प्रस्तावना एक आधार का कार्य करती है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में प्राकगुप्तकालीन कला पर प्रकाश डाला गया है जिसमें शुंग काल की कला, शक–कुषाण काल की कला तथा सातवाहन कला मुख्य है। शुंग काल की कला में भरहुत तथा साँची के स्तूपों का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। कुषाण कालीन कला में गान्धार एवं मथुरा शैली के विभिन्न पक्षों पर विधिवत चर्चा की गयी है। सातवाहन कला में अमरावती तथा नागार्जुनकोण्डा के स्तूप एवं इस युग में निर्मित चैत्यगृहों की चर्चा की गयी है।

द्वितीय अध्याय में गुप्तकालीन चित्रकला का विवेचन किया गया है। विश्व प्रसिद्ध अजन्ता एवं बाघ के चित्र गुप्तकालीन चित्रकला के उत्कृष्टता की कहानी बयान करते हैं जिसकी समुचित विवेचना इस अध्याय में की गयी है। इसके अतिरिक्त गुप्तकालीन मुद्रा चित्रकला पर भी प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय गुप्तकालीन मूर्ति एवं धातु कला से सम्बन्धित है। गुप्तकाल में बौद्ध, जैन तथा हिन्दू तीनों धर्मों से सम्बन्धित उत्कृष्ट मूर्तियों का

निर्माण किया गया था जो गुप्त शासकों के धार्मिक सहिष्णुता का सबल प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इस कालखण्ड में निर्मित तीनों धर्मों से सम्बन्धित मूर्तियों का विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मूर्तियों के साथ–साथ धातुकला का प्रस्तुतीकरण भी इस अध्याय की विशेषता है।

चतुर्थ अध्याय में गुप्तकालीन लोक, नृत्य एवं संगीत कला की समुचित विवेचना की गयी है।

पंचम अध्याय जो कि शोध प्रबन्धक का विशेष बिन्दु है, में गुप्तकालीन स्थापत्य कला के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिसमें राजप्रासाद, नागरिक शालायें, स्तूप, मंदिर तथा स्तम्भ सम्मिलित हैं। इस अध्याय में तत्कालीन साहित्यिक स्रोतों के आधार पर राजप्रासाद एवं नागरिक शालाओं की चर्चा की गयी है। स्तूप की वास्तुगत विशेषताओं के साथ ही इस काल में निर्मित सारनाथ के धमेख स्तूप पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। इस काल में दो प्रकार के मंदिर बने– संरचनात्मक तथा गुहा मंदिर। संरचनात्मक मंदिरों में भूमरा के शिव मंदिर, नचना कुठार का पार्वती मंदिर, देवगढ़ का दशावतार मंदिर, भीतरीगांव का विष्णु मंदिर उल्लेखनीय है जिसकी विस्तृत विवेचना इस अध्याय में की गयी है। मंदिरों में "शिखर का प्रादुर्भाव" स्थापत्य की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। गुहा मंदिरों में अजन्ता, एलोरा, बाघ, उदयगिरी, मंदागिरी के गुहा वास्तु पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है। अन्त में गुप्तकालीन स्तम्भों का विवेचन किया गया है।

शोधकर्ता द्वारा उपर्युक्त शोधकार्य के माध्यम से यह दिखाने का विनम्र प्रयास किया गया है कि गुप्तकाल की कलात्मक विशेषता किन अर्थों में विशिष्ट है। विवेच्य युग की कला विशेष रूप से स्थापत्य कला का मूल्यांकन करते समय यह तथ्य बार–बार उभरकर सामने आया कि यह युग अपनी कलात्मक प्रतिभा में अद्वितीय है।

आभार

जिनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ, उनमें प्रमुख हैं : डॉ0(श्रीमती) मंजू जौहरी (रीडर, इतिहास विभाग, दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई) – जिन्होंने मेरे लिए निर्देशक के साथ–साथ बड़ी बहन की भूमिका का भी वरेण्य निर्वाह किया; स्व0 श्री विजय करन नाथ विसारिया – जिनका आशीर्वाद संघर्ष पथ को सुगम बनाने में सक्षम है; पूज्य पिता कैप्टन श्री श्रीनाथ शुक्ल एवं मातृसत्ता श्रीमती ज्ञानधारिणी शुक्ला– जिनकी असीम कृपा का उल्लेख शब्दातीत है; धर्मपत्नी श्रीमती नीतू शुक्ला– जिनका मूक समर्थन कार्य की निरन्तरता का प्रतीक है।

इस प्रबन्ध में विषय चयन से लेकर कार्य की परिणति पर्यन्त जिन महानुभावों, अग्रजों, सहधर्मियों ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया उनके प्रति भी मैं श्रद्धावनत हूँ।

इस प्रबन्ध में जिन विद्वानों/समीक्षकों की कृतियों से मैंने लाभ उठाया, प्रेरणा ग्रहण की उनके प्रति भी मैं साधुवाद ज्ञापित करता हूँ। इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में श्री राजेश गुप्ता जी का अमूल्य सहयोग विस्मृत नहीं किया जा सकता, उनके प्रति भी कृतज्ञ होना मेरा परम धर्म है।

अन्ततः यह प्रबन्ध कला की उसी आत्मचेतस् सत्ता को समर्पित है, जिसके "भीतर पैठने" की कोशिश की गई है।

मृत्युंजय शरण शुक्ल

20 मार्च, 2009

मृत्युंजय शरण शुक्ल
शोध छात्र, इतिहास विभाग,
प्रवक्ता, डी0ए0वी0 इण्टर कालेज,
उरई (जालौन)

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

प्रस्तावना

कला मनुष्य की वह रचना है जो उसके जीवन में आनन्द प्रदान करती है। अपने मनोगत भावों को सौन्दर्य के साथ दृश्य रूप में व्यक्त करना ही कला है। मनुष्य के सृजनात्मक वाह्य, मूर्त रूप को जिसमें संतुलन, अनुपात तथा सामंजस्य है, कला कहा जा सकता है। यह वह भाव अभिव्यक्ति है, जो शीघ्रता से मन को छू सके। यह कल्पना को व्यक्त करने का एक माध्यम है।

आचार्य क्षेमराज के अनुसार– ''अपने (स्व) किसी न किसी वस्तु के माध्यम से व्यक्त करना ही कला है और यह अभिव्यक्ति चित्र, नृत्य, मूर्ति, वाद्य आदि के माध्यम से होती है।'' इस प्रकार कला मनुष्य की सौन्दर्य भावना को मूर्त रूप प्रदान करती है। प्राचीन काल में कला को साहित्य और संगीत के समकक्ष मानते हुए उसे मनुष्य के लिए आवश्यक बताया गया है। भर्तृहरि ने अपने 'नीतिशतक' में लिखा है कि– ''साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीनः।''

अर्थात् ''साहित्य, संगीत तथा कला से हीन मनुष्य पूछ और सींग से रहित साक्षात् पशु के समान है।''

कला का अर्थ :

कला शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' में हुआ है। ऋग्वेद में एक स्थान पर उल्लिखित है कि– ''यथा कला यथा शफ, मध शृण स नयामति''। इसी प्रकार इस शब्द का प्रयोग शतपथ– ब्राह्ण, षद्विंश ब्राह्ण, सांख्यायन–ब्राह्ण, तैन्तरीय ब्राह्मण, आरण्यण ग्रन्थ तथा अथर्ववेद में भी मिलता है। परन्तु यहाँ कला के अर्थ को कौशल, शिल्प या हुनर के रूप में प्रयोग नहीं किया गया है। सर्वप्रथम 'कला' शब्द का यथार्थवादी प्रयोग भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में प्रथम

शताब्दी में किया– 'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न साविधा न सा कला।' अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, जिसमें कोई ज्ञान नहीं, कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, जो कला न हो।

ज्ञान, शिल्प, विधा से अलग कला का आशय भरतमुनि के लिए क्या था, यह निश्चित करना कठिन है? परन्तु अनुमान यही लगता है कि भरतमुनि द्वारा प्रयुक्त कला शब्द ललित कला के लिए एवं शिल्प शायद उपयोगी कला के लिए प्रयुक्त किया गया है।

कला शब्द संस्कृत भाषा का है। इसकी व्युत्पत्ति विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। कतिपय विद्वानों का मत है कि कला शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'कल्' धातु में अच् तथा टाप् प्रत्यय (कल + अच् + टाप्) से लगाने से हुई है। संस्कृत कोश में यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, जैसे– किसी वस्तु का छोटा खण्ड, चन्द्रमा का सोलहवां अंश, शोभा, अलंकरण, कुशलता, मेधाविता आदि। अंग्रेजी भाषा में इसे "आर्ट" कहा गया है। फ्रेंच में आर्ट और लैटिन में 'आर्ट्म' और 'आर्स' से कला को व्यक्त किया गया है। इन सबके अर्थ वही है, जो संस्कृत भाषा की मूल धातु 'अर' के हैं। 'अर' का अर्थ है– बनना, पैदा करना अथवा रचना करना। इस प्रकार कला के अर्थ के आधीन उसके दो प्रयोजन सामने आते है, जिससे ज्ञात होता है कि कला सुन्दर, सुखद एवं मधुर सृजन है और कला शिल्प कौशल की प्रक्रिया है। इस प्रकार कला का अर्थ है– "शिल्प कौशल की प्रक्रिया से युक्त सुन्दर एवं सुखद सृजन रूप।"

कुछ विद्वानों के अनुसार 'कला' दो शब्दों 'क' + 'ला' से मिलकर बना है। 'क' का अर्थ है– कामदेव सौन्दर्य तथा आनन्द एवं 'ला' का अर्थ है– देना, 'कलांति ददाती ति कला"। इस प्रकार सौन्दर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु को कला कहते हैं।

वात्स्यायन के ''कामसूत्र'' में तथा ''शुक्रनीति'' आदि ग्रन्थों में 64 कलाओं का उल्लेख है। यद्यपि इन कलाओं के नामांकन में अवश्य भेद हैं, परन्तु सब कलाओं के अन्तः स्वरूप के दृष्टिकोण में समानता प्रतीत होती है। क्षेमेन्द्र ने भी अपनी पुस्तक ''कला विलास'' में चौसठ को उपयोगी कलाओं के नाम से सम्बोधित किया है और उनका लक्ष्य अर्थ, काम और मोक्ष माना है। अतः किसी प्रकार के कौशलपूर्ण क्रिया–सृजन को कला कहा जा सकता है, जिसके द्वारा अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति संभव हो सके। इसके अन्तर्गत ललित और उपयोगी दोनों ही श्रेणी की कलाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

कला की अवधारणाएँ –

कतिपय विद्वानों ने कला की परिभाषाएँ अलग–अलग तरीके से दी हैं, जो निम्नलिखित हैं–

मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार – ''कला वास्तव में शिवत्व की उपलब्धि के लिए सत्य और सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति है।''

भोलानाथ तिवारी के अनुसार – ''शारीरिक या मानसिक कौशल, जिसका प्रयोग किसी कृत्रिम निर्माण में किया जाय, वही कला है।''

प्लेटो के अनुसार – ''प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर वस्तु को अपना प्रेमास्पद चुनता है, अतः कला का प्राण सौन्दर्य है। उन्होंने कला को सत्य की अनुकृति माना है।''

अरस्तु के अनुसार – ''कला अनुकरणीय है।''

हीगल के अनुसार – ''कला आदि भौतिक सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम है।''

क्रोचे के अनुसार – ''कला वाह्य प्रभाव की आन्तरिक अभिव्यक्ति है।''

टॉलसटाय के अनुसार – ''क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि, शब्द आदि के द्वारा भावों की

वह अभिव्यक्ति जो श्रोता, दर्शक एवं पाठक के मन में भी वही भाव जागृत कर दे, कला है।''

इस प्रकार कला को परिभाषित करना कठिन है। आज तक कोई भी कला की सम्पूर्ण व्याख्या नहीं कर सका है। कला का अर्थ अत्यन्त व्यापक है और इसके असंख्य रूप तथा भेद किये जा सकते हैं। परन्तु जब इसका प्रयोग ललित कला तक किया जाता है, तो यह संकुचित रूप में ही लिया जाता है। कृति, जिसमें सौन्दर्य का बोध हो, वही कला है। प्रत्येक कलाकृति से कलाकार व दर्शक दोनों को ही यदि एक प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त हो, तो उसे सच्चे अर्थों में कला की संज्ञा दी जा सकती है। ''कला का मुख्य उद्देश्य मानव जगत को अतिशय आनन्द एवं प्रचुर उल्लास प्रदान करना है। कला मानव की उस अभ्यान्तरिक अभिव्यक्ति का प्रतीक है, जिसमें आकस्मिक सौन्दर्य तथा अतिशय आनन्द की अनुभूति होती है। यथार्थ रूप में कला मानव की वह अनुपम उपलब्धि है, जिसे मूर्तिमान करके वह 'स्वान्तः सुखाय' की अनुभूति ही नहीं, अपितु 'परजन हिताय' के पक्ष को साकार करके राष्ट्रीय गौरव का सुखद अनुभव करता है।''

कला का वर्गीकरण –

आधुनिक काल में कला का वर्गीकरण दो बिन्दुओं के आधार पर किया गया है–

(1) उपयोगी कला :

उपयोगी कला मानव समाज के लिए उपयोगी होती है।

(2) ललित कला :

ललित कला का नामकरण पाश्चात्य सम्पर्क की देन है। ललित कला सौन्दर्य प्रधान होती है। पाश्चात्य विद्वानों ने ललित कलाओं के अन्तर्गत

पाँच कलाएँ मानी है, जो इस प्रकार हैं– काव्य, संगीत, चित्रकला, मूर्ति कला, स्थापत्य या वास्तु कला। इनमें काव्य कला, अर्थ प्रधान, संगीत कला ध्वनि प्रधान और अन्य कलाएं रूप प्रधान हैं।

स्थापत्य शब्द की व्युत्पत्ति –

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय "गुप्तकालीन कला का उद्‌भव एवं विकास, स्थापत्य कला के विशेष सन्दर्भ में" है। इसलिए यहाँ स्थापत्य शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश डाल देना प्रासंगिक होगा।

स्थापत्य शब्द 'स्थपति' से उद्‌भूत है, जो 'स्थ' धातु एवं 'पति' प्रत्यय की सन्धि से बना है। संस्कृत भाषा की मूल धातु स्थ का अर्थ है– स्थित होना। इसी धातु से स्थिर, स्थावर, स्थान, स्थिति आदि शब्दों का जन्म हुआ है। चूँकि भवन स्थिर अवस्था में रहने वाला एक विशेष स्थान होता है और उसके निर्माणकर्ता को स्वामी अथवा पति 'स्थपति' कहा गया, इस कारण स्थपति द्वारा निर्मित रचना को स्थापत्य कहा गया। स्थापत्य शब्द का एक पर्याय वास्तु है। वास्तु शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'वस्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है वसना। चूँकि निवास के लिए भवन की आवश्यकता होती है, अतएव वास्तु का अर्थ है– रहने योग्य भवन। इसी वस् धातु से वास, आवास, बस्ती आदि शब्दों का निर्माण हुआ। अंग्रेजी में स्थापत्य के लिए 'आर्किटेक्चर' शब्द मिलता है, जो ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'आर्की' (प्रमुख) और 'टेक्टान' (निर्माता) से मिलकर बना है। आर्कीटेक्टान का ही परिवर्तित रूप आर्किटेक्चर है।

वास्तु विधा के चार आधारभूत विषय हैं– धरा, हर्म्य, पर्यङ्क तथा यान। प्राचीन भारतीय साहित्य में वास्तुविद्या से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं– वृहत्संहिता, मानसार मयमतम, समरांगण–सूत्रधार,

विष्णु धर्मोत्तर पुराण, शिल्प रत्नसार, विश्वकर्मीय प्रकाश। इसके अतिरिक्त अग्नि तथा मत्स्य पुराण, कमिकागम, अंशुभेदागम, सुप्रभेदागम्, रूपमण्डन आदि ग्रन्थ भी वास्तु विधा पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

भारतीय कला का उद्भव एवं विकास :

भारतीय कला का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता का। मानव ने जबसे सभ्यता के दहलीज पर पांव रखा, तभी से उसने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए कला को एक माध्यम के रूप में चुना। इसका प्रमाण हमें मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित भीमवेटिका की गुफाओं से प्राप्त होता है। इन गुफाओं में मानव द्वारा निर्मित चित्र, मूतियाँ तथा औजार पाये गये हैं जो उनके आश्रय स्थल तथा कला में रुचि का पुख्ता प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

हड़प्पा संस्कृति में अत्यन्त परिपक्व कला के दर्शन होते हैं। हड़प्पा संस्कृति के पुरास्थलों के उत्खनन से सुव्यवस्थित नगर योजना के अन्तर्गत दुर्ग निर्माण, रक्षा प्राचीर, पकी हुई ईंटों से निर्मित आवासीय भवन, सार्वजनिक निर्माण (वृहत्त स्नानागार, विशाल अन्नागार, सभा भवन), उत्कृष्ट सार्वजनिक जल निकास प्रणाली के प्रमाण प्राप्त होते हैं, जो इस संस्कृति के विकसित वास्तु कला की ओर संकेत करते हैं। इसके अतिरिक्त इस सभ्यता का कलात्मक अनुपम नमूना बहुसंख्यक मुहरों और उन पर बनी हुई सजीव आकृतियों, पत्थर एवं कांस्य की मूर्तियों, सुन्दर आभूषणों, चाँदी एवं कांस्य निर्मित कामदार बर्तनों तथा चित्रकारी से युक्त मिट्टी के बर्तनों में देखा जा सकता है। ये विश्व की प्राचीन कलाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

सिन्धु सभ्यता के पतन के काल (लगभग 1500 ईसा पूर्व) से लेकर मौर्य वंश की स्थापना (लगभग 324 ईसा पूर्व) के पूर्व के इस मध्यवर्ती काल में

कला के विषय में बहुत कम साक्ष्य प्राप्त होता है। इस काल में भारतीय कला के इतिहास एवं उसकी परम्परा में निरन्तरता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। वैदिक साहित्य के साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि शिल्प एवं कला के नमूने लकड़ी आदि पर संभवतः बनाये जाते थे। वैदिक साहित्य में विश्वकर्मा को ब्रह्म की संतान मानते हुए उन्हें समस्त कलाओं का जनक बताया गया है। ऋग्वेद में स्थापत्य, मूर्ति एवं चित्रकला के अनेक प्रसंग मिलते हैं। रामायण एवं महाभारत में भी स्थापत्य एवं मूर्तिकला से जुड़े अनेक प्रसंग हैं।

छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में भारत में दो महान पुरुषों– महात्मा बुद्ध तथा महावीर जैन– का आविर्भाव हुआ। उन्होंने क्रमशः बौद्ध एवं जैन धर्मों का सूत्रपात किया। उनके विचारों से तत्कालीन भारत की धार्मिक मान्यताओं, विचारशैली तथा जीवन मूल्यों में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। इसके साथ ही कला तथा स्थापत्य के क्षेत्र में भी नवीन रचनाओं एवं अवधारणाओं का समावेश हुआ। बौद्ध ग्रन्थों एवं पाणिनी के अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है कि इस कालखण्ड में कला तथा स्थापत्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई थी। पाणिनी के अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है कि इस काल में कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में नगर नियोजन की राजसभा, भण्डारागार, कोषागार, आपण आदि के निर्माण की विधि का समुचित ज्ञान हो चुका था। बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि महागोविन्द नामक प्रसिद्ध वास्तुकार अनेक नगरों का निर्माता था। महा उम्मान जातक में एक विशाल राजप्रासाद का उल्लेख है, जो चारों ओर से प्राकार एवं परिखा से घिरा था। इसमें विविध प्रकार की चित्रकारी की गई थी। इस युग का एक प्रमुख स्मारक राजगृह का विशाल प्रस्तर प्राचीर है, जिसे इतिहासकारों ने 'साइक्लोपियन वाल' की संज्ञा दी है। प्राकमौर्य युगीन कला का एक अन्य उत्कृष्ट उदाहरण पिपरहवा का स्तूप है। यह स्तूप ईटों द्वारा निर्मित था। इसका व्यास लगभग 116 फुट तथा

ऊँचाई 22 फुट थी। यहाँ से प्राप्त अस्थि कलश पर एक लेख उत्कीर्ण है, जिसे प्राकमौर्ययुगीन माना जाता है।

बिहार के चम्पारन जिले में स्थित लौरियानन्दगढ़ का शवाधान भी प्राकमौर्ययुगीन माना जाता है। यहाँ के उत्खनन से प्राप्त स्वर्णपत्ती पर अंकित 'नग्ननारी मूर्ति' की पहचान वैदिक मातृ देवी से की गई है। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों से प्राप्त आहत मुद्राओं पर विविध प्रकार के चिन्ह इस युग के उत्कृष्ट कला की ओर संकेत करते हैं।

मौर्यकाल में कला के क्षेत्र में काफी विकास हुआ। मौर्य शासकों द्वारा स्थापित राजनीतिक एकता, शान्ति एवं सुरक्षा तथा आर्थिक समृद्धि के फलस्वरूप कला के विकास के लिए एक उपयुक्त वातावरण तैयार हुआ।

मौर्ययुगीन कला को दो भागों में बाँटा गया है– राजकीय कला तथा लोक कला। राजकीय कला के अन्तर्गत चन्द्रगुप्त के विशाल राजप्रासाद, अशोक के स्तम्भ, गुहा विहार, स्तूप का उल्लेख किया जा सकता है। चन्द्रगुप्त कालीन कला का उदाहरण उसका विशाल राजप्रासाद है जो पटना के समीप कुम्रहार की खुदाई से प्राप्त हुआ है। यह विशाल राज प्रासाद चौथी शताब्दी में सुरक्षित था क्योंकि चीनी यात्री फाह्यियान ने स्वयं इसको देखा था। उसने इसकी प्रशंसा में कहा था– "यह मनुष्य की कृति नहीं, अपितु देवो द्वारा निर्मित है।" अशोककालीन कला के उदाहरण उसके एकाश्मक स्तम्भ तथा स्तम्भों को मण्डित करने वाली मूर्तियाँ, स्तूप, गुहा विहार आदि हैं। इनमें अशोक के एकाश्मक स्तम्भ तथा इन स्तम्भों को मण्डित करने वाली मूर्तियाँ मौर्य युगीन कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इन स्तम्भों की संख्या लगभग 30 रही होगी और ये सभी चुनार (मिर्जापुर) के बलुए पत्थर से बने हैं। इन स्तम्भों पर चमकदार पालिश है। अशोक के स्तम्भों में सारनाथ के स्तम्भ का सिंह शीर्ष अपने कलात्मक लालित्य के लिए

विश्व प्रसिद्ध है। बौद्ध परम्परा के अनुसार अशोक ने 84 हजार स्तूपों का निर्माण करवाया। अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ के काल में बिहार प्रान्त के गया जिले में बराबर तथा नागार्जुनी पहाड़ियों की ठोस चट्टानों को काटकर गुहाओं का निर्माण किया गया। इनमें लोमेश ऋषि की गुफा, सुदामा गुफा, कर्ण चौपण गुफा तथा गोपिका गुफा उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त मौर्यकाल की लोक कला के उदाहरण पाषाण निर्मित विशालकाय यक्ष–याक्षिणी की वे प्रतिमाएँ हैं जो मथुरा पद्मावती, पटना के दीदारगंज, राजघाट, विदिशा आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं।

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत को एक बार फिर राजनीतिक अस्थिरता का सामना करना पड़ा परन्तु कला का अनवरत् विकास होता रहा। इसका प्रमाण हमें साँची तथा भरहुत के स्तूपों से प्राप्त होता है। शुंग काल में साँची तथा भरहुत के स्तूपों को विकसित एवं पविर्द्धित कर उसके समस्त अंगों को सम्पूर्णता प्रदान की गई।

कुषाण काल में भारतीय कला के स्वरूप में और निखार आया। इस काल में कला की दो शैलियाँ– गान्धार कला और मथुरा कला– विकसित हुई। इन शैलियों में निर्मित मूर्तियाँ विकसित कला का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। गान्धार कला के अन्तर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्वों की बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण हुआ जिस पर यूनानी प्रभाव देखा जा सकता है। मथुरा शैली में बुद्ध की मूर्तियों के साथ–साथ हिन्दू एवं जैन धर्म से भी सम्बन्धित मूर्तियों का निर्माण हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल की स्वर्ण एवं ताम्र मुद्राएँ भी कला की श्रेष्ठता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। मौर्योत्तर काल में दकन भी कला के विकास से अछूता न रहा। सातवाहन काल में अमरावती तथा नागार्जुनीकोण्डा के स्तूपों तथा भाजा, कोण्डाने, पीतलखोरा, कान्हेरी, कार्ले आदि चैत्यगृहों का निर्माण हुआ।

प्राचीन भारतीय इतिहास के क्षितिज पर गुप्तों का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। गुप्तों के नेतृत्व में भारत ने एक बार पुनः राजनीति एकता का साक्षात्कार किया। गुप्तवंश में योग्य सम्राटों की एक लम्बी श्रृंखला रही, जिन्होंने न केवल भारत में राजनीतिक स्थिरता प्रदान करने में योगदान दिया अपितु उन्होंने सांस्कृतिक विकास में भी अविस्मरणीय योगदान दिया। इस काल में भारतीय संस्कृति का सर्वांगीण विकास हुआ। परिणामस्वरूप गुप्तकाल भारतीय इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है। इस काल में राजनीतिक स्थिरता, शान्ति एवं सुरक्षा तथा आर्थिक समृद्धि के फलस्वरूप ऐसा अनुकूल वातावरण तैयार हुआ जिससे कला के प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई।

गुप्तकलीन स्थापत्य कला के उल्लेखनीय उदाहरण राजप्रासाद, नागरिक शालाएं, स्तूप, मंदिर तथा स्तम्भ है। विश्व प्रसिद्ध अजन्ता एवं बाघ के चित्र इसी युग की देन है जो मानव भावनाओं को अनुपम एवं सशक्त रूप से व्यक्त करते हैं। इस काल में मूर्तिकला के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इस कालखण्ड में हिन्दू, बौद्ध तथा जैन तीनों धर्मों से सम्बन्धित अनेक प्रभावशाली मूर्तियों का निर्माण हुआ जो अपनी स्वाभाविकता, सजीवता तथा विविधता के लिए प्रसिद्ध हैं। नृत्य एवं संगीत कला की धारा भी इस युग में प्रवाहित होती रही। गुप्त वंश का महान शासक समुद्र गुप्त स्वयं एक कुशल वीणा वादक था। गुप्तकालीन कला की विशेषता तत्कालीन मुद्राओं पर भी दृष्टिगोचर होती हैं।

गुप्त काल के बाद भी कला का विकास होता रहा। वास्तव में गुप्त काल से 12वीं शती तक का काल मंदिर वास्तु की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस काल में मुख्य रूप से तीन शैलियों– नागर शैली, बेसर शैली एवं द्रविड़ शैली का प्रादुर्भाव हुआ। नागर शैली के अन्तर्गत चौकोर गर्भ गृह के ऊपर झुकी हुई रेखाओं से युक्त उत्तर भारत के शिखर युक्त मंदिर आते हैं।

चन्देलकालीन खजुराहो के मंदिर नागर शैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। दक्षिणी भारत में द्रविड़ शैली विकसित हुई। तंजौर का वृहदेश्वर मंदिर द्रविड़शैली की उल्लेखनीय कृति है। बेसर शैली में नागर एवं द्रविड़ दोनों शैलियों की विशेषताएँ पायी जाती हैं। चालुक्य शासकों द्वारा निर्मित अधिकांश मंदिर बेसर शैली के हैं।

इस प्रकार पाषाण काल से लेकर 12वीं शती तक विभिन्न युगों की कला पर दृष्टि डालने से भारतीय कला के क्रमिक विकास की गाथा का स्पष्ट रूप से ज्ञान होता है। भारतीय कला नित नये प्रतिमानों के साथ आज भी अनवरत् जारी है।

भारतीय कला की विशेषताएँ :

किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने का एक सशक्त माध्यम, उस देश की कला होती है। भारतीय कलाकारों ने कला के प्रत्येक क्षेत्र में कालजयी कृतियों का निर्माण किया है। भारतीय कला की कुछ ऐसी मौलिक विशेषताएं हैं जो उसे अन्य देशों की कला से पृथक करती हैं। ये विशेषताएं उसे स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करती हैं और इन विशेषताओं के आधार पर उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

1. धार्मिकता –

भारतीय कला की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह धर्मप्रधान है। भारतीय संस्कृति का प्रधान तत्व धार्मिकता अथवा आध्यात्मिकता की प्रबल भावना है जिसने उसके सभी पक्षों को प्रभावित किया है। कला भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय कला आध्यात्मिक एवं धार्मिक भावनाओं से सदैव अनुप्राणित रही है।

भारतीय कला के सभी पक्षों– वास्तु या स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला आदि पर धर्म का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। भारतीय कलाकारों द्वारा

हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि सभी धर्मों से सम्बन्धित मंदिरों, मूर्तियों एवं चित्रों का निर्माण किया है। भारतीय कला का सृजन विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों की सेवा के लिए हुआ था। भारतीय कला ने कलाविदों एवं शिल्पकारों ने धार्मिक उदारता तथा साम्प्रदायिक सहिष्णुता को विशिष्ट स्थान दिया गया है।

इस संदर्भ में यह भी कहना प्रासंगिक होगा कि भारतीय कला में धर्म के साथ–साथ लौकिक विषयों को भी कला में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन भारत के अनेक धार्मिक स्मारकों में लौकिक एवं धर्मेत्तर कलाकृतियों के भी साक्ष्य मिले हैं। भारतीय कलाकारों ने धार्मिक रचनाओं के साथ–साथ लौकिक जीवन से भी सम्बन्धित मूर्तियों तथा चित्रों का निर्माण बहुतायत में किया है। इस प्रकार धार्मिकता तथा लौकिकता का सुन्दर समन्वय हमें भारतीय कला में देखने को मिलता है।

2. अभिव्यक्ति की प्रधानता –

भारतीय कला में अभिव्यक्ति की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। भारतीय कलाकारों ने अपनी कुशलता का प्रदर्शन शरीर के यथार्थ चित्रण या फिर सौन्दर्य को उभारने में नहीं, अपितु आन्तरिक भावों को उभारने का प्रयास अधिक किया है। इसका साक्षात् उदाहरण बुद्ध की मूर्तियाँ हैं जो विशुद्ध भारतीय शैली में निर्मित है। किसी भी मूर्ति को देखकर ह्रदय आनन्द विभोर हो उठता है।

3. पारम्परिकता –

भारतीय कला की एक विशेषता यह है कि इस पर प्राचीन परम्पराओं का गम्भीर प्रभाव देखने को मिलता है। परम्परा का निर्वाह भारतीय कला का एक प्रबल एवं सशक्त पक्ष है, दोष या अवरोध नहीं। पाषाण काल से लेकर सिन्धु घाटी सभ्यता से होते हुए भारतीय कला की धारा निरन्तर अविरल

गति से प्रवाहित होती रही है। यह कला परम्परा से प्रेरित थी। भारतीय कला ने परम्परा का सर्वत्र सम्मान देखने को मिलता है परन्तु किसी भी काल में इसका अन्धानुकरण नहीं किया गया है। भारतीय कलाकारों ने परम्परा और यथार्थ के बीच संतुलन बनाये रखने का यथासंभव प्रयास किया है।

4. प्रतीकात्मकता –

भारतीय कला की एक विशेषता उसकी प्रतीकात्मकता में निहित है। प्रतीक प्रस्तुत और स्थूल पदार्थ होता है, जो किसी अप्रस्तुत सूक्ष्म भाव या अनुभूति का मानसिक आविर्भाव करता है।

भारतीय कला में कुछ प्रतीकों के माध्यम से अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त कर दिया गया है। मंदिर वास्तु पुरुष का प्रतीक है। मूर्ति देवता के विग्रह का प्रतीक है। ब्रह्म, विष्णु तथा शिव की प्रतिमाएँ सृष्टि पालन एवं संहार करने वाली शक्तियों की प्रतीक हैं। पद्म, चक्र, हंस, मिथुन, स्वास्तिक आदि प्रतीकों के माध्यम से विभिन्न भावनाओं को व्यक्त किया गया है। पद्म प्राण या जीवन का, चक्र काल या गति का प्रतीक माना गया है। नाग एवं जटाजूट से निकलती जलधारा 'शिव का प्रतीक' है। मोर पंख या मुरली कृष्ण का प्रतीक है। कमल पर स्थित 'श्री लक्ष्मी' एक ओर सम्पन्नता का प्रतीक हैं, तो दूसरी ओर पद्मासन पर विराजमान होकर भौतिकता से निर्लिप्त रहने का आशय प्रकट करती हैं। स्वास्तिक की चार आड़ी खड़ी रेखायें चार दिशाओं की, चार लोकों की, चार प्रकार की सृष्टि की तथा सृष्टिकर्ता "चतुर्भुज ब्रह्म" का प्रतीक है। इसकी आड़ी और खड़ी दो रेखाओं और उसके चारों सिरों पर जुड़ी चार भुजाओं को मिलाकर सूर्य की छः रश्मियों का प्रतीक माना गया है, जो गति एवं काल का भी प्रतीक है। देव प्रतिमाएँ तथा पशु, वृक्ष आदि भी भाव विशेष के प्रतीक बने हैं। शिव का वाहन नन्दी, विष्णु का वाहन गरुड़ तथा दुर्गा का वाहन

सिंह, गणेश का वाहन मूषक, वृक्षों में पीपल तथा आंवला भी प्रतीक रूप में ही पूजे गये हैं। कुषाण युग के पूर्व महात्मा बुद्ध का अंकन भी प्रतीक के माध्यम से किया गया है। अशोक के सारनाथ शीर्ष स्तम्भ की फलक पर उत्कीर्ण चार पशुओं– गज, बैल, अश्व, सिंह, के माध्यम से क्रमशः महात्मा बुद्ध के विचार, जन्म, गृह त्याग तथा सार्वभौम सत्ता के भावों को व्यक्त किया गया है। भारतीय कला में कई अनेक शुभ तथा मंगल सूचक प्रतीक भी दिखाई देते हैं।

5. अनामता –

भारतीय कलाकारों ने जिन कालजयी कृतियों का निर्माण किया है, उनमें कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है। भारतीय कलाकार धर्म एवं कर्म के प्रति समर्पित थे। उन्होंने कला के प्रति समर्पित भावना रखते हुए अपनी कृतियों का निर्माण किया।

6. समन्वय की प्रवृत्ति –

भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता समन्वयवादिता है। यह प्रवृत्ति कलात्मक कृतियों के माध्यम से मूर्तमान हो उठी हैं। भारतीय कला में सुकुमारता का गम्भीरता के साथ, रमणीयता का संयम के साथ, आध्यात्म का सौन्दर्य के साथ तथा यथार्थ का आदर्श के साथ सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

7. राष्ट्रीय एकता की संदेशवाहिका –

भारतीय कला राष्ट्रीय एकता को स्थूल रूप में प्रकट करने का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। कलाकारों द्वारा निर्मित मूर्तियों में समान लक्षण एवं मुद्राएँ दृष्टिगोचर होती हैं। भारतीय कलाकारों ने जिन कालजयी कृतियों का निर्माण किया है, उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि वे किसी देशव्यापी संस्था द्वारा तैयार

की गई है। यद्यपि उनमें कुछ स्थानीय विभिन्नताएँ हैं, परन्तु उनकी सामान्य शैली एक ही प्रकार की है। भारतीय कला के माध्यम से भारतीय एकता की भावना साकार हो उठती है। भारतीय कला राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने के साथ–साथ "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की चेतना" को भी जागृत करने का एक मुख्य स्रोत है।

8. संस्कृति की संवाहिका –

किसी देश की कला, वहाँ की "संस्कृति की संवाहिका" होती है। कला ही किसी राष्ट्र के संस्कृति का पैमाना है। भारतीय कला इस सिद्धान्त में शत–प्रतिशत खरी उतरती है।

9. अलंकरण –

भारतीय कला में अलंकरण का अत्याधिक महत्व है क्योंकि भारतीय कलाकार ने सत्यं, शिवम् के साथ सुन्दरम् की कल्पना की है और इसलिए सुन्दर तथा आदर्श रूप के लिए वह अलंकरणों का अपनी रचना में प्रयोग करता है। भारतीय कलाकारों ने अपनी कृतियों को विविध प्रकार से अलंकृत करने का प्रयास किया है।

10. सर्वांगीणता –

भारतीय कला की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सर्वांगीणता दृष्टिगोचर होती है। इस कला में राजा तथा सामान्य–जन दोनों का चित्रण मुक्त रूप से हुआ है। भारतीय कलाकारों ने कुलीन वर्ग तथा सामान्य जनता दोनों के लिए रुचिकर रचनाओं का निर्माण किया है।

11. उपयोगी एवं ललित कला में अभेद –

प्राचीन भारतीय कला में उपयोगी एवं ललित कला के रूप में कला

का वर्गीकरण नहीं किया गया है। पाश्चात्य परम्परा में कला का वर्गीकरण उपयोगी एवं ललित कला के रूप में किया गया है, परन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण प्राचीन भारतीय कला में नहीं है।

12. सार्वभौमिकता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता –

भारतीय कला देश की सीमाओं का अतिक्रमण कर दक्षिण पूर्वी एशिया तथा मध्य एशिया तक जा पहुँची। भारतीय कला के अनेक तत्व दक्षिण पूर्वी एशिया तथा मध्य एशिया की कलाओं में ग्रहण किये गये। प्रसिद्ध कलाविद् आनन्द कुमार स्वामी ने दक्षिण पूर्वी एशिया की कला को भारतीय कला का ही एक अंग माना है। मध्य एशिया के अनेक स्तूपों तथा मूर्तियों पर गान्धार कला का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। अतः सार्वभौमिकता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता को भी भारतीय कला की एक विशेषता स्वीकार किया जा सकता है।

इस प्रकार भारतीय कला शाश्वत सत्य का प्रतीक है क्योंकि सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् की सशक्त भावना से युक्त होने के कारण इसमें एक नवीनता दृष्टिगोचर होती है। भारतीय कला में मनुष्य के उल्लासमय जीवन में हर्ष और आनन्द के भाव सर्वत्र फूटते दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकृति के प्रत्येक कार्य व्यापार में उल्लिसित चेतना का संचरण हो रहा है। प्रागैतिहासिक काल की कला से लेकर आज तक की भारतीय कलाकृतियों में मानव मन में उत्साह, उत्प्रेरणा और आनन्द का भाव सर्वत्र विद्यमान है।

प्रथम अध्याय

प्राक गुप्तकालीन कला

(अ) शुंगकालीन कला

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात भारत में जिस नए वंश की स्थापना हुई उसे शुंगवंश के नाम से जाना जाता है। इस वंश का संस्थापक पुष्यमित्र शुंग था जिसने अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर इस वंश की स्थापना की। शुंगों का शासन काल लगभग 112 वर्षों (184 B.C.–72 B.C.) तक रहा। इस सत्ता परिवर्तन का प्रभाव कला पर भी पड़ा। इस काल में राजकीय कला के स्थान पर लोककला को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। शुंगकाल की कला का विषय धर्म की अपेक्षा लौकिक जीवन से अधिक सम्बन्धित है। इस समय की कला कृतियों में जो विविध चित्र उत्कीर्ण मिलते हैं, उनसे तत्कालीन जनजीवन को समझने में आसानी होती है।

यद्यपि शुंग सातवाहन काल सनातन हिन्दू धर्म को पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए सदैव याद किया जायेगा। परन्तु एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि यदि हिन्दू धर्म के कुछ स्मारकों को छोड़ दिया जाए, तो इस युग के सभी महत्वपूर्ण स्मारक बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित हैं। कुछ विद्वानों ने पुष्यमित्र शुंग को बौद्ध विरोधी माना है। परन्तु इस काल के स्मारकों के आधार पर पुष्यमित्र शुंग के बौद्ध विरोधी होने का मत खण्डित हो जाता है। इस काल के स्मारकों से स्पष्ट है कि शुंग काल में भी बौद्ध धर्म को शासन का पर्याप्त संरक्षण था।

आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल ने शुंगकला के विषय में लिखा है– ''यह युग संस्कृत साहित्य तथा क्रान्तिकारी धार्मिक आन्दोलन का वह काल था जब रामायण, महाभारत एवं पुराणों की रचना और पुनर्गठन के बहुमुखी प्रयत्न हुए। कला के क्षेत्र में देश के अनेक केन्द्रों में पाषाण घटित शिल्प और स्थापत्य का व्यापक प्रचार हुआ। स्तूप, तोरण–वेदिका और मूर्तियों की रचना के लिए

पत्थर का प्रयोग सामान्य बात हो गयी। भरहुत, साँची और अमरावती जैसे महाचेतिय या बड़े स्तूप इस युग में बने। बोध गया के बोधिमण्ड या वज्रासन के चारों ओर पत्थर की वेष्टिनी या वेदिका और उसके बीच में चार तोरण द्वार इसी युग की कृतियाँ है। पत्थर में नाना भाँति की उकेरी या नक्काशी एवं अलंकरण, अभिप्राय एवं मूर्तियाँ इसी युग के शिल्पियों की रचनाएँ हैं, जिनमें देश के आगे आने वाले मार्गीय शिल्प का सूत्रपात होता है। जनता में यक्ष, नाग, आदि लोक देवताओं के लिए जो धार्मिक मान्यता और बौद्ध धर्म के प्रति जो आस्था थी, उसका अंकन एक साथ पत्थर पर किया जाने लगा और उसमें कलात्मक सौन्दर्य और विचित्र नई शोभा की सृष्टि की गई। न केवल आकार में अति विशालकाय कृतियों की रचना की गई, जैसे भरहुत और साँची के प्रभविष्णु स्तूप और महान वेदिका युक्त तोरण द्वार, किन्तु सुन्दर गढ़ी हुई मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की गई। एक ओर वास्तुशास्त्र के नए विधान स्थिर किए गए, दूसरी ओर मूर्ति शिल्प में लालित्य और रूप विधान का भी विकास हुआ जिसके फलस्वरूप चन्द्रायक्षी, चुलकोका–महाकोका देवता, सुदर्शना यक्षी जैसी सुन्दर स्त्री मूर्तियों की रचना की गई है, जिनमें एक ओर गात्र यष्टि की पूरी शोभा है और दूसरी ओर केश–विन्यास, विशेषक–रचना, अनेक प्रकार के आभूषणों और वस्त्रों द्वारा सौन्दर्य विधान का बहुत अच्छा विकास मिलता है। इसी के साथ शुंगकालीन कला में रसतत्व और आनन्द को भी विशेष स्थान दिया गया है। स्त्री–पुरुषों के मुखों पर प्रफुल्लता से भरा हुआ दिव्य आनन्द छलकता हुआ दिखाई देता है। कला में इस प्रकार का हँसता मुखी सौन्दर्य एवं मग्नानन्दी अंकन तभी होता है, जब कलाकार शिल्पी हँसते–खेलते लोकजीवन के साथ तन्मय हो गया हो। शुंग कला की यह विशेषता है कि उसमें सैकड़ों मार्गों से लोक के प्राणवन्त जीवन को अभिव्यक्त होने का स्थान मिला है।''[1]

कुमार स्वामी ने शुंग कला के विषय में लिखा है– "इसका प्रधान विषय अथवा नैतिक न होकर पूर्णतया मानव जीवन से सम्बन्धित है।"[2] इस काल के सर्वोत्तम स्मारक स्तूप हैं जो मध्य प्रदेश के भरहुत, साँची तथा बिहार के बोध गया से प्राप्त होते हैं। स्तूप मिट्टी का बड़ा भारी थूहा होता था जो चिता के स्थान पर बनाया जाता था। इसे चैत्य भी कहते थे।

भरहुत तथा साँची के स्तूप शुंग कला की अद्वितीय कृति है। इनका विवेचन निम्नलिखित है–

भरहुत का स्तूप –

भरहुत का स्तूप मध्य प्रदेश के सतना जिले में सतना से लगभग 15 किमी0 दूर दक्षिण दिशा में स्थित था। इस स्तूप की खोज सर्वप्रथम 1873 ई0 में जनरल कनिंघम ने की थी। स्तूप के टीले में कनिंघम को मौर्यकालीन ईंटें प्राप्त हुई थी। इससे ज्ञात होता है कि इस स्तूप का निर्माण मौर्यकालीन शासक अशोक के काल में ही किया गया था। शुंग काल में इस स्तूप का विकास, विस्तार एवं साज–सज्जा आदि हुई। यह स्तूप अब पूरी तरह से नष्ट हो चुका है तथा मात्र नींव ही शेष है। इसका मुख्य कारण यह था कि आसपास गाँव वाले मकान बनाने के लिए इसमें से ईंट व पत्थर निकाल कर लेते गये हैं।[3] कनिंघम तथा उनके सहायक जोड़ीदार जे0डी0 बेगलर को इस स्थान के पुरातात्विक अन्वेषण में स्तूप की वेदिका से कुल "47 स्तम्भ एवं तोरण द्वार" के कतिपय अवशेष प्राप्त हुए थे। ये वर्तमान में ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन तथा कलकत्ता के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। इनमें से 35 भरहुत के मुख्य स्थल से तथा शेष समीप के भटवारा एवं पटौरा नामक ग्रामीण क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं।[4] बेनी माधव बरुआ तथा वी0एम0 व्यास को भरहुत वेदिका के 33 स्तम्भ, 3 सूची एवं 14 उष्णीष प्राप्त हुए हैं। ये अवशेष इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित हैं। कुछ अन्य अवशेष भारत कला भवन

वाराणसी तथा सतना जिले के तुलसी स्मारक संग्रहालय रामवन में भी रखे गये हैं। इसके दो खण्ड प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय बम्बई की शोभा बढ़ा रहे हैं।

भरहुत की वेदिका में तीन–चार स्थलों पर स्तूप के अग्र भाग की मूल आकृति अंकित थी जिसके आधार पर इसके वास्तविक स्वरूप के विषय में सहज अनुमान लगाया जा सकता है। स्तूप का आकार अर्द्धगोलाकार था। अशोक के काल में स्तूप का मूल भाग पत्थर के टुकड़ों की नींव पर संभवतः ईंटों का बना हुआ था, जिसे शुंग काल में पत्थरों से आच्छादित कर दिया गया था।[5] इस स्तूप का व्यास लगभग 68 फीट था। इसके चारों ओर एक पाषाण वेष्टिनी निर्मित थी जिसकी ऊँचाई लगभग 7 फीट थी। स्तूप की वेदिका में संभवतः 80 स्तम्भ थे। यद्यपि कनिंघम को केवल 49 स्तम्भ ही प्राप्त हुए हैं। वेदिका के प्रत्येक दो ऊर्ध्व स्तम्भों के बीच तीन वर्गाकार क्षैतिज सूचियां चूले काटकर फसाई गई थीं। इसकी आच्छादित चौड़ाई 56.25 तथा मोटाई 7.50 सेमी. है। अनुमान किया जाता है कि इन सूचियों की संख्या 228 रही होगी। यद्यपि कनिंघम को केवल 80 सूचियां मिली थी। सूचियों से बंधे गोलाकार स्तम्भों के ऊपर एक विशाल गोलाकार उष्णीष था। इसकी लम्बाई 300 फुट थी। स्तूप तथा वेदिका के मध्य 3.15 मी0 चौड़ा प्रदक्षिणापथ था। शुंग काल में जब इस स्तूप का जीर्णोद्धार किया गया तब इसके मुख्य घण्टाकार अण्ड को विस्तृत नहीं किया गया। परिणामस्वरूप इसके आधार के व्यास में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।[6] स्तूप के अण्ड के शीर्ष भाग पर एक वर्गाकार चबूतरा निर्मित किया गया था। इसे हार्मिका कहते थे। इसकी यष्टि में छत्र लगाये गये थे, जिसे पुष्पाहारों से अलंकृत किया गया था। इस स्तूप के तोरण द्वार सांची के स्तूप के तोरण द्वार से मिलते जुलते हैं। इन तोरण द्वारों की संख्या चार है। तोरणों में दो स्तम्भ हैं। प्रत्येक स्तम्भ आठ पहल का है। इसके शिखर अशोक के स्तम्भों की भाँति उल्टे कमल के आकार के तथा दो पर वृषभ

तथा सिंह हैं, जो एक–दूसरे की ओर पीठ किये बैठे हैं। स्तम्भों के शीर्ष भाग तीन सूचियों को संभाले हुए हैं जो बीच में थोड़ी सी कमानीदार है। इन सूचियों के बीच में कई छोटे–छोटे स्तम्भ हैं।

भरहुत की शिल्प कला –

भरहुत स्तूप के तोरण द्वारों, वेदिका स्तम्भों, सूचियों तथा उष्णीषों पर विविध प्रकार के मनोरंजक चित्र मिलते हैं। इस स्तूप में प्राकृतिक दृश्यों के अतिरिक्त लोकजीवन की अनेक मान्यताओं को रोचक ढंग से प्रदर्शित किया गया है। महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनायें तथा जातक कथाओं के दृश्य सम्बन्धित जातकों के नाम के साथ उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार यक्ष यक्षिणी, कुपिरो (कुबेर), वरूढक, सुपवश, सुचिलोग, अजकालक, सुदर्शनायक्षी, चूलकोका यक्षी, चन्द्रायक्षी, सिरिमा (श्री माँ) देवता आदि की आकृतियाँ खुदी हुई हैं। इस स्तूप में लोकजीवन, विश्वास तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का सर्वाधिक शिल्पांकन किया गया है।

भरहुत की वेदिका पर विभिन्न प्रकार का शिल्पांकन मिलता है। इसका शिल्पांकन बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा से सम्बन्धित हैं। इस शाखा में बुद्ध की मूर्ति नहीं बनाई जाती थी बल्कि उनके उपस्थिति को उनके प्रतीकों यथा छत्र, वोधि वृक्ष, धर्मचक्रपादुका, पद्‌चिन्ह, भिक्षापात्र और स्तूप आदि प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता था। इन सभी प्रतीकों का अंकन स्तूप में मिलता है। वेदिका पर अंकित दृश्यों के नाम ब्राह्मी लिपि एवं प्राकृत भाषा में मिलते हैं। अतः उनकी पहचान करना सरल हो जाता है। यहाँ के एक दृश्य में बुद्ध के जन्म को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया गया है जिसमें माया देवी को स्वप्न में स्वर्ग से आकर एक श्वेत गज को गर्भ में प्रवेश करते हुए दिखाया गया है। इसी प्रकार महानिभिष्क्रमण की एक घटना को एक एक शिला पर तीन दृश्यों द्वारा दिखाया गया है। इसमें ऊपर की ओर बुद्ध के पद चिन्ह, मध्य में सारथी के साथ

अश्वारोही रूप में बुद्ध का छत्र सहित निरूपण और नीचे छत्र सहित अश्व के साथ प्रसन्न अर्हत गुप्त एवं अन्य देवगणों का अंकन है। सम्बोधि का अंकन बोधि वृक्ष के रूपों में हुआ है। मार के सम्पूर्ण प्रयास में असफल होने के कारण खिन्न होने का भाव भी इस कला में व्यक्त है। महापरिनिर्वाण का प्रतीक 'स्तूप' का अंकन भी इस कला में दृष्टिगोचर होता है। बुद्ध के जीवन की इस चार प्रमुख घटनाओं के अतिरिक्त अन्य घटनायें भी भरहुत कला में दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे श्रावस्ती में बुद्ध द्वारा चमत्कार प्रदर्शन, स्वर्ग के देवताओं को बुद्ध का उपदेश, अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा बुद्ध को जेतवन विहार का दान इत्यादि। जातक कथाओं के दृश्य भी भरहुत कला में देखने को मिलते हैं। इन कथाओं के शिल्पांकन के लिए चयनित विषयों में विविधता है। जहाँ एक ओर गूढ़ दार्शनिक विषयों के अंकन का प्रयास किया गया है, वहीं दूसरी ओर हास्य–विनोद से सम्बन्धित दृश्यों को भी स्थान दिया गया है। इस कला में जिन जातक कथाओं का अंकन है, वे इस प्रकार हैं– 'छदन्त जातक', 'महाजनक जातक', 'वेस्सान्तर जातक', 'मूगपक्ख जातक' इत्यादि।

भरहुत की वेदिका की भाँति भरहुत के तोरण द्वार भी शिल्प कला की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। वेदिका चार भागों में विभक्त थी और प्रत्येक दिशा में प्रवेश के लिए तोरण द्वार था। इन चारों तोरणों में से केवल पूर्वी दिशा का तोरण द्वार प्राप्त हुआ है जिस पर विधिवत मूर्तन प्राप्त होता है। तोरण के ऊपर कुछ ऐतिहासिक चित्र भी अंकित मिलते हैं। उदाहरण के लिए एक दृश्य में कोशल नरेश प्रसेनजित को रथ में बैठे हुए तथा दूसरे दृश्य में मगध नरेश अजातशत्रु को भगवान बुद्ध की वन्दना करते हुए दिखाया गया है। इसी प्रकार अनाथपिण्डक द्वारा श्रावस्ती के राजकुमार से जेतवन का क्रय, जंगली हाथियों द्वारा बोधिवृक्ष पूजा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी क्रम में नागों का अंकन

भी भरहुत तोरण द्वार पर दृष्टिगोचर होता है। एक चित्र में जल से निकलते हुए एरावत नागराज को सपरिवार बोधिवृक्ष की पूजा करते दिखाया गया है। इसकी पुष्टि इस पर उत्कीर्ण अभिलेख – "एरावतो नाग भगवतो वंदते" से होती है। इसी के साथ अलंवुषा, मिश्रकेशी, सुभद्रा तथा पद्मावती नामक इन चार अप्सराओं की आकृतियाँ इनके नाम के साथ शिला फलक पर खुदे हुए हैं। भरहुत के पूर्वी तोरण द्वार पर अंकित यक्ष–यक्षिणी और नाग देवता के सम्बन्ध में डॉ0 कुमार स्वामी का मत है कि– "Inscribed figuriues of guardian Yaksha and Yakshis, Nagarajas, Devatas etc. consistite an extensive iconography are found on the tovaha parts."[7]

भरहुत के पूर्वी तोरण द्वार पर एक अभिलेख अंकित मिलता है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस तोरण द्वार का निर्माण शुंगों के राज्य में धनभूति नामक राजा ने कराया था।

भरहुत के दृश्यों में कुलीन एवं सामान्य व्यक्तियों का विभिन्न अंकन प्राप्त होता है। यहाँ के दृश्यों में राजा, धनिक, तपस्वी, ब्राह्मण, परिव्राजक तथा विभिन्न व्यवसायों वाले व्यक्तियों को उनके व्यवसायिक उपकरणों के साथ अंकित किया गया है। राजा को तेईस फलकों पर आखेटरत, द्यूत क्रीड़ारत, बुद्ध की वंदना करते, न्यायाधीश पद पर आसीन एवं सभा इत्यादि विभिन्न रूप में दर्शाया गया है। पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, फूल–पत्तियों आदि को स्तूप के अलंकरण अभिप्राय के रूप में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। स्तूप में कनिंघम को कुबेर की खड़ी मूर्ति प्राप्त हुई थी। भरहुत वेदिका पर गजलक्ष्मी का अंकन भी विशेष रूप से लोकप्रिय प्रतीत होता है। कमल के फूल पर लक्ष्मी वस्त्राभूषण पहने हुए खड़ी दिखाई गई हैं और दो हाथी उन्हें घड़ों से जल उड़ेल कर स्नान करा रहे हैं। भरहुत कला में नगरीय एवं ग्रामीण जीवन की झलक भी विशेष व सामान्य

व्यक्तियों की कलाभिव्यक्ति के रूप में ज्ञात है। सामान्य व्यक्तियों को विभिन्न कथा संदर्भों में स्थान प्राप्त है। विभिन्न वर्ग के व्यक्तियों को या तो अद्‌भुत कला के रूप में दर्शाया गया है या उनकी मानवाकार आकृतियाँ बनी हैं। मानव के रूपांकन में भरहुत के कलाकार की विशेष रुचि दिखाई पड़ती है।

भरहुत के स्तूप के अलंकरण में भारतीय जीवन दर्शन की सफल अभिव्यक्ति मिलती है। यह कला भारतीय जनजीवन का जीवन्त रूप प्रदर्शित करती है। इस कला में तत्कालीन सामाजिक जीवन की झाँकी दृष्टिगोचर होती है। समग्र रूप से ये विविध चित्र धार्मिक विचारों एवं विश्वासों, वेशभूषा, आचार व्यवहार आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उनका अंकन अत्यन्त सरल एवं प्रभावोत्पादक है। सभी दृश्यों में मानव जीवन की प्रफुल्लता एवं खुशहाली के दर्शन होते हैं।

साँची का स्तूप –

साँची मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में (अक्षांश 23′28″ उत्तर और देशान्तर 77′45″ पूर्व) ऐतिहासिक विदिशा नगरी से 9 किमी0 दूर स्थित है। यह स्थान भोपाल तथा बीना जंक्शन के बीच स्थित है। भोपाल से रेलमार्ग से इसकी दूरी लगभग 45 किमी0 है। यह स्थान सम्पूर्ण विश्व में अप्रतिम बौद्ध स्मारकों तथा पुरातात्विक सामग्री के कारण प्रसिद्ध है। पूर्वी मालवा का सबसे बड़ा स्थान होने के कारण यह स्थान महाचैत्यों के निर्माण के लिए उपयुक्त रहा होगा।

साँची की पहाड़ी पर ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर गुप्त काल तक के अवशेष प्राप्त होते हैं। इन अवशेषों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि साँची बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा। बौद्ध धर्म के एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में साँची का इतिहास उस समय से प्रारम्भ होता है जब मौर्य सम्राट अशोक ने यहाँ ईंटों के एक स्तूप का निर्माण करवाया तथा इसके दक्षिणी तोरण

द्वार के सामने चार सिंहों के युक्त एक स्तम्भ भी स्थापित करवाया था।[8] इसके पश्चात् यहाँ अनेक स्तूपों, विहारों एवं मंदिरों का निर्माण किया गया। साँची की पहाड़ी पर कई अन्य चैत्य स्थित होने के कारण इसका एक अन्य नाम चेतिय गिरि (चैत्य गिरि) पड़ा था। साँची का एक और प्राचीन नाम 'काकनादवोट' मिलता है।[9]

साँची में प्रमुख स्तूपों की संख्या 3 है। इनमें एक विशाल तथा दो छोटे स्तूप हैं। विशाल स्तूप को महास्तूप अथवा स्तूप सं0 1 के नाम से भी जाना जाता है। इसमें भगवान बुद्ध के धातु अवशेष सुरक्षित हैं। शेष दो स्तूपों को स्तूप सं0–2 तथा स्तूप सं0–3 कहा जाता है। स्तूप सं0–2 में अशोककालीन बौद्ध धर्म के प्रचारकों तथा स्तूप सं0–3 में बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों– सारिपुत्र तथा महामोद्गलायन– के धातु अवशेष हैं। स्तूप सं0–1 और 3 खास टीले पर स्थित हैं। स्तूप सं0–2 पहाड़ी के पश्चिम की ओर स्थित है। पहाड़ी पर दो बेसर आकृति के चैत्य गृह भी थे। इसके साथ ही साँची के आसपास अन्य स्थानों पर भी स्तूप का निर्माण किया गया। इन स्थानों में सोनारी, सतधारा, अधेर, भोजपुर के स्तूप उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ से विहार एवं बौद्ध मंदिर के अवशेष भी प्राप्त होते हैं।

साँची में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्मारक महास्तूप (स्तूप सं0–1) है। 1912 ईस्वीं से 1919 ईस्वी के मध्य भारतीय पुरातत्व विभाग के महानिदेशक सर जान मार्शल ने इसके ध्वसांवशेषों विशेषकर तोरण तथा वेदिका स्तम्भों को पुनः खड़ा करवाया तथा इसे मौलिक स्वरूप प्रदान किया। सन् 1936 ई0 में "मोहम्मद हमीद कुरैशी" ने पहाड़ी की ढलान पर स्थित स्तूप 1 और 2 के बीच उत्खनन कराकर एक बौद्ध विहार के अवशेष प्रकाश में लाये। यद्यपि इसके पश्चात यहाँ और कोई उत्खनन कार्य नहीं हुआ है तथापि स्मारकों का संरक्षण निर्बाध गति से

चलता रहा है। महास्तूप (स्तूप सं0–1) का विवेचन निम्नलिखित है–

महास्तूप (स्तूप सं0–1) –

साँची के महास्तूप (द्रष्टव्य चित्र सं0–1/परिशिष्ट–1) का निर्माण मौर्य सम्राट अशोक के काल में हुआ था। इस स्तूप का निर्माण ईंटों की सहायता से किया गया था तथा उसके चारों ओर काष्ट की वेदिका बनी थी। शुंगकाल में इस स्तूप का जीर्णोंद्धार किया गया। शुंगकाल में इसे पाषाण पट्टियों से जड़ा गया तथा वेदिका भी पत्थर की ही बनाई गई। इस प्रकार मूल स्तूप का आकार दो गुना हो गया। इस स्तूप का व्यास लगभग 120 फुट तथा ऊँचाई 54 फुट है। सातवाहन युग में वेदिका की चारों दिशाओं में चार तोरण द्वार लगा दिये गये। यह स्तूप तीन वेदिकाओं द्वारा तीन भूमियों में विभक्त है अर्थात्– भूमि तल, मध्य तल एवं हार्मिका भाग। इन तीनों वेदिकाओं के कारण इस स्तूप को त्रिमेधि स्तूप भी कहा गया है।

भूमि से 16 फीट की ऊँचाई पर स्तूप के अण्ड को घेरती हुई मेधि बनाई गई थी जो प्रदक्षिणापथ का कार्य करती थी। वेदिका के भीतर 7 फीट के प्रदक्षिणापथ पर शिलापट्ट बिछे हैं। यहाँ तक पहुँचने के लिए दक्षिणी दिशा में दोहरा (सीढ़ी का) सोपान मार्ग है। प्रत्येक सोपान में 25 सीढ़ियाँ थी। यह उल्लेखनीय है कि महास्तूप के बाहरी सतह को केवल हथौड़ों से तोड़कर एक समान आकार के पत्थरों द्वारा बनाया गया था जिसमें पत्थरों की सूखी जुड़ाई द्वारा बहुत कुछ सीधी पंक्तियों में चुनने का प्रयत्न किया गया है। पत्थरों की इस प्रकार की चुनाई का यह अपने प्रकार का प्रथम प्रयास प्रतीत होता है।[10] डॉ0 बाजपेयी का कथन है कि इन पत्थरों को चूने से नहीं जोड़ा गया था, केवल पत्थरों के ऊपर 4 इंच मोटा लेप किया गया है।[11] इसके ऊपर हार्मिका तथा त्रिपत्र सहित छत्र यष्टि है। हार्मिका की पाषाण मंजूषा 5 फुट 7 इंच वर्गाकार थी।

वेदिका –

स्तूप के चारो ओर भूमि तल पर पत्थर का फर्श है। यह स्तूप की पहली मेधि थी। इसी पर महावेदिका स्थित है। भरहुत के विपरीत साँची की वेदिका सादी एवं अलंकरण रहित है। यह वेदिका लगभग 3.40 मी० ऊँची है और देखने में इंग्लैण्ड के स्टोनहेंज की भाँति भव्य है।[12] वेदिका के स्तम्भ अष्टकोणिक हैं, जिन्हें एक गोलाकार उष्णीष से मंडित किया गया है। इस वेदिका स्तम्भों पर अनेक राग सूचक लेख उत्कीर्ण हैं। वास्तव में यह वेदिका अपने वृहद आकार एवं सादगी के कारण समस्त बौद्ध वास्तु का सबसे प्रभावशाली निर्माण है।[13] यद्यपि वेदिका के सभी अंग तराशे हुए पत्थरों द्वारा निर्मित किये गये हैं किन्तु उनकी जुड़ाई में काष्ठकला का प्रभाव परिलक्षित होता है।

तोरणद्वार –

तोरण शब्द संस्कृत के तोर शब्द से बना है जिसका अर्थ है मार्ग अथवा प्रवेश स्थल।[14] महास्तूप की भूमितल की वेदिका में चार विशाल तोरण द्वार हैं। सभी तोरण द्वार ईसा पूर्व पहली शताब्दी के बने लगते हैं। संभवतः इनका निर्माण वेदिका के बाद हुआ होगा। महास्तूप के चारो तोरण अलंकृत हैं। इनका निर्माण विभिन्न व्यक्तियों द्वारा करवाया गया। सबसे पहले दक्षिणी द्वार बनवाया गया था। यह मुख्य प्रवेश द्वार था। इसका निर्माण विदिशा की एक दन्तकार श्रेणी ने करवाया था। इस पर राजा श्रीशातकर्णी के शिल्पियों के अध्यक्ष वासिष्ठीपुत्र आनन्द का नाम उत्कीर्ण मिलता है। इसके पश्चात् क्रमशः उत्तरी, पूर्वी व पश्चिमी तोरण द्वार बने। इन तोरणों में चौपहल दो खम्भे हैं, जो 24 फुट ऊँचे हैं। इन पर थोड़ी सी कमानीदार ऊपर की ओर तनी हुई तीन सूचियां हैं, जिनके बीच की दूरी इनकी चौड़ाई से कुछ ही अधिक है। इनके बीच छोटे–छोटे तीन स्तम्भ हैं जो इन्हें साधने का काम करते हैं। स्तम्भों पर वर्गाकार पत्थर के

टुकड़ों पर में सूचियां रखी हुई हैं, जो दोनों तरफ से बाहर की ओर निकली हुई हैं। सबसे ऊपर खम्भे तथा सूची पर धर्म चक्र तथा त्रिरत्न थे जो खण्डित अवस्था में मिले हैं। सम्पूर्ण तोरण की ऊँचाई 34 फीट है। दक्षिणी तोरण द्वार के स्तम्भ शीर्ष पर चार सिंहों को तोरण द्वार से बाहर अशोक के स्तम्भ के चार सिंहों के संघाट से मिलते जुलते रूप में बनाया गया है।

महास्तूप की शिल्प कला –

सॉंची महास्तूप के तोरण द्वार का अलंकरण भारतीय कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ के तोरण द्वार अत्यन्त सुन्दर, कला पूर्ण तथा आकर्षक हैं। ए०एल० बाशम ने तोरणों के संदर्भ में लिखा है– "वे अपनी वास्तु से अधिक उत्कीर्ण अलंकरणों के लिए ही प्रसिद्ध हैं।"[15] यद्यपि इन तोरण द्वारों का अलंकरण बौद्ध धर्म के हीनयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं फिर भी वे तत्कालीन जीवन की एक मनोरम झाँकी प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पर महात्मा बुद्ध और उनके जीवन की घटनाओं, जातक कथाओं के साथ–साथ यक्ष–यक्षिणियों, वामन, विभिन्न पशु–पक्षियों तथा पेड़–पौधों एवं लता–पुष्पों का अंकन मिलता है। आकृतियों को उकेरने में अत्यन्त निपुणता का परिचय दिया गया है। बुद्ध के जीवन की घटनाओं का अंकन तोरण द्वार पर किया गया है। जैसे– जन्म, महानिभिष्क्रमण, सम्बोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन तथा महापरिनिर्वाण। इन घटनाओं के अंकन में बुद्ध की उपस्थिति को केवल कतिपय लाक्षणिक चिन्हों और व्यंजनों द्वारा ही सूचित किया गया है। कहीं भी उन्हें मानव रूप में प्रदर्शित नहीं किया गया है क्योंकि उन्हें बुद्धतत्व या निर्वाण प्राप्त हो चुका है।[16] महास्तूप के शिल्प में जातक कथाओं के भी दृश्य देखने को मिलते हैं। ये जातक कथायें गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्ध रखती हैं। इनमें केवल पाँच जातक दृश्यों को पहचाना गया है जो इस प्रकार हैं– छदन्त जातक, वेस्सान्तर जातक, साम जातक,

महाकपि जातक तथा अलम्बुस जातक। महास्तूप में इन्द्र, ब्रह्म, मार, नाग, यक्ष, किन्नर, सुपर्ण आदि का अंकन विशिष्ट है। इन्द्र को अनेक दृश्यों में उपस्थित दिखाया गया है। जैसे इन्द्रशाला गुहा के दृश्य में, बुद्ध के चूड़ा उत्सव दृश्य में, अध्येषण के दृश्य में। नाग–नागिनी वस्त्र आभूषण से अलंकृत मानवीय रूप में व्यक्त है तथा अपने फनों के टोप द्वारा अन्य आकृतियों से भिन्न है। यक्षों में कुछ दानवाकार आकृति वाले हैं, जो नाटे शरीर एवं मोटे पैरों वाले हैं, उन्हें कुभाण्ड कहा गया है और इन्होंने अपने हाथों में मालाएँ ले रखी हैं। महास्तूप के दक्षिणी तोरण द्वार के सबसे ऊपर के धरन के आगे वाले भाग पर बीच में कमल वन में खड़ी हुई देवी श्री लक्ष्मी का मूर्तन है। इस देवी का घटाभिषेक दो हाथी कर रहे हैं। यह शिल्प सौन्दर्य का उल्लेखनीय उदाहरण है। फूशे ने इसे माया देवी माना है किन्तु वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार इसे श्री लक्ष्मी अथवा सिरिमा मानना ही प्रासांगिक प्रतीत होता है।[17] इसी तोरण द्वार के बीच की बड़ेरी के अग्र भाग पर रामग्राम का स्तूप अंकित है।

महास्तूप के तोरण द्वार बड़ेरियों से निकले हुए समकोणों के भाग पर शालभंजिकाओं की भी सौन्दर्यमयी मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। इन्हें विभिन्न भाव–भंगिमाओं में प्रस्तुत किया गया है। उन्हें वृक्ष का अवगुंठन करती, वृक्ष की डाल को स्पर्श करती, अलसाई, आधी बैठी हुई आदि मुद्राओं में दिखाया गया है।

पशु–पक्षियों का निरूपण स्वाभाविक एवं काल्पनिक दोनों रूपों में मिलता है। काल्पनिक पशुओं में व्याल अथवा पशु उल्लेखनीय हैं। स्तम्भों के शीर्ष के रूप में पशुओं की पृष्ट संलग्न चतुरा कृतियाँ हैं। स्वाभाविक रूप से बने पशुओं में हाथियों की आकृतियाँ उल्लेखनीय हैं। महास्तूप का शिल्प वनस्पतियों से ओत–प्रोत है। अशोक, आम्र शाल आदि वृक्षों कमल, कंटकारि, कल्पलता, श्रीवृक्ष जैसे पल्लवित, पुष्पित हरे–भरे पेड़–पौधे, लताओं का अत्यन्त स्वाभाविकता के

साथ अंकन किया गया है। डॉ0 निहार रंजन ने लिखा है– "साँची के कलाकारों द्वारा फूल पत्ती एवं पशु समूह का जो अंकन किया गया है, वह उनकी अनुभूति एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति का प्रतीक है। हाथी, हिरन, कमल, लतायें, पीपल आदि अनेक वृक्ष एवं भारतीय कला के रचना, वर्ण सौन्दर्य की विशेषताओं को प्रथम बार यहाँ चित्रित किया गया है।[18]

इन दृश्यों के अतिरिक्त साँची कला में सामाजिक उत्सवों का भी अंकन दिखाया गया है। इसमें स्त्री तथा पुरुषों को वाद्य यंत्र बजाते हुए, नृत्य करते हुए प्रदर्शित किया गया है। विभिन्न वाद्य यंत्रों की उपस्थिति जैसे वीणा, ढोलक, मंजीरा आदि संगीत की रुचि का बोध कराते हैं। एक दृश्य में गजारूढ़ स्त्री पुरुष जोकि कमल वन में विहार करते हुए दिखाये गये हैं, का अंकन उल्लेखनीय है। स्त्री एवं पुरुषों के वेशभूषा का भी अंकन देखने को मिलता है। इस कला में एक विशेष प्रकार के केश विन्यास का प्रदर्शन किया गया है। पाणिनी ने इस केष–वेष की संज्ञा दी है। दक्षिणी तोरण द्वार पर अंकित गज लक्ष्मी की मूर्ति तथा पूर्वी तोरण द्वार पर शाल भंजिका के दृश्य में इस प्रकार का केश विन्यास देखने को मिलता है।

साँची में आलंकारिक अभिप्रायों को स्वतंत्र स्थान प्राप्त है। ऐसे अंकनों में सर्वाधिक चर्चित अंकन उत्तरी तोरण द्वार के दाहिने स्तम्भ के बाहरी भाग पर बना 'यष्टि का अंकन'।

इस प्रकार साँची के शिल्प भारतीय कला की अनुपम कृति है। के0डी0 बाजपेयी ने लिखा है– "यथार्थ रूप में भारतीय स्थापत्य एवं शिल्प कला की अमर कृतियाँ हैं, जिसमें आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भारतीय लोकजीवन की अद्‌भुत मधुर गाथायें संजोयी हुई हैं।"[19]

स्तूप सं0–2 –

स्तूप की संख्या 2 साँची की पहाड़ी के पश्चिमी ढलान पर महास्तूप से लगभग 325 मी0 की दूरी पर स्थित है। वास्तुगत दृष्टि से यह महास्तूप के ही समान है। 1822 AD में सर्वप्रथम जानसन ने इस स्तूप का पता लगाया था। तत्पश्चात् 1851 AD में कनिंघम ने इस स्तूप की योजनाबद्ध तरीके से खुदाई करवायी। प्रदक्षिणापथ तथा वेष्टिनी को छोड़कर स्तूप का व्यास लगभग 47 फुट है। इसकी ऊँचाई अण्ड के मस्तक तक 29 फुट तथा छत्र तक 37 फुट है।[20] महास्तूप के विपरीत इस स्तूप की वेदिका अलंकृत है। इसे "काला स्तूप" के भी नाम से जाना जाता है। इसमें कोई तोरण द्वार नहीं है। इसमें तीन वेदिकायें थी– एक भूमि तल पर, दूसरी मध्य में और तीसरी हार्मिका पर। बीच की वेदिका तक पहुँचने के लिए सोपान बनाया गया था। इस स्तूप की हार्मिका पर एक लेख उत्कीर्ण है जिससे ज्ञात होता है कि द्वितीय बौद्ध संगीति से सम्बद्ध दस बौद्ध भिक्षुओं के अस्थि अवशेष प्रस्तर की दो धातु मंजूषाओं में रखे गये थे। मंजूषाओं पर उनका नाम अंकित था। स्तूप की वेदिका शुंगकाल में निर्मित हुई थी, जिसकी पुष्टि शैलीगत विशेषताओं और वेदिका में अंकित अभिलेखों की ब्राह्मी लिपि के अक्षरों की बनावट से होती है।

इस स्तूप के भूमि तल की वेदिका सुरक्षित है, जिन पर अनेक दृश्यों को उत्कीर्ण किया गया है और ये दृश्य भारतीय कला में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इस पर वे प्रायः सभी दृश्य उत्कीर्ण मिलते हैं, जो महास्तूप के तोरणों पर मिलते हैं। महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के दृश्यों के अतिरिक्त पुष्पों में सबसे लोकप्रिय अलंकरण 'कमल का अंकन' है। कमल प्राण एवं जीवन का सर्वोत्तम वैदिक प्रतीक माना जाता था। पशुओं में मयूर, हंस तथा सारस का अंकन उल्लेखनीय है।

स्तूप सं0–3 –

यह स्तूप महास्तूप से 45 मी0 दूर उत्तर पूर्व दिशा में है। इस स्तूप का निर्माण महास्तूप (स्तूप सं0–1) तथा स्तूप सं0–2 के बाद हुआ। इसका व्यास 15 मी0 तथा शिखर के भाग को छोड़कर ऊँचाई 8.23 मी0 है। इसका अंड मूलतः गोल है और इसमें केवल एक ही तोरण द्वार है। इसकी भू वेदिका के केवल चार स्तम्भों के अवशेष ही शेष हैं। स्तम्भों के बीच में एक वृत्ताकार फलक और किनारों पर दो अर्द्धवृत्ताकार फलक हैं। इस स्तूप पर केवल एक ही छत्र था। इस स्तूप का महत्व इसलिए है कि इसमें गौतम बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र तथा महामोद्गलायन के अस्थि अवशेष रखे हुए थे।

इस स्तूप की वेदिका तथा तोरण द्वार दोनों अलंकृत हैं। इसमें मालाधारी यक्ष मूर्तियों के साथ–साथ स्तूप पूजा, बोधि वृक्ष पूजा, चक्र, स्तम्भ, गजलक्ष्मी, नाग, अश्व, हाथी, मगरमच्छ जिसके मुख से कमल बेलि निकल रही है, आदि दृश्यों का अंकन अत्यन्त आकर्षक एवं कलात्मक ढंग से किया गया है। यहाँ के शिल्प में मकर, कलश, कमल आदि के प्रतीकों से भारतीय दार्शनिक मान्यताओं का परिचय मिलता है।

विहार –

साँची में स्तूपों के अतिरिक्त मौर्यकालीन विहार के भी ध्वसावशेष प्राप्त हुए हैं। विहार वह स्थान था जिसका निर्माण बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए करवाया जाता था। विहार में प्रयुक्त ईंटों से इस बात की ओर संकेत मिलता है कि इस स्मारक का निर्माण मौर्यकालीन शासक अशोक के शासनकाल में किया गया था। यहाँ के स्मारक से प्राप्त एक ईंट पर देवी की आकृति उत्कीर्ण है जिससे ज्ञात होता है कि इस स्मारक को किसी देवी द्वारा निर्मित किया गया था। बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि अशोक का पुत्र महेन्द्र तथा उसकी माता लंका प्रस्थान करने से पूर्व कुछ समय तक यहाँ रूके थे। इस प्रकार यह विहार

राज परिवार से सम्बद्ध होने के कारण महत्वपूर्ण था। यह एक वर्गाकार विहार है और इसका आकार बहुत छोटा है। इसके मध्य में एक खुला आंगन था और चारों ओर बरामदे स्थित थे। बरामदे के पीछे चारों दिशाओं में कमरे बने हुए थे। विहार के आँगन में जल निकासी के लिए दक्षिण–पश्चिम के कोने पर नाली बनी हुई थी। इसका प्रवेश द्वार पूर्व दिशा में था। उत्खनन से जले हुए काष्ठ के अवशेष प्राप्त हुए है। ऐसा लगता है कि बरामदे के स्तम्भ तथा छत काष्ठ के बने हुए थे। उल्लेखनीय है कि मौर्य काल में काष्ठ का प्रयोग व्यापक पैमाने पर होता था।

बोधगया का स्तूप –

बिहार प्रान्त में स्थित बोधगया बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केन्द्र था। यह स्थान गया से 6 मील दूर दक्षिण में स्थित प्राचीन उरुवेला ग्राम के स्थान पर स्थित है। यह स्थान इसलिए महत्वपूर्ण है कि यहाँ गौतम बुद्ध को सम्बोधि (ज्ञान) की प्राप्ति हुई थी। कालान्तर में यह बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए एक पवित्र तीर्थस्थल बन गया।

बौद्ध अनुश्रुतियों के अनुसार सम्राट अशोक ने बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति के स्थान पर बोधि मन्दिर का निर्माण करवाया था। जिस पीपल के वृक्ष के नीचे गौतम बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी उसे "बोधिद्रम" तथा जिस स्थान पर वे आसन लगाकर बैठे थे उसे "बोधिमण्ड" कहा जाता है। यहाँ के उत्खनन से अशोक कालीन बोधिमण्डल के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनका निर्माण ओपदार पत्थरों से किया गया था।[21]

बोधि मण्डल के चारों ओर निर्मित बोधि घर को "महाबोधि–विहार" के नाम से जाना जाता है। मूल बोधिगृह अब सुरक्षित नहीं है। लेकिन इसकी आकृति भरहुत के वेदिका स्तम्भ पर मिलती है। बोधि घर के चारों ओर अशोक ने एक वेष्टिनी का निर्माण करवाया था, जिनके चारों दिशाओं की लम्बाई 258

फुट हैं। यह वेदिका साँची एवं भरहुत जैसी है परन्तु भरहुत वेदिका की भाँति अलंकृत है। अलंकरण की दृष्टि से इस वेदिका पर कल्प वृक्ष, कल्प लताएं, जातक कथायें बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्य, आसन पर बैठी मिथुन मूर्ति बोधिमण्डल पर त्रिरत्न आदि दृश्य अंकित हैं।

ध्वज स्तम्भ –

शुंग काल ध्वज स्तम्भों के निर्माण के लिए भी प्रसिद्ध है। उल्लेखनीय है कि शुंग काल के नवे शासक भागभद्र के दरबार में तक्षशिला के यवन नरेश एन्टियाल कीड्स का राजदूत हेलियोडोरस उसके विदिशा स्थित दरबार में आया था। उसने भागवत धर्म ग्रहण करके विदिशा में गरूड़ ध्वज की स्थापना कर भगवान विष्णु की पूजा की। इसी प्रकार धनदेव के अयोध्या के राणोपाली अभिलेख में केतन (ध्वज स्तम्भ) निर्माण का उल्लेख है।

ध्वज स्तम्भों के अतिरिक्त संभवतः शुंग काल में अजन्ता की नवीं और दसवीं गुफाओं का भी निर्माण किया गया जिसके चित्रों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्याय–2 में किया गया है।

इस प्रकार शुंगकालीन कला भारतीय कला में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह कला (शुंग कला) एक बड़े वर्ग के मनुष्यों के मस्तिष्क, परम्परा, संस्कृति एवं विचारधारा को प्रतिबिम्बित कर सकने में अधिक समर्थ है। अशोक ने स्तूप निर्माण की जो परम्परा शुरू की, उसका और अधिक विकास शुंग काल में देखने को मिलता है।

(ब) शक कुषाण कला

शक कला –

मौर्योत्तर काल में जिन विदेशी आक्रांताओं का भारत पर आक्रमण हुआ उनमें एक शक भी थे जो कालान्तर में भारतीय समाज में समाहित हो गये। शकों ने उत्तरी तथा पश्चिमी भारत पर थोड़े समय के लिए शासन किया। शकों का शासनकाल कला के प्रगति की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय नहीं है। शक कला के थोड़े से साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इनमें शक–क्षत्रप सोडाष के शासन काल (प्रथम सती ई0पू0) में मथुरा में निर्मित मन्दिरों का उल्लेख किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शक शासक रूद्रदामन के शासन काल में जूनागढ़ प्रान्त में स्थित सुदर्शन झील का बाँध टूट गया। इस झील को उसने अपने मंत्री सुविशाख की सहायता से ठीक करवाया जिसका उल्लेख रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में मिलता है।

कुषाण कला –

शकों के पश्चात् भारत में कुषाणों का साम्राज्य स्थापित हुआ। राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से यह युग भारतीय इतिहास का उल्लेखनीय काल था। कुषाणों ने प्रथम बार एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की थी जिसमें पूर्व में चीन तथा पश्चिम में पार्थिया का साम्राज्य था। कुषाण वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक कनिष्क था। यद्यपि कनिष्क बौद्ध मतानुयायी था लेकिन वह अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु था। उसी के शासन काल में चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर के कुण्डलवन में किया गया। इस संगीति की अध्यक्षता वसुमित्र ने की थी। अश्वघोष इस संगीति के उपाध्यक्ष थे। इस संगीति में बौर्द्ध धर्म स्पष्टतः दो सम्प्रदायों– हीनयान तथा महायान, में बँट गया। कनिष्क ने बौद्ध धर्म की महायान शाखा को अपना संरक्षण प्रदान करते हुए उसका व्यापक प्रचार–प्रसार करवाया। कनिष्क एक महान निर्माता भी था जिसके समय अनेक स्तूपों तथा विहारों का निर्माण हुआ। उसने अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) में

13 मंजिलों वाले 400 फीट ऊँचे टावर का निर्माण करवाकर उसके ऊपर एक लौह छत्र स्थापित किया। इसी के समीप उसने एक विशाल संधाराम का निर्माण करवाया जो "कनिष्क चैत्य" के नाम से सम्पूर्ण बौद्ध जगत में प्रसिद्ध था। उसने कश्मीर में कनिष्कपुर तथा तक्षशिला में सिरपक नामक नगर की स्थापना की।

कुषाण काल में कला के क्षेत्र में दो शैलियों का विकास हुआ जिसे गान्धार शैली और मथुरा शैली के नाम से जाना जाता है। इन दोनों शैलियों में "मूर्ति कला एवं स्थापत्य कला" के दर्शन होते हैं। इनका विवेचन निम्नलिखित है।

गान्धार शैली –

कला की यह शैली गान्धार क्षेत्र में पुष्पित एवं पल्लवित हुई थी जिसके कारण इसे गान्धार शैली का नाम दिया गया है। यह शैली देश के पश्चिमोत्तर प्रदेश पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान में विकसित हुई थी। गान्धार क्षेत्र में विकसित होने वाली इस कुषाण युगीन कला के महत्व की ओर ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय 1870 AD में डॉ0 लिटनर को है।

गान्धार शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है। यहाँ गान्धारि का अर्थ है– गान्धार के निवासी। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि गान्धार प्रदेश की भेड़े ऊन के लिए प्रसिद्ध थी। अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण तथा छान्दोयोग्य उपनिषद में भी गान्धार का उल्लेख मिलता है। छान्दोयोग्य उपनिषद में गान्धार देश को पश्चिम में बताया गया है और कहा गया है कि एक जाना पहचाना मार्ग गान्धार को मध्य देश से मिलाता था। पाणिनि के अष्टाध्यायी तथा महाभारत में भी गान्धार का जिक्र मिलता है। महाकाव्य में गान्धार का नरेश शकुनि को बताया गया है। मत्स्य एवं वायुपुराण में गान्धार के शासकों को "द्रुह्म का वंशज" कहा गया है। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय में जिन 16 महाजनपदों की

सूची दी गई है उनमें से गान्धार एक था। सिन्धुनद बीच में से बहता हुआ इसे दो भागों में विभाजित करता था– एक पूर्वी गान्धार जिसकी राजधानी तक्षशिला थी और दूसरा पश्चिमी गान्धार जिसकी राजधानी पुष्कावली थी। महाजनपद काल में यहाँ पुष्करसारिन् नामक राजा राज्य कर रहा था। उसने मगध नरेश बिम्बिसार के दरबार में अपना एक दूत मण्डल भेजकर उससे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया। गान्धार क्षेत्र में लगभग 200 वर्षों तक फारसी सम्राटों का आधिपत्य रहा। तत्पश्चात सिकन्दर ने इस क्षेत्र पर यूनानी प्रभाव स्थापित किया। तदन्तर यवन, शक, कुषाण राजाओं ने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में रखा।

गान्धार को ''उद्यान'' अथवा ''उड्डीयान'' स्वात देश भी कहा गया है। इस क्षेत्र का व्यापारिक महत्व भी था। पूर्वी भारत में पाटलिपुत्र से काशी, प्रयाग, कौशाम्बी, मथुरा, साकल होते हुए तक्षशिला तक जाने वाला व्यापारिक मार्ग एशियाई व्यापार की रीढ़ था। शाहबाजगढ़ी, होतीमर्दान, चारसद्दा, ओहिन्द (प्राचीन उद्भाण्ड) भी इस मार्ग से जुड़े थे। यहाँ पर विभिन्न देशों के लोगों और उनकी संस्कृतियों का सम्मिलन हुआ जिसके फलस्वरूप एक मिश्रित शैली को प्रोत्साहन मिला। कुषाण काल में गान्धार मूर्तिकला के एक प्रसिद्ध केन्द्र के रूप में विख्यात हुआ।

कनिंघम के अनुसार गान्धार की सीमायें इस प्रकार थी– पश्चिम में लम्पाक (लघमान) और नगरहार (जलालाबाद) पूर्व में सिन्धु नद, उत्तर में सुवास्तु (स्वात) और दक्षिण में कालाबाग की पहाड़ी। इस प्रकार स्वात, काबुल तथा सिन्ध इन तीन नदियों की द्रोणी से घिरा प्रदेश गान्धार था। यही महान द्रोणी गान्धार कला की जन्मभूमि थी। प्रसिद्ध कलाविद वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस कला के सात केन्द्र का नाम दिया है जो इस प्रकार है– तक्षशिला, पुष्कावली, नगरहार, स्वात घाटी या उड्डीयान कपिशा, बामियाँ, बाह्लीक या बैक्ट्रिया।[22]

गान्धार मूर्तिकला –

गान्धार कला यूनानी प्रभाव से प्रस्फुटित हुई थी। पश्चिम के विद्वानों की धारणा है कि सर्वप्रथम गान्धार कला में ही बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया गया। परन्तु यदि इस विचार को तर्क की कसौटी पर परखा जाए तो सही नहीं प्रतीत होता। प्रसिद्ध कलाविद् वासुदेव शरण अग्रवाल ने अत्यन्त तार्किक ढंग से यह सिद्ध कर दिया है कि बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण सर्वप्रथम मथुरा शैली के अन्तर्गत हुआ। उनका विचार है कि मथुरा के शिल्पकार बहुत पहले से ही यक्ष तथा नाग की सुन्दर मूर्तियाँ बना रहे थे। अतः कोई कारण नहीं है कि बुद्ध के मूर्तियों की रचना का प्रथम श्रेय उन्हें न दिया जाए।

गान्धार शैली में अनेक बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियों का निर्माण किया गया जिस पर यूनानी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस शैली में भारतीय विषयों को यूनानी ढंग से व्यक्त किया गया है। कला की इस शैली पर रोमन कला का भी प्रभाव दिखाई देता है। इसी कारण इस कला को यूनानी बौद्ध (ग्रीको–बुद्धिस्ट), इण्डोग्रीक या ग्रीको–रोमन (यूनानी–रोमीय) कला भी कहा जाता है। अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान के अनेक प्राचीन स्थलों से इस शैली की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इस कला के श्रेष्ठ उदाहरण कनिष्क एवं उसके उत्तराधिकारियों के समय के हैं।

गान्धार कला की विशेषताएं –

गान्धार कला में निम्न विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं–

01. इस शैली का मुख्य विषय बौद्ध है और एकमात्र बुद्ध की लीलाओं से अनुप्राणित है। मथुरा की भाँति यहां से ब्राह्ण एवं जैन धर्म से सम्बन्धित

मूर्तियाँ नहीं मिलती।

02. यह कला यूनानी प्रभाव से उत्पन्न होने पर भी आंतरिक एवं बाह्य रूप से भारतीय है। शैलीगत दृष्टि से यूनानी प्रभाव होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है।

03. गान्धार बुद्ध में भारतीय परम्परा के मूर्तिविज्ञान सम्बन्धी गुण मिलते हैं।

04. इस कला में बुद्ध के जीवन के दृश्यों को अत्यन्त सजीवता के साथ उकेरा गया है। इस शैली में निर्मित मूर्तियों में आध्यात्मिकता तथा भावुकता की भावना का अभाव देखने को मिलता है। इसके स्थान पर बौद्धिकता तथा शारीरिक सौन्दर्य की प्रधानता देखने को मिलती है। यहाँ की मूर्तियों में योगीश्वर बुद्ध की वह छवि देखने को नहीं मिलती जो मथुरा की बुद्ध प्रतिमाओं में दृष्टिगोचर होती है।

05. गान्धार शैली में निर्मित मूर्तियाँ काले, स्लेटी पाषाण, चूने तथा पकी मिट्टी से बनी हुई है।

06. गान्धार कला ईरानी, यूनानी तथा भारतीय संस्कृति के मिश्रण का प्रतीक मानी जा सकती है।

07. इस शैली में ऊंचे घुटने तक के जूते, चुन्नटदार अधोवस्त्र, महीन सलवटीदार वस्त्र विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं जिसे बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों में देखा जा सकता है।

08. इसमें बुद्ध रूपी मानव शरीर के यथार्थ चित्रण का विशेष ध्यान दिया गया है। इसमें बुद्ध की मांसपेशियाँ, मूछो, लहरदार बालों का अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से प्रदर्शन किया गया है।

09. इस शैली में बौद्ध प्रतिमाओं के केश विन्यास भारतीय परम्परा से भिन्न दिखाये गये हैं। इसमें बालों को घुंघराला दिखाया गया है। कहीं–कहीं पगड़ी का भी अंकन मिलता है। वस्तुतः यहाँ के शिल्पकारों ने बुद्ध को यूनानी देवता अपोलो की भाँति चित्रित किया है।

10. गान्धार शैली में बुद्ध की प्रतिमाओं को चारों ओर से गढ़ा नहीं गया है। उन्हें पीछे से अगढ़ ही छोड़ दिया गया है। परन्तु शिल्प इतना उच्चकोटि का है कि आगे–आगे देखने से वे चारो ओर से कोरी जान पड़ती है।

11. गान्धार शैली का एक विशेष गुण बुद्ध के शरीर पर पीछे का तेज पुंज है। यह विदेशी आकृतियों से लिया गया है।

12. गान्धार कला के अन्तर्गत बौद्ध मूर्ति कला के इतिहास में बुद्ध की आदमकद से भी 20 गुना अधिक ऊँची प्रतिमाओं का निर्माण किया गया। इसका उद्देश्य संभवतः बुद्ध को अतिमानव या महापुरूष के रूप में प्रदर्शित करना रहा होगा। बामियाँ के पहाड़ी को काटकर दो बावन गजा बुद्ध मूर्तियाँ बनायी गयी। इनमें एक 114 फुट तथा दूसरी 173 फुट ऊँची है।

गान्धार शैली की कुछ मूर्तियाँ –

गान्धार कला के अन्तर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्व की जिन मूर्तियों का निर्माण हुआ वे मूर्तियाँ लाहौर एवं पेशावर के संग्रहालयों में सुरक्षित है। ये मूर्तियाँ पद्मासन, ध्यान, धर्मचक्रप्रवर्तन, वरद् तथा आदि मुद्राओं में है। इस शैली के अन्तर्गत बुद्ध के जीवन तथा पूर्व जन्मों से सम्बन्धित विविध घटनाओं के दृश्यों जैसे माया की लुम्बिनी यात्रा, बुद्ध का जन्म, उनकी सप्तपदी, महानिभिष्क्रमण, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन, महापरिनिर्वाण, सिद्धार्थ और यशोधरा का विवाह, मार कन्याओं द्वारा प्रलोभन, देवताओं द्वारा बुद्ध से धर्मोपदेश की प्रार्थना, बुद्ध पर

देवदत्त द्वारा घातक प्रहार, बुद्ध को जेतवन का दान, बुद्ध का कपिल वस्तु में आगमन, मगध नरेश बिम्बिसार का बुद्ध के दर्शनार्थ आगमन, आम्रपाली द्वारा बुद्ध को आम्रवन का दान, अंगुलिमाल का हृदय परिवर्तन, धातु पूजा का अंकन आदि किया गया है। कुछ दृश्य अत्यन्त कारूणिक तथा प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं। उदाहरण स्वरूप एक दृश्य में तपस्या के कारण बुद्ध का शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया है। यह गान्धार कला के सर्वोत्तम नमूनों में से एक है। इसमें तपस्वी बुद्ध के शरीर को यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में कलाकार को अद्भुत सफलता मिली है। इस दृश्य में बुद्ध के नसों तथा पसलियों को अत्यन्त कुशलता के साथ उभारा गया है। उनका पेट अन्दर की ओर धंसा दिखाया गया है। किन्तु उनके मुख पर जो शान्ति है वह उनकी दृढ़ इच्छा को प्रकट करती है। सहरी वहलोल से प्राप्त बुद्ध की खड़ी मूर्ति (द्रष्टव्य चित्र सं0–2/परिशिष्ट–2) जो 8 फुट 8 इंच ऊँची है, गान्धार शैली का श्रेष्ठ नमूना है। यह मूर्ति अपने महाप्रमाण, सौम्य दर्शन तथा करूणामयी दृष्टि से दर्शकों एवं उपासकों के मन पर गहरा प्रभाव उत्पन्न करती है। इसमें बुद्ध को लम्बा–लबादा पहने मूछों से युक्त दिखाया गया है। यह प्रतिमा छाया मण्डल, उष्णीष एवं संघाटी युक्त है। चारसद्दा के समीप स्वात ढेरी से प्राप्त बुद्ध मूर्ति में प्रभा मण्डल नहीं है, किन्तु संघाटी में आकुंचन तथा चेहरे पर मूछों का अंकन है, कुंचित केशों को सवांर कर उष्णीष बनाया गया है।

गान्धार शैली के अन्तर्गत शाह जी की ढेरी से प्राप्त स्वर्णिम 'अस्थि मंजूषा' पर प्रभामण्डल युक्त अभय मुद्रा में गौतमबुद्ध को मध्य में बैठे दिखाया गया है तथा दोनों पार्श्व में प्रभामण्डल युक्त दो बोधिसत्व हाथ जोड़े–जोड़े खड़े दिखाये गये हैं। इसकी बारी में उड़ते हुए हंसों का अंकन है। पेटिका की बाहरी गोलाई के तल पर मालाधारी देव को प्रदर्शित किया गया है। माला की लचक के बीच में ध्यान मुद्रा में प्रभामण्डल युक्त बुद्ध और प्रभामण्डल युक्त अन्य दो देव

आकृतियाँ है। इस पेटिका पर जो अंकित लेख है, उससे 'कनिष्क विहार' का प्रमाण मिलता है।[23] यह गान्धार कला की अनुपम कृति है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय कला में देवताओं के मूर्तन में स्पष्ट रूप से प्रभामण्डल का प्रयोग गान्धार शैली के अनुकरण पर हुआ था। इस शैली में महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ अपने सूक्ष्म विस्तार के बाद भी मशीन द्वारा निर्मित प्रतीत होती है। इसमें वह सहजता तथा भावानात्मक स्नेह नहीं मिलता, जो भरहुत, साँची तथा अमरावती की मूर्तियों में देखने को मिलता है। गान्धार शैली में बोधिसत्व मूर्तियों में सबसे अधिक मैत्रेय की मूर्तियाँ हैं। कुछ मूर्तियाँ अवलोकितेश्वर तथा पद्मपाणि की भी प्राप्त होती हैं।

बुद्ध तथा बोधिसत्व मूर्तियों के अतिरिक्त गान्धार कला में कुछ देवी–देवताओं की भी मूर्तियाँ मिलती हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। उल्लेखनीय है कि बौद्ध धर्म में नारी का कोई विशेष स्थान नहीं था। इन मूर्तियों में हारीति तथा रोमा अथवा एथिना देवी की मूर्तियाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। हारीति सौभाग्य तथा धनधान्य की अधिष्ठात्री थी और उन्हें मातृ देवी के रूप में पूजा जाता था।[24] वासुदेव शरण अग्रवाल ने रोमा देवी की मूर्ति जो कि लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित है, गान्धार कला की सर्वोत्तम मूर्तियों में स्थान दिया है। इन्हें सिर पर टोप धारण किये तथा हाथ में बर्छा लिए दिखाया गया है। उनके मुखमण्डल से तेज निकल रहा है। हारीति की कुछ चतुर्भुजी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। गान्धार कला में शालभंजिकाओं का अंकन भी सफलता पूर्वक किया गया है।

गान्धार कला अपने यूनानी स्वरूप के कारण भारतीय कला की मुख्य धारा से पृथक रही तथा इसका विस्तार पश्चिमोत्तर भारत में ही रहा। मार्शल ने लिखा है– "यूनानी तथा रोमन कलाओं ने गान्धार शैली को जन्म देने के अतिरिक्त भारतीय कला के ऊपर कभी भी वैसा प्रभाव उत्पन्न नहीं किया,

जैसाकि इटली अथवा पश्चिम एशिया की कला के ऊपर। यूनान तथा भारत के दृष्टिकोण मूलतः भिन्न थे। यूनानी मनुष्य के सौन्दर्य एवं बुद्धि को ही सर्वेसर्वा समझते थे। भारतीय दृष्टि में लौकितता के स्थान पर अमरत्व तथा ससीम के स्थान पर असीम की प्रधानता थी। यूनानी विचार नैतिक एवं बुद्धि प्रधान था, जबकि भारतीय विचार अध्यात्मिक एवं भावना प्रधान था।"[25] एशिया के विशाल भू–भाग पर शताब्दियों तक राज्य करने वाली इस कला शैली का सौन्दर्य बोध अपनी प्रेरणा भूमि भारत को नगण्य रूप से प्रभावित कर सका। परन्तु भारत के बाहर इस कला का व्यापक प्रभाव पड़ा। इसने जापान, चीन, कोरिया, मंगोलिया की बौद्ध कला को जन्म दिया।

गान्धार वास्तु –

गान्धार क्षेत्र से कुषाणकालीन वास्तुकला के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। ये उदाहरण हमें तक्षशिला, जण्डियाल, तख्त–ए–बाही, देहरी, कपिशा, कश्मीर से प्राप्त हुए हैं।

तक्षशिला का एक अन्य नाम भद्र शिला भी मिलता है। यह सिन्धु के पूर्व में गान्धार की राजधानी, कला का प्रधान केन्द्र और व्यापार की बड़ी मण्डी थी। स्थापत्य की दृष्टि से यहाँ की सबसे उल्लेखनीय स्मारक "धर्मराजिका स्तूप" है। इसे "चीर स्तूप" के नाम से भी जाना जाता है। आकृति में गोल इस स्तूप का निर्माण एक ऊची मेधि पर हुआ था जिसके चारों दिशाओं में चार सोपान बने थे। इस स्तूप के निर्माण में पत्थरों का प्रयोग किया गया है। मूलरूप से इस स्तूप का निर्माण अशोक के काल में हुआ था परन्तु कुषाण शासक कनिष्क के शासन काल में इसका कायाकल्प किया गया। इसे नीचे से ऊपर तक विभिन्न प्रकार के अलंकरणों से सजाया गया। स्तूप के पाद मूल में बनी मेधि प्रदक्षिणापथ का कार्य करती थी। इस स्तूप के समीप एक विहार का भी निर्माण किया गया था। इस

स्तूप के सम्बन्ध में डॉ0 कुमारस्वामी का मत है कि– "Dharmarajika stupa originally scythoparthjan repaired and enlarged in the Kusana period and partly refaced in the fourth century"।[26] तक्षशिला के समीप स्थित सिरपक एवं सिरमुख नामक स्थान से भी कुषाण युग के वास्तु के दर्शन होते हैं। सिरमुख में एक विशाल दुर्ग का निर्माण किया गया था जिसका प्राकार पत्थर के ढोको का है और बीच–बीच में अर्द्धगोलाकार अट्टालक या बुर्ज है। उनके पीछे किले के भीतर एक चौड़ी सड़क थी। किले के भीतर एक राजप्रसाद का भी अवशेष मिलता है।[27]

तक्षशिला के निकट ही "जाण्डियाल का मन्दिर" गान्धार वास्तु का एक सुन्दर उदाहरण है। इस मन्दिर के निर्माण में यूनानी कला का प्रभाव दिखाई देता है। "तख्त–ए–बाही" में भी अनेक स्तूप एवं विहार प्राप्त होते हैं। यहाँ से एक बौद्ध मठ प्राप्त हुआ था। काबुल नदी के तट पर स्थित शाह जी की ढेरी नामक स्थान से एक महास्तूप प्राप्त हुआ है जिसका निर्माण कनिष्क ने करवाया था। इस स्तूप का उत्खनन डी0वी0 स्पूनर ने करवाया था। यह गान्धार स्थापत्य का सबसे विशाल एवं भव्य स्मारक था। तेरह मंजिला मीनार के समान दिखने वाला यह स्तूप लगभग 214 मी0 ऊँचा था।[28] इस स्तूप की मंजूषा पर कनिष्क का लेख उत्कीर्ण मिलता है। बामियान एवं नगरहार केन्द्र से भी स्तूप एवं संघाराम के अवशेष प्राप्त हुए हैं। नगरहार की पहचान वर्तमान जलालाबाद के निकट हद्दा से की गई है। यहाँ का बौद्ध विहार नव विहार के नाम से प्रसिद्ध था। बामियान में अनेक गुफायें भी प्राप्त होती है जिन पर अजन्ता जैसे भित्ति चित्र प्राप्त होते हैं।

कपिशा से भी कुषाण कालीन कुछ पुरावशेष प्राप्त होते हैं। इसकी पहचान बेग्राम से की गई है। यह उत्तरापथ का दूसरा महत्वपूर्ण स्थान था।

पुरातात्विक दृष्टि से यह अफगानिस्तान का सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण स्थान है।[29] कपिशा कुषाणों को ग्रीष्म कालीन राजधानी भी थी। कपिशा का उल्लेख रोमन लेखक प्लिनी तथ्य चीनी यात्री हुएगसांग ने भी किया है। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार यहाँ से दत्तफलक प्राप्त हुए हैं जो किसी समय श्रृंगार पेटियों या रत्न मंजूषाओं के अंग थे।[30] यहाँ के कनिष्क प्रासाद क्षेत्र से यूनानी प्रभाव वाली शीशे एवं कांसे की कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं।

कुषाण शासक हुविष्क ने कश्मीर में हुष्कपुर नामक नगर की स्थापना की थी। यहाँ से अनेक विहार एवं स्तूप प्राप्त हुए हैं। यहाँ के विहार वास्तु शैली की दृष्टि से तख्त–ए–बाही के विहार सदृश है।

गान्धार कला के नमूने कुषाण वंश के अन्त के पश्चात् भी रहे। ये स्मारक 400 ईस्वी में ज्यों–के–त्यों विद्यमान थे। चीनी यात्री फाहियान ने इन्हें स्वयं देखा था। हूणों के बर्बर आक्रमण ने इन स्मारकों को नुकसान पहुँचाया। हूण आक्रमणकारी मिहिर कुल ने अपनी बर्बर सेना के साथ लगभग 1600 स्तूपों को ढहाकर नष्ट कर दिया तथा कला की जन्म स्थली में इसका नामोनिशान मिटा दिया गया।

मथुरा शैली –

भगवान कृष्ण की जन्म स्थली मथुरा प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध नगर था। रामायण के अनुसार मधु नामक दैत्य ने इस नगर की स्थापना की थी जिससे इसे मधुपुर कहा गया। महाजनपद काल में यह शूरसेन जनपद की राजधानी थी। इस समय यहाँ के शासक अवन्तिपुत्र ने बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया। मौर्यकाल में यह नगर कृष्ण की उपासना का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। मेगस्थनीज ने इसे 'मेथोरा' कहा है। जैन साहित्य में भी इस नगर की समृद्धि का वर्णन मिलता है। शुंगों के समय यह एक प्रसिद्ध नगर था। गार्गी

संहिता के अनुसार यवनों ने इस नगर पर विजय प्राप्त की थी। इसके पश्चात शक–क्षत्रपो ने यहाँ शासन किया। कुषाणों के शासनकाल में यहाँ कला की एक स्वतंत्र शैली विकसित हुई, जहाँ बुद्ध एवं बोधिसत्वों, जैन तथा हिन्दू धर्म की देवी–देवताओं की मूर्तियों का निर्माण विशाल पैमाने पर हुआ। यहाँ से कुषाण कालीन "स्थापत्य एवं मूर्ति कला" के अवशेष प्राप्त होते हैं। उल्लेखनीय है कि यह नगर कुषाणों की राजधानी भी थी। यहाँ से मूर्तियों के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैनियों के स्तूप तथा मन्दिर एवं ब्राह्मणों के देवस्थानों का साक्ष्य प्राप्त होता है। शिलालेखों के आधार पर मथुरा कला का समय ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी ईस्वी तक माना जाता है। इसमें अधिकांश अवशेष कुषाण युग के हैं। मथुरा कला का स्वर्ण युग कुषाण सम्राट कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव का काल था। इस समय यह कला अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई। डॉ0 जे0एन0 पाण्डेय का यह कथन औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है कि प्राचीन गान्धार के समान शूरसेन क्षेत्र से सम्बन्धित होने के कारण इसकी कला को "शौरसेनी कला" का नाम देना उपयुक्त होगा।[31]

कुषाणकाल के शिल्पी "तक्षण कला" में कौशल को प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने बुद्ध एवं बोधिसत्वों का ही नहीं अपितु शैव–वैष्णव देवताओं, जैन तीर्थंकरों तथा कुषाणवंशी शासकों के मूर्तियों का निर्माण करके अपने कला की सार्थकता को सिद्ध किया। यहाँ के शिल्पियों ने मूर्तियों के माध्यम से 'सर्वधर्म समभाव' के सिद्धान्त को साकार रूप प्रदान किया। 'सहिष्णुता' इस कला की आत्मा थी। यही कारण है कि यहाँ तीनों धर्मों के मूर्तियों को समान स्थान दिया गया। यहाँ के शिल्पियों ने तत्कालीन सामाजिक जीवन को भी अपने मूर्तन में स्थान दिया है। उन्होंने मनुष्य की प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का चित्रण और उद्यान क्रीड़ा के दृश्यों को वेदिका स्तम्भ पर उत्कीर्ण किये।

मथुरा शैली की विशेषताएँ –

मथुरा कला की निम्न विशेषताएँ मिलती हैं–

1. मथुरा शैली की मूर्तियाँ सीकरी तथा भरतपुर की खानों (खदानों) से निकलने वाले सफेद चित्तीदार लाल बलुए पत्थर से निर्मित की गई हैं।
2. प्रारम्भिक काल की मूर्तियों में स्थूलता के स्थान पर देह को सुडौल एवं मांसलयुक्त दिखाया गया है।
3. गान्धार शैली में बुद्ध की मूर्तियों को पद्मासन अथवा कमलासन पर दिखाया गया है जबकि मथुरा शैली में बुद्ध को सिंहासनासीन दिखाया गया है।
4. मथुरा शैली में बुद्ध प्रतिमाओं के शीर्ष केश–रहित हैं। उष्णीष कुंडलित है। उनके भावों के मध्य का केश पुंज और मूछें नहीं है। दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और बाया हाथ प्रायः बन्द मुठ्ठी युक्त जंघा अथवा धोती के मोड़ों को छूता हुआ अंकित है। वक्ष स्थल स्पष्टतः उभारयुक्त है। उनके कंधे चौड़े दिखाये गये हैं।
5. मथुरा शैली की मूर्तियाँ अपने विशालता के लिए प्रसिद्ध है।
6. बुद्ध एवं अन्य देवी–देवताओं की मूर्तियों में उनके अंगों की सुन्दरता के स्थान पर मुख पर स्पष्ट भाव–भंगिमाओं का प्रदर्शन किया गया है। यहाँ की मूर्तियाँ आदर्श प्रतीक भाव युक्त हैं।
7. यहाँ के मूर्तियों के मुख पर आभा एवं प्रभामण्डल है तथा दिव्यता एवं आध्यात्मिकता की अभिव्यंजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है।
8. जैन तीर्थंकर, बुद्ध बोधिसत्व तथा कुछ हिन्दू देवी–देवताओं की प्रतिमाओं का प्राथमिक अंकन हुआ है।

प्रारम्भ में कुछ विद्वानों की धारणा थी कि मथुरा शैली में निर्मित मूर्तियाँ गांधार शैली की प्रेरणा का परिणाम थी। परन्तु अब यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया है कि मथुरा की बौद्ध मूर्ति कला सर्वथा स्वतंत्र थी और उसका मूल आधार भारतीय था। प्रसिद्ध कलाविद् आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल ने अत्यन्त तार्किक ढंग से यह सिद्ध कर दिया है कि सर्वप्रथम बुद्ध मूर्तियों का निर्माण मथुरा में ही किया गया। उनके अनुसार कोई भी मूर्ति तब तक नहीं बनायी जा सकती जब तक कि उसकी धार्मिक रूप से माँग न हो। मूर्ति की कल्पना धार्मिक भावना की तुष्टि के लिए होती है। पहली शताब्दी ई0पू0 में ही मथुरा भक्ति आन्दोलन का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था जहाँ संकर्षण, वासुदेव एवं पंचवीरों की प्रतिमाओं का भी निर्माण किया गया। इसका प्रभाव बौद्ध धर्म पर पड़ा जिसने बौद्ध धर्म के मूर्तियों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया। इसी समय बौद्ध धर्म की महायान शाखा का भी उदय हुआ जिसमें बुद्ध को मूर्ति रूप से पूजे जाने की प्रथा थी। इस महायान शाखा के उदय के कारण भी बुद्ध की मूर्तियाँ बनाने की आवश्यकता हुई। इसी भावना से प्रोत्साहित होकर मथुरा के शिल्पियों द्वारा बोधिसत्व एवं बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया गया। मथुरा से ऐसी प्रतिमायें प्राप्त होती हैं जिस पर कनिष्क संवत् की प्रारम्भिक तिथियों के लेख उत्कीर्ण हैं। इसके विपरीत गान्धार की मूर्तियों में कोई परिचित संवत् नहीं है। यहाँ से जो तीन–चार तिथियाँ प्राप्त होती हैं उसका समय पहली से तीसरी सती ईस्वी के बीच है। इस प्रकार मथुरा की बौद्ध प्रतिमायें प्राचीनतर सिद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त डॉ0 अग्रवाल का यह भी मत है कि गान्धार की प्रतिमाओं पर जो लक्षण के चिन्ह जैसे पद्मासन, ध्यान, नासाग्र दृष्टि, उष्णीष आदि है उनका स्रोत भारतीय ही है और गान्धार के शिल्पियों ने इन लक्षणों को मथुरा के ही कलाकारों से ग्रहण किया जो पहले बौद्ध मूर्तियों का निर्माण कर चुके थे। डॉ0 अग्रवाल के

अनुसार इन बुद्ध तथा बोधिसत्व की प्रतिमाओं का स्रोत यक्ष प्रतिमायें विशेष रूप से परखम से प्राप्त यक्ष प्रतिमा थी।[32]

बौद्ध मूर्तियाँ –

मथुरा शैली में निर्मित बौद्ध मूर्तियाँ मथुरा, सारनाथ तथा कलकत्ता के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इस शैली में अनेक बौद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों का निर्माण हुआ। यहाँ से खड़ी तथा बैठी मुद्रा में बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उनके व्यक्तित्व में चक्रवर्ती तथा योगी दोनों का आदर्श दृष्टिगोचर होता है। बुद्ध की मूर्तियों में अभिलेख युक्त किन्तु तिथि रहित ''कटरा क्षेत्र'' से प्राप्त बैठी हुई बुद्ध प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह मूर्ति मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमे बुद्ध को भिक्षु वेष धारण किये हुए दिखाया गया है। वे बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान दिखाये गये हैं। मूर्ति के दाहिने हाथ की हथेली तथा दोनों पैरों में ''चक्र–लक्षण'' उत्कीर्ण हैं। सिर पर नुकीला उष्णीष दोनों भौहों के मध्य ऊर्णा, बाये कंधे पर संघाटी तथा दाहिना हाथ उभय मुद्रा में उठा हुआ है। बुद्ध के पीछे चामर लिए पुरुष दिखाये गये हैं तथा ऊपर से देवताओं को उनके ऊपर पुष्प की वर्षा करते हुए दिखाया गया है। सिंहासन के दोनों किनारों तथा बीच में बैठे हुए सिंह की आकृतियाँ बनी है। उल्लेखनीय है कि इस प्रतिमा को बोधिसत्व कहा गया है। इसके अतिरिक्त मैत्रेय, काश्यप, अवलोकितेश्वर आदि बोधिसत्वों की मूर्तियाँ भी मथुरा से प्राप्त होती हैं। ये सभी मूर्तियाँ आध्यात्मिकता से परिपूर्ण तथा भावना प्रधान है। मथुरा कला में बुद्ध के जीवन की घटनाओं के दृश्यों को वेदिका स्तम्भों पर उत्कीर्ण किया गया है। बुद्ध के पूर्वजन्म की कथायें भी स्तम्भों पर उत्कीर्ण मिलती हैं। जन्म, अभिषेक, महानिभिष्क्रमण, मारघर्षण, सम्बोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन, स्वर्गारोहण आदि घटनाओं का अंकन शिल्पियों द्वारा किया गया है।

सारनाथ से बोधिसत्व की एक विशालकाय मूर्ति प्राप्त हुई है। इसको कनिष्क के शासनकाल में भिक्षुबल ने स्थापित किया था। इसके ऊपर एक विशाल छत्र भी लगा था जो अब टूट गया है। इस मूर्ति के पैरों के बीच में सिंह की आकृति है।

संभवतः मथुरा के शिल्पियों ने जनसामान्य में लोकप्रिय महाकाय यक्ष प्रतिमाओं से प्रेरणा लेकर बुद्ध एवं बोधिसत्व की आदमकाय मूर्तियों का निर्माण किया। यहाँ के बुद्ध एवं बोधिसत्व की प्रतिमाओं में मांसलता एवं बलिष्ठता का दर्शन यक्ष प्रतिमाओं से प्रेरणा लेने के कारण ही है।

मथुरा बौद्ध कला से ऐसे वेदिका स्तम्भ भी प्राप्त होते हैं, जिन पर विविध मनोविनोद के चित्र मिलते हैं। उदाहरण के लिए स्नान करके एक युवती अपने बालों को निचोड़ते हुए दिखाई गई है जिसकी टपकती हुई बूंदों को एक हंस अपने मुख में ले रहा है। यह हंस उसके पैरों के समीप बैठा दिखाया गया है। मथुरा कला में शालभंजिकाओं का भी अंकन हुआ है। वेदिका स्तम्भों पर उनकी मुद्राएं अनेक भाँति से मिलती हैं। पाणिनि ने उसे ''प्राचांक्रीड़ा'' कहा है। अवदान शतक में भी शाल भंजिका क्रीड़ा का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें उद्यानों के पुष्पित शाल वृक्षों की शाखाओं को तोड़कर युवती स्त्रियाँ एक–दूसरे पर प्रहार करती हैं।

मथुरा–आगरा मार्ग पर एक आवास योजना जिसे गोविन्द नगर आवास योजना का नाम दिया गया है, के नींव की खुदाई करते समय कई बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, जिसका उल्लेख डॉ0 रमेश चन्द्र शर्मा ने किया है। उन्होंने इसका उल्लेख ''बुद्धिस्ट आर्ट आफ मथुरा'' तथा ''मथुरा म्यूजियम एण्ड आर्ट'' में किया है।[33]

मथुरा कला में नाग एवं यक्ष–यक्षी की मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। यक्ष पूजा ने कुबेर का रूप धारण कर रखा है। भारवाहक यक्ष को किंकर मुद्रा में दोनों हाथों से भार को ऊपर उठाते हुए प्रदर्शित किया गया है।

मथुरा से कुषाण शासकों की भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कनिष्क की एक सिर रहित मूर्ति प्राप्त हुई है। इस पर "महाराज राजाधिराज देवपुत्रों कनिष्कों" अंकित है। 1.67 मी0 ऊँची यह मूर्ति खड़ी मुद्रा में है। वह कोट, चूड़ीदार पायजामा एवं नोकदार जूते पहने हुए हैं। दाहिना हाथ गदा या राजदण्ड पर टिका है। बाया हाथ म्यान में रखी तलवार की मुठिया पर है। इस मूर्ति को देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कलाकार को सम्राट की प्रस्तर मूर्ति बनाने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है जिसमें मानव शरीर का यथार्थ रूप से चित्रण किया गया है।

जैन मूर्तियाँ –

मथुरा जैन धर्म का भी प्राचीन एवं प्रसिद्ध केन्द्र था। यहाँ से अनेक जैन मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। जैन मूर्तियों में तीर्थकारों की मूर्तियाँ, आयागपट्ट जिन प्रतिमा, जिनों के जीवन से सम्बन्धित दृश्य व कुछ अन्य मूर्तियाँ हैं। मथुरा से ज्ञात आयागपट्ट कला की दृष्टि से मथुरा के अत्यन्त महत्वपूर्ण उदाहरण माने जाते हैं। व्यूहलर महोदय ने इन आयागपट्टों को "टेबलेट्स आफ होमेज" कहा है। इसका तात्पर्य पूजापट्ट से हैं। ये आयागपट्ट पाषाण के चौकोर फलक हैं जिन पर विभिन्न मांगलिक प्रतीकों के मध्य प्रथम बार जैन तीर्थकर प्रतिमाओं का अर्द्धचित्रण पाया जाता है।

महास्वास्तिक आयागपट्ट के मध्य में, चार दिशाओं में स्थित चार त्रिरत्न के मध्य छत्रधारी तीर्थकर पद्‌मासन में बैठे हैं। उनके चारों ओर स्वास्तिक

की चार भुजायें मीन–मिथुन, बैजयन्ती, स्वास्तिक एवं श्रीवत्स सहित अंकित है। एक अन्य अर्हतपट पर पद्मासन में बैठी तीर्थकर मूर्ति के साथ त्रिरत्न, अष्ट मंगला चिन्ह के अन्तर्गत मीन–मिथुन, देवगृह विमान, श्रीवत्स, रत्नपात्र, त्रिरत्न, पुष्प चक्र, बैजयन्ती और पूर्ण घट का पंक्तिबद्ध निरूपण किया गया उहै। अन्य आयागपट्ट भी इन्हीं के सदृश हैं। ऐसा लगता है कि मथुरा के ये "जैन आयागपट्ट" संभवतः पूजा के फलक थे जो जैन सम्प्रदाय की पूजन पद्धति के प्रारम्भिक अवस्था के द्योतक हैं।

आयागपट्टों के मध्य ध्यान मुद्रा में बैठी तीर्थकरों के अंकन की परम्परा ने कालान्तर में स्वतंत्र प्रतिमा के विकसित रूप को धारण कर यिा। कंकाली टीले के स्तूप से अधिकांश मात्रा में जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इन्हें चार भागों में बाँटा गया है– कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मूर्तियाँ, पद्मासन में बैठी मूर्तियाँ, खड़ी मुद्रा में चौमुखी मूर्तियाँ और बैठी मुद्रा में सर्वतोभद्रिका प्रतिमायें। इन तीर्थकर प्रतिमाओं के वक्ष स्थल पर श्रीवत्स का पवित्र मांगलिक चिन्ह अंकित है। पद्मासन मुद्रा में तीर्थकर प्रतिमायें बहुसंख्यक मात्रा में पायी गयी हैं। इनकी चौकी पर लेख उत्कीर्ण है। इन मूर्तियों में ऋषभनाथ, संभवनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की मूर्तियाँ पहचानी जा सकी हैं।

हिन्दू धर्म की प्रतिमायें –

मथुरा कला में हिन्दू धर्म के अनेक देवी–देवताओं के मूर्तन की कल्पना की गई और उन्हें साकार रूप दिया गया। ई0पू0 पहली शताब्दी में ही मथुरा भक्ति आन्दोलन का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। इसके प्रमुख देवता भगवान वासुदेव–कृष्ण थे। वे मनुष्य रूप में महानारायण विष्णु के अवतार माने जाते थे। पाणिनि के समय (ई0पू0 पांचवीं शताब्दी) भी भगवान कृष्ण की पूजा का प्रमाण मिलता है। कुषाण काल तक आते–आते मथुरा हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्म

का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। कुषाण काल में मथुरा के शिल्पकारों ने हिन्दू धर्म की अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियों का निर्माण किया।

मथुरा शैली में निर्मित हिन्दू धर्म के देवी–देवताओं की मूर्तियों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कार्तिकेय, गणपति, सूर्य, इन्द्र, कामदेव, बलराम, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा–महिषमर्दिनी, सप्तमातृका, कुबेर आदि की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। मथुरा से विष्णु की कई ऐसी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं जिसमें विष्णु के शरीर पर मुकुट, शरीर पर आभूषण तथा धोती धारण किये हुए हैं। उनकी चार भुजाओं में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में, बाया हाथ कटिबंध पर अवस्थित अमृत घट लिए हुए हैं। दो अन्य हाथों में क्रमशः गदा एवं चक्र सुशोभित है। कुछ चतुर्भुजी विष्णु मूर्तियों में बायीं ओर लक्ष्मी तथा दोनों के बीच में छोटा गरुड़ स्थापित है। एक अन्य मूर्ति जोकि अष्टभुजी है, में विष्णु विभिन्न आयुधों से युक्त दिखाये गये हैं।[34]

मथुरा में शिव के अनेक रूपों का मूर्तन हुआ। कुषाण शासक विमकदफिसस शैव मतानुयायी था जिसकी मुद्राओं में वृषभ नन्दी का अंकन प्राप्त होता है। पशुपति धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र होने के कारण लिगांर्चना पर विशेष बल दिखाई पड़ता है। यहाँ के लिंग सादे होने के साथ–साथ एक मुखी एवं पंचमुखी हैं। पंचमुखी शिव लिंग में चार मुख चार दिशाओं में तथा एक सबसे ऊपर है। मानव रूप में शिव अपने वाहन नन्दी के साथ दिखाये गये हैं और पार्वती शिव के वामांग में खड़ी हैं। शिव के अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा का प्रथम बार अंकन मथुरा में ही किया गया।

कुषाण काल में मथुरा में कार्तिकेय की भी मूर्तियों का निर्माण किया गया। कार्तिकेय द्विभुजी रूप में उपस्थित है। उनका दांया हाथ अभय मुद्रा में उपस्थित है तथा बाये हाथ में शक्ति धारण किये हैं। मथुरा कला में सूर्य को दो अश्वों वाले, चार अश्वों वाले तथा सात अश्वों वाले रथ के ऊपर सवार दिखाया

गया है।

मथुरा कला में देवी–देवताओं में सर्वाधिक उल्लेखनीय मूर्ति महिषासुरमर्दिनी की है। इन्हें चतुर्भुजी एवं षट्भुजी रूप में दिखाया गया है। इसी प्रकार लक्ष्मी को कमलासन या लता के मध्य दर्शाया गया है। यहाँ का शिल्पकारों ने सप्तमातृका की कल्पना को भी मूर्त रूप प्रदान किया। इनमें ब्रह्म की बाराही, नृसिंह की नारसिंही तथा यम की चामुण्डा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

मथुरा वास्तु –

मथुरा से कुषाणकालीन वास्तु कला के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। यद्यपि मथुरा में स्तूप निर्माण कला को कोई अवशेष सुरक्षित नहीं मिलता, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के स्तूपों में मेधिया, अधिष्ठान, वेदिका, तोरण, अण्ड भाग, हार्मिका, छत्रावली आदि प्रमुख अंग विद्यमान थे।[35] यहाँ के लेखों तथा मूर्तियों से ज्ञात होता है कि मथुरा में जैनियों के दो स्तूप थे। यहाँ से बौद्धों के भी स्तूप होने के संकेत मिलते हैं। इनमें प्रथम का निर्माण कुषाण शासक हुविष्क द्वारा करवाया गया था। दूसरा भूतेश्वर टीले पर स्थित था। यद्यपि ये स्तूप नष्ट हो चुके हैं परन्तु इनके जो अवशेष मिले हैं, उससे ज्ञात होता है कि इनके तोरण द्वार तथा वेदिका स्तम्भ भरहुत तथा साँची की अपेक्षा छोटे थे। ऐसे ही एक अन्य स्तूप का वर्णन मथुरा के लोण शोभिका के आयागपट्ट पर चित्रित दृश्य से होता है। इसका अण्ड भाग लम्बोतरा है तथा मेधि तक पहुँचने के लिए महासोपान का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रदक्षिणापथ तथा लम्बे अण्ड भाग पर निर्मित दोहरी वेदिका उल्लेखनीय है। चीनी यात्री फाह्यान ने यमुना नदी के दोनों तट पर अनेक स्तूप देखे थे।[36]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मथुरा कुषाण काल में धार्मिक सहिष्णुता का एक अद्वितीय केन्द्र था। यहाँ हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्म के

लोगों के बीच पारस्परिक सौहार्द एवं सामंजस्य का वातावरण था। इस शैली को ''सांस्कृतिक राष्ट्रवाद'' के परिचायक के रूप में स्वीकार करना असंगत न होगा। इस शैली ने गुप्तकाल की मूर्ति कला को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया। इसने गुप्त कलाकारों को अनेक प्रतीक दिये जिसे परिष्कृत करके गुप्त काल के शिल्पियों ने नवीन एवं सुन्दर रूप प्रदान किया।

(स) सातवाहन कला

ईसा पूर्व प्रथम शती में विन्ध्यपर्वत के दक्षिण में सातवाहनों का साम्राज्य स्थापित हुआ। सातवाहनों की शक्ति का लगभग तीन शताब्दियों तक निरन्तर उत्थान होता रहा। उनके साम्राज्य के अन्तर्गत समस्त दक्षिणापथ सम्मिलित था। सातवाहन शासक यद्यपि ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे लेकिन उनकी धार्मिक सहिष्णुता की नीति से दक्षिण भारत में बौद्ध कला को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। यद्यपि आन्ध्र प्रदेश में बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के परिणामस्वरूप ''स्तूप निर्माण परम्परा'' का प्रादुर्भाव अशोक के ही शासन काल में हो चुका था। परन्तु सातवाहन राजाओं का शासन काल दक्षिण भारत में स्तूप निर्माण की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सातवाहनों के पश्चात् इश्वाकु राजाओं के शासन काल में भी स्तूपों का निर्माण जारी रहा क्योंकि इस वंश की अनेक रानिया बौद्ध धर्म के प्रति लगाव रखती थीं।

आन्ध्र प्रदेश में स्तूपों का निर्माण ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी ईस्वी तक व्यापक पैमाने पर हुआ। दक्षिण भारत के स्तूपों में भट्टिप्रोलु, गोली तथा गुडिवाड़ा के स्तूप सबसे प्राचीन है। इसका निर्माण ई0पू0 दूसरी शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ। भट्टिप्रोलु का स्तूप लगभग 40 मी0 ऊँचा है तथा इसका व्यास 42.25 मी0 है। गोली एवं गुडिवाड़ा के स्तूप यद्यपि ध्वस्त हो चुके हैं लेकिन यह संभावना व्यक्त की गई है कि इनकी ऊँचाई तथा व्यास

भदि्प्रोलु स्तूप के समान ही रही होगी। ये स्तूप ठोस रूप में ऊपर से नीचे तक ईटों से निर्मित किये गये थे।

दक्षिण भारत के स्तूपों के एक विशेष लक्षण यह दिखाई देता है कि इनमें चारों ओर वेदिकायें तो मिलती है परन्तु तोरण द्वार नहीं मिलते। यहाँ स्तूप में प्रवेश करने के लिए सादे खुले हुए मार्ग थे। प्रवेश द्वार वेदिकाओं के साथ समकोण बनाते हुए आगे की ओर निकले हुए भागों के चतुष्पादों से बनते थे। वेदिका का एक चौथाई भाग अपने अन्तिम स्तम्भ तक पहुँच कर बाहर की ओर निकलता था फिर समकोण बनाकर भीतर की ओर मुड़ जाता था। नागार्जुनी कोण्डा के अनेक स्तूपों में वेदिका भी नहीं मिलती। उनके स्थान पर ईंटों या पत्थरों से निर्मित ऊँचे चबूतरे स्तूप की मेधि के चारों ओर मिले हैं जिन पर चढ़ने उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थी।[37]

सातवाहन कला के श्रेष्ठ उदाहरण गून्टूर जिले में भदि्प्रोलु, अमरावती तथा नागार्जुनीकोण्डा के स्तूप हैं। अमरावती तथा नागार्जुनीकोण्डा के स्तूप का विवेचन निम्नलिखित है।

अमरावती का स्तूप –

अमरावती आन्ध्र प्रदेश के गून्टूर जिले में कृष्णा नदी के दाहिने तट पर स्थित है। अमरेश्वर शिव के नाम पर बसा अमरावती छोटा ग्राम है। इसका प्राचीन नाम धान्यकटक था। यह सातवाहनों की कुछ समय तक राजधानी भी रहा। द्वितीय–तृतीय शताब्दी में यहाँ के बौद्ध स्तूप का जो स्वरूप था वह विश्व की महान कलाकृतियों में स्थान पाने योग्य है। वास्तव में दक्षिण भारत के स्तूप की समस्त वास्तुगत विशेषताएं इस स्तूप में देखने को मिलती हैं। दुर्भाग्यवश यह स्तूप अब अपने मूल स्थान से नष्ट हो गया है लेकिन इसके अवशेष लन्दन, कलकत्ता एवं मद्रास के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इस स्तूप के अभिलेख

मौर्यकालीन ब्राह्मी में पाये गये हैं। साथ ही उसमें अमरावती का प्राचीन नाम धान्यकटक तथा कुछ सातवाहन नरेशों के नाम जैसे वसिष्ठीपुत्रपुलमावी, यज्ञश्री आदि के नाम मिलते ळें। कुछ अभिलेख इक्ष्वाकु नरेशों के शासनकाल के भी हैं।

अमरावती के स्तूप (द्रष्टव्य चित्र सं0 3/परिशिष्ट सं0 3) को प्रकाश में लाने का श्रेय 1797 ई0 में अंग्रेज विद्वान कर्नल मैकेन्जी को है। उन्होंने 1816 ई0 में यहाँ के अवशेषों और मूर्तियों का सूक्ष्म अध्ययन कर इसके रेखाचित्र तैयार किये। 1840 ई0 में इलियट द्वारा इस स्तूप के एक भाग की खुदवाई कराई गई, जिसमें कई मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। 1876 ई0 में स्वेल, 1881 ई0 में जेम्स वर्गेस और 1905 से 1909 ई0 तक एलेक्जेण्डर री ने अमरावती का और उत्खनन करवाया और वहाँ से प्राप्त कलाकृतियों को देश–विदेश के विभिन्न संग्रहालयों में भेज दिया। 1881 ई0 में वर्गेस को पूर्व उत्खनन से लगभग 300 मूर्तियाँ मिली थी। उन्हें स्वयं 1881 में ही 79 शिलापट्ट[38] प्राप्त हुए थे।

लेखों से ज्ञात होता है कि इस स्तूप का एक अन्य नाम महाचेतिय था। इसका सबसे महत्वपूर्ण भाग भूमिगत महावेदिका है। इस वेदिका के स्तम्भों की पेदी के लिए ईंटों की एक चौकी बनी हुई थी। इसमें थोड़ी–थोड़ी दूरी पर सीधे स्तम्भ थे, जो तीन क्षैतिज सूचियों द्वारा जुड़े हुए थे। ऊपर उष्णीष दिया हुआ था। इस वेदिका का पूरा गोल घेरा 185 मी0 तथा महावेदिका का व्यास 193 फुट था। इसमें प्रयुक्त प्रत्येक स्तम्भ 9 फुट ऊँचा था। इन स्तम्भों के बीच लगी सूचियों के ऊपर चिन्हित फलकों की चौड़ाई 2 फुट 9 इंच थी। इसके कारण इन्हें परिचक्रासूची कहा गया है। सम्पूर्ण वेष्टिनी के उष्णीष 800 फुट लम्बे थे। महावेदिका में 136 स्तम्भ तथा 2.75 फीट की 348 सूचियाँ थी। ये सभी स्तम्भ तथा सूचियाँ उत्कीर्ण शिल्प से अलंकृत थी। वेदिका में एक–एक प्रवेश द्वार थे। ये आगे की ओर निकले हुए स्तम्भों की सहायता से बने हुए थे। प्रवेश द्वार

में आगे की ओर अगल–बगल में स्तम्भ थे जिनके उष्णीषों पर बैठे हुए सिंह के जोड़े थे।

अमरावती के मूल स्तूप का स्वरूप घण्टाकार था। इसके शीर्ष पर चौकोर हार्मिका और हार्मिका के बीच में छत्रों से युक्त भव्य स्तम्भ था। अमरावती के अण्ड पर साँची की भाँति एक ऊपरी प्रदक्षिणापथ था। इसके चारों ओर एक वेदिका थी, जिसके सीधे खम्भे आयताकार फलकों द्वारा आपस में जुड़े थे। वेदिका और मेधि दोनों में लगे प्रस्तर फलक अलंकृत थे। यह अनुमान व्यक्त किया गया है कि ईंटे तथा मिट्टी अथवा कंकण भरकर इस स्तूप को अण्डाकार स्वरूप प्रदान किया गया था। तत्पश्चात इसे अच्छे किस्म के सफेद चूना पत्थर के फलकों से आच्छादित कर दिया गया था। प्रारम्भ में भ्रमवश यह समझ लिया गया कि प्रस्तर फलक संगमरमर का है किन्तु रासायनिक परीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि ये प्रस्तर वास्तव में अच्छी किस्म के चूना पत्थर के थे। मूल रूप से इस स्तूप का निर्माण 200 ई0पू0 के आसपास हुआ था परन्तु सातवाहन शासक वाशिष्ठीपुत्रपुलमावी के समय इसका जीर्णोद्धार कर इसे अलंकृत किया गया। इस काल में अमरावती शैली में परिपक्वता के दर्शन होते हैं। संभवतः इसी समय स्तूप के चारों ओर पाषाण वेदिका बनाई गई। वेदिका तथा स्तम्भों पर उत्कीर्ण चित्र सातवाहन युगीन कला के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है। इस काल को अमरावती के शिल्प कला का उत्कर्ष काल माना जा सकता है।

आन्ध्र प्रदेश के स्तूपों की एक प्रमुख विशेषता आयको या आर्यक मंच का निर्माण है। यह विशेषता अमरावती के स्तूप में दृष्टिगोचर होती है। भदि्प्रोलु तथा नागार्जुनीकोण्डा के स्तूप में भी यह विशेषता देखने को मिलती है। आयक की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के आर्यक शब्द से हुई है जिसका अर्थ है– पूज्यनीय। आयक एक विशेष प्रकार का चबूतरा होता था। स्तूप के आधार को

आयताकार रूप में बाहर की ओर चारों दिशाओं में आगे बढ़ाकार बनाया जाता था। इस निकले चबूतरे को आयक मंच कहा जाता है। मैकेन्जी ने जो रेखाचित्र तैयार किया था उसके अनुसार प्रत्येक आर्यक मंच 32 फुट लम्बा तथा 6 फीट चौड़ा था।

प्रत्येक आर्यक मंच में मुख्य पट्ट की भाँति एक विशाल शिलापट्ट लगाया जाता था। इसके ऊपर बुद्ध या नागराज की मूर्ति अंकित की जाती थी। प्रत्येक आर्यक के सामने के किनारे पर पांच सुन्दर स्तम्भ लगाये जाते थे जिसे आर्यक स्तम्भ कहा जाता था। ये आयक तथा उसके स्तम्भ एक प्रकार से अलंकरण है जो आन्ध्र प्रदेश के स्तूपों को कला की दृष्टि से एक स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करते हैं। स्तूप पट्टों पर अंकित आर्यक स्तम्भों के शीर्ष भाग में 'गवास वातायन' या कीर्ति मुख बना है। स्तूप के मध्य में जो कमरपेटी की वेदिका थी वह चार भागों में बँटी थी। मध्य की वेदिका स्तूप के अण्ड भाग से 8 फुट ऊँची थी। इन दो स्तम्भों के बीच में सूचियों के स्थान पर "एक बड़ा शिलापट्ट" लगाया जाता था जो दोनों तरफ से उत्कीर्ण था। इसे पेण्डक कहा गया है। पट्टों की एक श्रेणी अण्ड में चारों तरफ लगी थी, जिस पर बुद्ध के जीवन की घटनाओं के दृश्य अंकित किये गये थे।

स्तूप के शीर्ष भाग पर 24 फुट की वर्गाकार हार्मिका थी। इसके ठीक बीच में "मोटी यष्टि" स्तूप के अण्ड भाग में गहराई तक धसी थी तथा यष्टि के ऊपर छत्र बना था। हार्मिका के चारों ओर वेष्टिनी थी।

अमरावती का यह स्तूप आन्ध्र प्रदेश के स्तूपों में सबसे बड़ा है। आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल ने स्तूप के वास्तु विधान के संदर्भ में लिखा है– "वास्तु विद्या के जिन आचार्यों ने इस महाचैत्य का विन्यास किया, वे कल्पना के मौलिक तथा विशाल चिन्तन शक्ति से सम्पन्न थे।"[39]

अमरावती की शिल्प कला –

अमरावती स्तूप का शिल्प विधान भरहुत एवं साँची की मूर्तियों से भिन्न है। यहां की कला में बुद्ध का मूर्त रूप में अंकन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भरहुत में स्तूप के चारों ओर की वेदिका तथा तोरण द्वार अलंकृत किया गया है। साँची में वेदिका बिल्कुल सादी है। तोरणों को अलंकृत किया गया है परन्तु अमरावती के स्तूप की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें स्वतः स्तूप को अलंकृत किया गया है। इस पर बड़ी–बड़ी मूर्तियों को तराशकर बनाया गया है जोकि एक दूसरे से कुछ दूरी पर खड़ी हुई है। अमरावती शिल्प में सहज तकनीकी दक्षता पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होती है। यहाँ की मूर्तियों के आभूषणों में न्यूनता दिखाई देती है।

अमरावती स्तूप के अण्ड पर लगे प्रस्तर फलक तथा इसकी वेदिका के स्तम्भ, सूची और उष्णीष सातवाहन कला के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करते हैं। कला के काल क्रम की दृष्टि से यहाँ के शिल्प को चार भागों में बाँटा गया है जो निम्नवत् है–

1. आरम्भिक काल :

आरम्भिक काल द्वितीय शताब्दी ई0पू0 का है। जब स्तूप का निर्माण किया है। इस समय मौर्य शुंग अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त/आरम्भिक काल में शिला पट्टों पर अंकित दृश्यों में धर्म परिवर्तन, बुद्ध के शरीर का धातु का विभाजन, महानिभिष्क्रमण, सम्बोधि प्राप्ति, बुद्ध का पूजन, भिक्षापात्र की पूजा, बुद्ध पादुका पूजन आदि उल्लेखनीय है।

2. मध्य काल :

यह मध्य काल लगभग 100 ईस्वी सातवाहन नरेश वासिष्ठपुत्रपुलुमावी

का समकालीन है। इस युग के शिल्प पट्ट स्तूप के अंड पर लगे थे। इस समय के दृश्यों सिद्धार्थ का अभिनिष्क्रमण, राम ग्राम स्तूप का उद्घाटन, बुद्ध का धर्मोपदेश, माया देवी का स्नान आदि प्रमुख है।

3. चरमोत्कर्ष काल :

यह समय 150–200 ईस्वी के बीच का है। यह समय सातवाहन नरेश यज्ञश्रीसातकर्णी का शासन काल था। यह समय अमरावती शिल्प के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है। इसी काल में वेदिका का निर्माण हुआ। इस काल के दृश्यों में नलगिरि के हाथी को वश में करना, बुद्ध के भिक्षा पात्र को नृत्य गीत के साथ देव लोक ले जाना, चक्र पूजा, अजातशत्रु द्वारा बुद्ध का दर्शन, राहुल का जन्म, बुद्ध का गृह त्याग, मार घर्षण का अंकन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

4. अन्तिम अवस्था :

यह समय तृतीय शताब्दी ई0पू0 का है, जो इक्ष्वाकु वंश का समकालीन है। इस काल के शिल्प में इक्ष्वाकु कालीन शिल्प की झलक दृष्टिगोचर होती है। इसमें बुद्ध के जीवन के दृश्य, नागों द्वारा रक्षित रामग्राम स्तूप, माया के स्वप्न का अंकन आदि महत्वपूर्ण है।

अमरावती शिल्प में बुद्ध के जीवन के दृश्य तथा जातक कथाओं के दृश्यों के साथ–साथ अलंकरण के प्रति भी विशेष रुचि दिखाई पड़ती है। पशु पक्षियों, पुष्पों तथा लताओं का चयन काफी सोच–समझकर किया गया है। लोकजीवन से सम्बन्धित गंधर्व, सुपर्ण, गरूड़, किन्नर, नाग, यक्ष आदि की सज्जा सुरुचिपूर्ण है। पंचफणीय नागों की अभिव्यक्ति भी विविध रूपों में हुई है। स्त्री पुरुषों की दुबली पतली किन्तु लम्बी काया अमरावती की अपनी शैलीगत

विशेषता है। स्त्री–पुरुष द्वारा अपने कन्धे पर विशाल पुष्पाहारों के वहन करने के उदाहरण दर्शन योग्य है। पुष्पाहारों को मकर मुख या यक्ष मुख से निकलते दिखाया गया है, जो क्रमशः वरुण के वाहन या कुबेर के अनुचर थे। अपने अलंकरणों तथा सजावट की शोभा के कारण अमरावती का स्तूप अतुलनीय है।

अमरावती की कला में प्रबल गतिशीलता दिखाई देती है। यहाँ बड़ी–बड़ी मूर्तियों को तराशा गया है जो सामान्यतः खड़ी दिखाई गई है। इनकी ऊँचाई करीब 6 फीट है। इनमें गम्भीरता, उदासी तथा वैराग्य के भावों का खूबसूरती से अंकन किया गया है। आकृतियों में लम्बेपन की अधिकता के कारण उनमें त्रिभंग की स्थिति ज्यादा स्पष्ट दिखाई देती है। यहाँ की सभी आकृतियाँ "प्राकृतिकता" से युक्त है। इस कला में ये सब बातें मिलकर एक जटिल प्रभाव उत्पन्न करती है। यहाँ के शिल्पियों को अनेक जटिल आकृतियों को कई सतहों में अंकित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ की कला में जीवन का अपूर्व उल्लास, आनन्दमय उपभोग व उसके कण–कण में सौन्दर्य फूटता है।[40]

अमरावती का स्तूप जिस समय सुरक्षित अवस्था में रहा होगा, उस समय यहाँ का मूर्त शिल्प दक्षिण भारत में अपने ढंग का भव्य, अनोखा एवं दर्शनीय उदाहरण रहा होगा। कुमार स्वामी यहाँ की शिल्प कला को भारतीय कला का अत्यन्त "विलासी एवं अति सुकुमार पुष्प" मानते हैं।[41] के0डी0 बाजपेयी ने लिखा है– "अमरावती का स्तूप भारतीय वास्तु की एक उज्जवलतम् कृति है। चारुत्व के विभिन्न तत्वों को मनोहारी समन्वय इस महान कृति में दर्शनीय है।[42]

नागार्जुनकोण्डा का स्तूप –

नागार्जुनकोण्डा आन्ध्र प्रदेश के गून्टूर जिले में पलनाड तालुके में

माचरला स्टेशन से 19 मील दूर कृष्णा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। इसके तीन ओर पहाड़ियों की रक्षा पंक्ति है तथा चौथी तरफ कृष्णा नदी। इसी भौगोलिक स्थित के कारण इक्ष्वाकु राजाओं ने इसे अपनी राजधानी बनाने के लिए चुना होगा। लेखों में इसका नाम विजयपुरी मिलता है। सर्वप्रथम 1920 ई0 में लांग हर्स्ट नामक विद्वान ने यहाँ के पुरावशेषों को खोज निकाला था। 1927–37 तक लांग हर्स्ट द्वारा कराये गये उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ से अनेक विहार वृत्तायन, चैत्यगृह, स्तूपों के खण्डहर, लेख, सिक्के, धातु मंजूषायें तथा लगभग 400 से अधिक सुन्दर उत्कीर्ण शिला पट्ट प्राप्त हुए थे। इसके पश्चात् 1954–59 तक यहाँ दूसरी बार उत्खनन करवाया गया, जिसमें अनेक स्तूप, शिल्प सामग्री तथा मन्दिर प्राप्त हुए थे।

नागार्जुनकोण्डा के उत्खनन से जो महास्तूप (द्रष्टव्य चित्र सं0 4/ परिशिष्ट सं0 4) प्राप्त होता है, वह अमरावती के स्तूप से काफी मिलता जुलता है। यह स्तूप गोलाकार था। इस स्तूप का व्यास 106 फुट तथा ऊँचाई 80 फुट थी। भूमि तल पर 13 फीट चौड़ा एक प्रदक्षिणापथ स्थित था जिसके चारों ओर वेदिकायें थी। स्तूप के ऊपरी भाग को कालान्तर में उत्कीर्ण शिला पट्टों से अलंकृत किया गया। इन शिला पट्टों पर बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कथाओं को प्राथमिकता दी गई है। कुछ दृश्य जातक कथाओं से भी लिये गये हैं। प्रमुख दृश्यों में उल्लेखनीय है– माया का स्वप्न, हास्ति के रूप में बोधिसत्व का प्रकट होना, महाभिनिष्क्रमण, स्वर्ग में बोधिसत्व की चूड़ा पूजा, मार विजय, जन्म के साथ सात डग भरना, सम्बोधि, प्रथम उपदेश इत्यादि।[43] अमरावती की भाँति इस स्तूप में भी आयकों का निर्माण किया गया है तथा इन आयकों पर अमरावती की ही भाँति अलंकृत शिला पट्ट लगाये गये थे। इस स्तूप में तोरण द्वार का अभाव देखने को मिलता है। इसका प्रवेश द्वार वेदिका में ही मिलता है। स्तूप से जो

अभिलेख प्राप्त होते हैं उससे ज्ञात होता है कि इक्ष्वाकु शासकों की रानियों का बौद्ध धर्म के प्रति गहरा लगाव था और उन्हीं के प्रेरणा के परिणामस्वरूप नागार्जुनकोण्डा पर स्तूप बनाये गये।

नागार्जुनकोण्डा में इस महास्तूप के अतिरिक्त अन्य कई छोटे–छोटे स्तूप भी मिले हैं। कुछ स्तूप ऐसे भी है जो सादे थे। इनमें अलंकृत प्रस्तर फलक नहीं लगा था। इसी प्रकार यहाँ के कई महत्वपूर्ण स्तूपों में किसी प्रकार की कोई वेदिका नहीं मिलती, बल्कि मेधि के चारों ओर पत्थर अथवा ईंटों के ऊँचे चबूतरे बने हुए थे, जिनमें उतरने–चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थी।

अमरावती तथा नागार्जुन कोण्डा के अतिरिक्त सातवाहन–इक्ष्वाकु काल में दकन के अन्य स्थानों पर भी स्तूपों का निर्माण किया गया। इन स्तूपों में पेडगंजम, जगयपेट्ट, घण्टशाला, अल्लरू आदि के स्तूप उल्लेखनीय हैं।

विहार तथा चैत्यगृह –

सातवाहन युगीन कला के अन्य उदाहरण विहार तथा चैत्यगृह है, जिनका निर्माण पश्चिमी भारत में पर्वत गुफाओं को काटकर किया गया। उल्लेखनीय है कि सातवाहन शासकों का राज्य महाराष्ट्र में भी फैला था। चैत्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है– चिता सम्बन्धी। शव दाह के पश्चात् बचे हुए अवशेष को भूमि में गाड़कर उनके ऊश्पर जो समाधियाँ बनाई जाती थी, उन्हें चैत्य या स्तूप कहा गया। चूँकि इन समाधियों में महापुरुषों के धातु अवशेष सुरक्षित थे। अतः ये उपासना के केन्द्र बन गये। कालान्तर में बौद्धों ने इन्हें अपनी उपासना का केन्द्र बना लिया और ये बौद्ध वास्तुकला के अभिन्न अंग बन गये। पहले चैत्य का निर्माण खुले स्थान पर होता था, किन्तु कालान्तर में इन्हें भवनों में स्थापित किया जाने लगा। ये दो प्रकार के होते थे– पहाड़ों को काटकर बनाये गये चैत्य तथा ईंट पत्थरों की सहायता से खुले स्थान पर बनाये गये चैत्य। दकन की

गुफाओं से पहले प्रकार का चैत्य प्राप्त होता है। चैत्यगृह के समीप ही भिक्षुओं के रहने के लिए आवास का निर्माण किया गया, जिसे विहार कहा गया है। इस प्रकार चैत्यगृह प्रार्थना भवन होते थे जिनका निर्माण स्तूपों के समीप ही किया जाता था जबकि विहार भिक्षुओं के निवास के लिए बने हुए मठ या संघाराम होते थे।

सातवाहन युग में पश्चिमी भारत कें अनेक चैत्यगृहों का निर्माण करवाया गया। इस कला के प्रमुख चैत्य है– भाजा, पीतलखोरा, कोण्डाने, नासिक, कार्ले, जुन्नार, कान्हेरी वेडसा इत्यादि। इन चैत्यगृहों के साथ गुहा विहारों का भी निर्माण हुआ। इनका विवेचन निम्नलिखित है–

भाजा :

पश्चिमी भारत के चैत्यगृहों में भाजा की गुहा सबसे प्राचीन मानी जाती है। यहाँ कुल 22 ऐसी गुफायें हैं, जिसमें चैत्य गृह, विहार एवं ठोस कटे हुए 14 स्तूपों का समूह सम्मिलित है। इन सभी में भाजा का चैत्यगृह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह वास्तु कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण लक्षणों से युक्त है। यह चैत्य गृह 55 फुट लम्बा एवं 26 फुट चौड़ा है। दोनों ओर के प्रदक्षिणापथ का गलियारा करीब 2.5 फुट चौड़ा है। स्तम्भों पर त्रिरत्न, नन्दि पद, श्रीवत्स आदि के अलंकरण मिलते हैं। वास्तव में यह स्थापत्य कला का एक सुन्दर उदाहरण है, जिसमें धन्नियों का एक महापंजर नीचे की ओर अभी तक जुड़ा है।[44] इस चैत्य के सामने के मुख मण्डल में प्रस्तर एवं काष्ठ शिल्प का संयोग दृष्टिगोचर होता है। यह चैत्यगृह अब नष्ट प्राय हो गया है। इसमें मूर्ति शिल्प का प्रायः अभाव देखने को मिलता है।

पीतलखोरा :

पीतलखोरा का प्राचीन नाम पीतगल्म था। यह पर्वतीय वास्तु

औरंगाबाद से चालीसगांव जाने वाले मार्ग पर शतमाला नामक पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ कुल 13 गुफायें हैं। इनमें गुफा संख्या 3 चैत्यगृह है। इस चैत्यगृह का विस्तार 86 फुट X 35 फुट है, जिसका एक सिरा अर्द्धवृत्त या वेसर आकृति का है। यहाँ से प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण प्रतिष्ठान के श्रेष्ठियों द्वारा करवाया गया। इस चैत्य के सभी स्तम्भ भाजा की भाँति भीतर की ओर झुके हैं। स्तम्भ तथा भित्तियों पर बुद्ध तथा बोधिसत्वों के चित्र महायानियों के केन्द्र होने का संकेत देते हैं। इस चैत्य की एक अन्य विशेषता 11 सीढ़ियों का सोपान है, जिसके दोनों ओर सपक्ष अश्वों का मनोरंजक अलंकरण किया गया है।

कोण्डाने :

यह स्थान कार्ले से लगभग 16 किमी0 दूर कोलाबा जिले में स्थित है। यहाँ पर चैत्यगृह एवं विहार दोनों है। यहाँ का चैत्य भाजा के ठीक बाद का है। आकार में यह भाजा के चैत्य से बड़ा है।

नासिक :

नासिक महाराष्ट्र प्रान्त में गोदावरी नदी के तट पर स्थित है। पंतजलि के महाभाष्य में इस प्राचीन नगर का नाम नासिक्या मिलता है। यहाँ कुल 17 गुहायें हैं जिनमें एक चैत्य गृह तथा 16 विहार हैं।[45] नासिक के चैत्यगृह का निर्माण ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य माना जाता है। यह चैत्यगृह पाण्डुलेण के भी नाम से जाना जाता है। इस चैत्यगृह में काष्ठ शिल्प का प्रयोग नहीं मिलता। पाण्डु लेख में एक संगीतशाला भी थी जो मंडप के भीतर चूलों में अटकाई धरनो पर टिकी थी। नासिक के गुहा विहार में एक शिलालेख भी प्राप्त होता है जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण सातवाहन नरेश कृष्ण के शासनकाल में हुआ। नासिक के चैत्य गृह के प्रवेश द्वार पर प्रतीकों से अलंकृत

आकर्षक अर्द्धचन्द बना हुआ है। सातवाहन शासक गौतमीपुत्र तथा यज्ञश्री ने भी नासिक में एक–एक विहार का निर्माण करवाया। गौतमी पुत्र के विहार में 18 कमरे हैं। इसके बरामदे में 6 स्तम्भ है। स्तम्भों के शीर्ष पर वृषभ, घोड़ा, हाथी इत्यादि पशुओं की आकृतियाँ बनी हुई हैं।

कार्ले :

कार्ले की गुफायें बम्बई पूना मार्ग पर बम्बई से लगभग 785 मील दूर मलावली स्टेशन से 3 मील की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है। यहाँ एक भव्य विशाल चैत्य गृह तथा तीन सामान्य विहार है। कार्ले का चैत्य सबसे विशाल एवं सर्वाधिक सुरक्षित दशा में है। यह चैत्य गृह भारत के सर्वाधिक सुन्दर तथा भव्य स्मारकों में एक है तथा पश्चिमी भारत के शैल वास्तु का श्रेष्ठ उदाहरण है। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार इस चैत्य में वास्तु एवं शिल्प का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है।[46] यह मुख्य द्वार से पीछे के द्वार तक 24 फुट 3 इंच लम्बा, 25 फुट 7 इंच चौड़ा तथा 45 फुट ऊँचा है। गुफा में प्रवेश द्वार पर एक विशाल स्तम्भ का निर्माण किया गया है जिसके ऊपर चार सिंह बने हुए विराजित अवस्था में दिखाये गये हैं। मण्डप के भीतर जाने के लिए तीन प्रवेश क्षर हैं। डॉ0 अग्रवाल ने इस विशाल चैत्य को "कीर्ति" की संज्ञा दी है जिसका अर्थ है चट्टान में काटी गई गुफा। इस चैत्य में एक लेख उत्कीर्ण मिलता है जिसके अनुसार "वैजयन्ती के भूतपाल नामक श्रेष्ठि ने सम्पूर्ण जम्बू द्वीप में उत्कृष्ट इस शैल गृह को निर्मित करवाया था।[47]

जुन्नार :

जुन्नार पूना से लगभग 60 मील दूर उत्तर दिशा में स्थित है। यहाँ

कुल 150 शैल गृह पाये गये हैं। इसमें से केवल 110 चैत्यगृह तथा शेष विहार हैं। इन गुफाओं का निर्माण ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर प्रथम शती ईस्वी तक माना जाता है। यहाँ की गुफायें हीनयान बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं। यहाँ की गुफायें कई समूह में है जिसमें गणेशलेण तथा तुलजालेण विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। यहाँ की गुफायें अत्यन्त सादी हैं। इनमें कार्ले की भाँति रक्षामानुष एवं स्त्री–पुरुषों की मूर्तियाँ नहीं है। गणेशलेण में चार चैत्यगृह हैं। इनमें से एक में क्षहरात वंश के शासक नहपान का अभिलेख प्राप्त होता है। कला की दृष्टि से यह उस काल का सर्वोत्तम चैत्य मन्दिर है। तुलजा समूह की एक चैत्यशाला गोल है जिसका व्यास 7.75 मी0 है। अपने ढंग का यह अद्भुत चैत्य गृह कहा जा सकता है।

कान्हेरी :

कान्हेरी का प्राचीन नाम कृष्णा गिरी मिलता है। यह स्थान बम्बई से 16 मील दूर उत्तर दिशा में वोरीवली स्टेशन से 5 मील दूर है। यहाँ पर्वतों को काटकर बौद्ध भिक्षुओं के लिए सैकड़ों गुफाओं का निर्माण किया गया। यहाँ का गुफा वास्तु कार्ले के समान है। इस गुफा की कल्पना द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के अन्तिम भाग में उस समय हुई, जब सातवाहन साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर था। यहाँ के गुफाओं की सबसे विशेष बात यहाँ का चैत्यगृह है। इसका निर्माण कार्ले के नमूने पर किया गया। वास्तु विकास की दृष्टि से यह कार्ले के ही इतना बड़ा है परन्तु कलात्मक दृष्टि से कुछ उतरा सा लगता है। इसके प्रांगण के सिरे में एक वेदिका है जो विभिन्न प्रकार से अलंकृत है। नीचे की पट्टी में यक्षों की जड़ी मूर्तियाँ है, जो ऊपर की तरफ हाथ उठाये हैं। इनमें से कुछ चतुर्भुजी है परन्तु सभी प्रतिमाओं का एक हाथ ऐसी मुद्रा में ऊपर की ओर उठा है, जैसे लगता है कि मानो वे किसी भार को रोक रही हो। डॉ0 अग्रवाल ने इन्हें भारपुत्रक की संज्ञा

दी है।[48] आंगन के दोनों छोरों पर दो बड़े पार्श्व स्तम्भ है, जो पीछे की ओर चट्टान से जुड़े हैं किन्तु ऊँचाई तथा आकार में वे कार्ले के कीर्ति स्तम्भ के समान है। शिल्पियों के नौसिखिएपन तथा चट्टानें ठोस होने के कारण यहाँ कला का ह्रास दृष्टिगोचर होता है।

बेडसा :

यह कार्ले से 10 मील दर दक्षिण दिशा में है। यहाँ की गुफाओं में काष्ठ शिल्प से पाषाण शिल्प की ओर प्रगति देखने को मिलती है। यहाँ के चैत्य गृह का समस्त मुख पट्ट यथार्थ रूप में वास्तु एवं शिल्प कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसकी तुलना कार्ले के चैत्य के मुख पट्ट से की जा सकती है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 131
2. कुमारस्वामी : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ0 17
3. अलेक्जेंडर कनिंघम : दि स्तूप आफ भरहुत (पुनमुर्दण), वाराणसी, 1962
4. कृष्ण दत्त बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 73
5. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 55
6. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर, हिन्दू बुद्धिस्ट, पृ0 14
7. ए0के0 कुमारस्वामी : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ031
8. उद्धत, यू0एन0 उपाध्याय एवं जी0 तिवारी : भारतीय स्थापत्य एवं कला, पृ0 72
9. कृष्ण दत्त बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 74
10. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर, बुद्धिस्ट–हिन्दू, पृ0 14
11. डॉ0 के0डी0 बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 75
12. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 162
13. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर, बुद्धिस्ट–हिन्दू, पृ0 15
14. वही, पृ0 14
15. उद्धत, के0सी0 श्रीवास्तव : प्रीचन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0298
16. ए0एल0 श्रीवास्तव : भारतीय कला, पृ0 54
17. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 166

18. निहार रंजन रे : मौर्य एण्ड पोस्ट मौर्यन आर्ट, 1975, दिल्ली

19. के0डी0 बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 77

20. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 176

21. के0डी0 बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 79

22. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 274

23. डॉ0 जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 76

24. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 288

25. उद्धत : के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0357

26. कुमारस्वामी : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ0 55

27. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 275

28. वेन्जामिन रोलैन्ड : दि आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर आफ इण्डिया, पृ0138

29. वही, पृ0 165

30. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 279

31. डॉ0 जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 77

32. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 243–44

33. उद्धत : ए0एल0 श्रीवास्तव, भारतीय कला, पृ086

34. डॉ0 यू0एन0 उपाध्याय एवं जी0 तिवारी : भारतीय स्थापत्य एवं कला, पृ0124

35. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 225

36. के0डी0 बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 84

37. डॉ0 जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 65

38. सी. शिवराम मूर्ति : अमरावती स्कल्पचर, मद्रास, 1942

39. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 302

40. सी. शिवराम मूर्ति : अमरावती स्कल्पचर, मद्रास, 1942, पृ0 45

41. कुमारस्वामी : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृ0 71

42. के0डी0 बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 101

43. रमानाथ मिश्र : भारतीय मूर्ति कला का इतिहास, दिल्ली, 2002, पृ0157—162

44. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 202

45. वही, पृ0 210

46. वही, पृ0 311—12

47. ''बैजमन्तितो सेडिना भुतपालेना सेलधरं परिनिठपिंत जबुदिपम्हि उत्तम।'' (उद्धत : के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 316)

48. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0217

द्वितीय अध्याय

गुप्तकालीन चित्रकला

चित्रकला का इतिहास उतरा ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता का। सहस्रों वर्ष प्राचीन प्रागैतिहासिक काल की कला कृतियों से यह प्रमाणित हो चुका है कि मनुष्य में चित्रण की प्रवृत्ति उस समय से है, जब वह आदिम जीवन व्यतीत करता था तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए चित्रांकन का सहारा लेता था।

प्राचीन भारतीय चित्रकला विश्व की प्राचीनतम कलाओं में से एक है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक चित्रकला के उदाहरण प्राप्त होते हैं। चित्रकला का प्राचीनतम प्रमाण भीमबेटिका, पंचमढ़ी, होशंगाबाद (आदमगढ़), सिघनपुर (रायगढ़) आदि स्थलों से मिलता है। सिन्धु सभ्यता में दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले बर्तनों पर अलंकृत चित्रकारी को देखकर यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय चित्रकला कितनी अधिक समुन्नत थी और उसका कितना व्यापक प्रसार था। चित्रकला की यह धारा बाद के समय में भी अविरल गति से प्रवाहित होती रही। परन्तु दुर्भाग्यवश चित्रकला की एक ऐसी श्रृंखला उपलब्ध नहीं है जिसकी युगगत कड़ियों को जोड़कर हम उसके विकास का एक क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत कर सके।

गुप्त युग में प्राचीन चित्रकला अपने वैभव, गौरव और ज्ञान की चरम पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी। इस युग में चित्रकला का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस युग की चित्रकला की सूक्ष्मता और सौन्दर्य, उसकी शैली और विकास बड़े व्यापक थे। गुप्त युग की संस्कृति गुप्त साम्राज्य की सीमाओं को पार कर फैल गई थी। इस युग की चित्रकला का परिवेश भी गुप्त साम्राज्य की सीमायें लाघकर भारत की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर विदेशों की आस्था और कलाकारिता में प्रविष्ठित हो गया। यही कारण है कि अजन्ता और बाघ की गुप्त

युग की चित्रकला की बेले न केवल दक्षिण भारत में सित्तनवासल, तिरुमलैपुरम्, कांची आदि में लगी, अपितु भारत के बाहर समुद्र पार लंका में सिगिरिया, चम्पा, हिन्दीशिया, चीन में तुनहुगांग, मध्य एशिया में कूचा आदि के विहारों और चैत्यों में भी वट–वृक्ष की भांति शाखा–प्रशाखा में फैलती गयी। कला–मर्मज्ञों की ध ारणा है कि अजन्ता की चित्रशैली ने चीनी–जापानी चित्रशैली को प्रभावित कर परोक्ष और दूर की प्रेरणा से चीनी, विशेषतः जापानी माध्यम से, उन्नीसवीं सदी के अन्त के दशकों में यूरोपीय कलम को भी प्रभावित किया।[1]

गुप्त युगीन साहित्य में चित्रकला के विविध संदर्भ भरे पड़े हैं। उस युग में चित्रकला को लोग केवल शौकिया ही नहीं सीखते थे, वरन् नागरिक समाज के उच्च वर्ण और राजमहलों की स्त्रियों और राजकुमारियों के बीच चित्रकला का ज्ञान एक अनिवार्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुण माना जाता था। सामान्य जनता में भी इसका खूब प्रचार–प्रसार था।

प्राचीन ग्रन्थों में चित्रकला को चित्र कर्म रचना[2], चित्र कर्म्म[3] और आलेख्य[4] कहा गया है। वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ कामसूत्र में चित्रकला की गणना 64 कलाओं में की है। राजमहलों तथा धनी वर्ग के लोगों के घरों में चित्रशाला होती थी। कालिदास ने 'चित्राचार्य' शब्द का प्रयोग चित्रकला के शिक्षक के लिए किया है।

गुप्त युग में विभिन्न प्रकार के चित्रों का अंकन हुआ, जैसे– साधारण चित्र, प्रतिकृति या आकृति चित्र, भू–चित्र, भित्ति चित्र, अलंकरण या सजावट के चित्र, यम पट इत्यादि। कालिदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उस समय विभिन्न प्रकार के चित्र होते थे। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में चित्र[5] और मालविकाग्निमित्र में प्रतिकृति[6] शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्रतिकृति से उनका तात्पर्य आकृति चित्र से है। आकृति चित्र दो प्रकार के होते थे– व्यक्तिगत

और सामूहिक। इस संदर्भ में कालिदास की कृतियों में अनेक उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने लिखा है कि अज के शोक को कम करने के लिए इन्दुमती का चित्र तथा दशरथ का चित्र 'बलि मन्निकेत' में पूजार्थ रखा गया था।[7] पार्वती द्वारा शंकर का चित्र बनाये जाने का उल्लेख कुमारसंभव में है। कालिदास की रचनाओं में प्रकृति चित्रण की समग्र योजना का भी आभास मिलता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला के प्रतिकृति को पहचान कर दुष्यन्त उसके भय, औत्सुक्य, शैथिल्य आदि भावों की ओर संकेत करता है। थकान से शकुन्तला के बाल खुलकर लटक गये हैं, चेहरे पर पसीने की बूँदें झलक रही हैं।[8] प्रतिकृतियां एकाकी और सामूहिक दोनों प्रकार की होती थी। सामूहिक प्रतिकृतियों का उल्लेख मालविकाग्नि मित्रम् के प्रथम अंक में है। इस चित्र में रानी के साथ दासियों के बीच मालविका के चित्र होने का उल्लेख मिलता है। कुमारसंभव में भू–चित्र का ऐसा दृश्य प्रस्तुत हुआ है जिसमें पश्चिमी गगन पर कूची से विविध रंगों के अनन्त मेघों की परम्परा बन गई। विशाख दत्त के मुद्राराक्षस में यम पट नामक एक विशेष चित्र का उल्लेख है। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य बुद्ध घोष ने इस काल से कुछ पहले 'चरण चित्र' का उल्लेख किया है। दोनों एक ही प्रकार के चित्र थे और दोनों का सम्बन्ध मृत्यु के बाद के जीवन के चित्रण से है।

गुप्तकालीन साहित्य से ज्ञात होता है कि चित्रकला के सिद्धान्त तथा तकनीक पर गम्भीरता से विचार कर उन्हें निर्दिष्ट कर दिया गया। गुप्तकालीन तकनीकी और ललित दोनों प्रकार के साहित्य में चित्रकला की विविध विधाओं और प्रकारों का उल्लेख हुआ है। भरत के नाट्यशास्त्र में रंग आदि का सिद्धान्त निर्धारित किया गया। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला सम्बन्धी एक पूरा अध्याय है। उसके एक अध्याय में सिद्धान्तों पर विचार किया गया है। कामसूत्र के टीकाकार यशोधर ने भी चित्रकला के 6 अंगों का उल्लेख

किया है– रूप भेद (विधा या प्रकार या आकृति विज्ञान), प्रमाण (नाप या उचित अवयवीय अनुपात), भाव (रूप पर विचार का प्रभाव), लावण्य योजना (सौन्दर्य निरूपण), सादृश्य (तद्रूपता) और वर्णिका भंग (रंगों की ठीक व्यवस्था)।[9]

गुप्तकाल में चित्र बनाने की विधियों का ज्ञान हमें कालिदास की रचनाओं से होता है। जिस आधार पर चित्र बनाये जाते थे, उसे "चित्रफलक" कहते थे।[10] संभवतः यह लकड़ी का चौकोर तख्ता होता था। दीवारों तथा कपड़ों पर भी चित्र बनाये जाते थे। चित्र की पृष्ठभूमि को भलीभाँति स्वच्छ कर उसके ऊपर मृगनाभि अथवा चन्दन का अंगराग या लेप लगाया जाता था। कभी–कभी शुक्ला गुरू को चन्दन के स्थान पर प्रयोग में लाया जाता था। इसके पश्चात् चित्र बनाने हेतु वर्तिका से रेखायें खींच लेते थे। भित्ति चित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम दीवारों को घिसकर चिकना किया जाता था। इसके पश्चात् प्रस्तर चूर्ण, मिट्टी और गोबर मिलाकर शीरे के सम्मिश्रण से लेप तैयार किया जाता था। लेप बराबर कर पृष्ठभूमि तैयार होने पर चित्रांकन किया जाता था। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में चित्रांकन के लिए लेप लगाने का उल्लेख किया गया है।[11] कुमारसम्भव में शुक्ला गुरू से लीपे गये स्थान पर गोरोचना से रेखा खींचने का वर्णन है।[12] प्लास्टर से पृष्ठभूमि तैयार कर लेने के पश्चात् रेखाओं से चित्रों का खाका बना लेते थे। चित्रों की सीमायें बनाने वाली खाकों की बाहरी रेखायें गेरू से खींच दी जाती थी। तत्पश्चात् चित्रों की आकृतियों का रेखांकन कर बाद में तूलिका से विविध रंग भरकर चित्र को पूर्ण कर लिया जाता था।

गुप्तकाल में चित्रकार के पास एक पेटी होती थी जिसमें विभिन्न प्रकार के रंग तथा चित्र निर्माण से सम्बन्धित उपकरण होते थे। इस पेटी को वर्णमंजूषा या प्रतोलिका कहते थे। कालिदास ने रघुवंश में इस प्रकार की पेटी का वर्णन किया है।[13] वात्स्यायन के कामसूत्र में ऐसी ही प्रतोलिका को प्रिया को

उपहार देने का उल्लेख है।[14] चित्र बनाने के लिए मुख्य रूप से लाल (सिन्दूरी या गेरू लाल), पीले, काले, नीले, हरे तथा सफेद रंग का प्रयोग अधिक होता था। इन विभिन्न रंगों का प्रयोग अनेक प्रकार के ब्रशों द्वारा होता था। इन ब्रशों के भी प्रकार थे, जैसे– शलाका[15], वर्तिका[16], तूलिका[17], कूर्च, लम्बा कूर्च इत्यादि। शलाका महीन नोक वाली पेंसिल थी, जिससे चित्रों की सीमा रेखा तथा आकृतियों का बहिरंग खीचा जाता था। वर्तिका मोटी पेंसिल के समान थी, जिसका उपयोग चित्र में विविध रंगों के भरने में किया जाता था। तूलिका रुई से बनी नरम कूची तथा कूर्च बालों से बने ब्रश को कहा जाता था।

गुप्त युग की चित्रकला के विश्व विख्यात नमूने महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में अजन्ता की गुफाओं में, तथा मध्य प्रदेश के धार जिले में इन्दौर से उत्तर पश्चिम में लगभग 140 किमी0 की दूरी पर, बाघिनी (बाघ) नदी के तट पर बाघ की गुफाओं में प्राप्त होते हैं। इनका विवेचन अग्रलिखित है।

(अ) अजन्ता चित्रकला

'लोरेन्स बिनयन' के अनुसार अजन्ता की कला एशिया और एशिया की कला के इतिहास में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जितना कि यूरोप और यूरोप की कला के इतिहास में 'आसिसी', 'सियना' और 'फ्लोरेंस' की कला का है।[18]

अजन्ता की विश्व प्रसिद्ध गुफाएँ गुप्ताकलीन कला का ज्योतिर्मय आवास है। अजन्ता की गुफाओं में वास्तु कला, मूर्ति कला और चित्रकला का उत्तम समन्वय देखने को मिलता है।

अजन्ता का नामकरण –

अजन्ता नामक एक प्राचीन ग्रन्थ "महामयूरी" में "अजिताञजेय"

नामक एक स्थान का संदर्भ है।[19] गुफाओं से कुछ किलोमीटर दूर पर ''अजिष्ठा'' नामक ग्राम है, जिसका मूल उच्चारण ''अजिस्ठा'' है। इसी नाम के आधार पर ही वर्तमान में अजन्ता व्यवहार में आने लगा और हिन्दी उच्चारण में इसे अजन्ता पुकारा जाने लगा। अजन्ता का संदर्भ एक और रूप में भी है– मैत्रेय (भविष्य में अवतरित होने वाले बुद्ध) को आजित कहा जाता है। अतः बौद्ध धर्म से सम्बन्धित गुफाओं का ''अजन्ता'' नाम उचित रहता है।[20]

अजन्ता गुफा की स्थिति –

अजन्ता की गुफाएं भारत में महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में मध्य रेलवे के जलगांव स्टेशन से 55 किमी0 दूर फर्दापुर ग्राम के समीप स्थिति है। जलगांव स्टेशन से यहाँ तक की दूरी बस द्वारा पूरी की जाती है। औरंगाबाद से इसकी दूरी लगभग 100 किमी0 तथा फर्दापुर ग्राम से 6.50 किमी0 है। फर्दापुर में ठहरने हेतु अतिथि गृह तथा डाक बंगला है।

अजन्ता प्राचीन समय में उत्तर तथा दक्षिण के बीच एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। वर्तमान में यह एक छोटा सा गाँव है, जहाँ से इन गुफाओं की दूरी 5–6 किमी0 है। अजन्ता की ये गुफायें सतपुड़ा की पहाड़ियों के अर्द्धचन्द्राकार घाटी में स्थित है। यहाँ बाघोरा नदी पहाड़ियों को काटती व उसके पैरों में सांप सी लोटती हुई कमान की तरह मुड़ गई है। इस नदी के घुमाव के कारण घाटी का रूप अर्द्धचन्द्राकार हो गया है। इसके उत्तर की ओर एक मोड़ पर लगभग दो सौ पचास फुट ऊँची पहाड़ी खड़ी है और इसी पहाड़ी में एक अर्द्धचन्द्राकार पंक्ति में ये गुफाएँ काटकर बनाई गई हैं। इस शान्त तथ नीरवता के वातावरण को देखकर इस निःसर्ग सुन्दर स्थान को धर्मोपासना के लिए जिसने चुना, उसकी वृत्ति कितनी सुरुचिपूर्ण, अन्तःकरण कितना संवेदनशील और चेतना कितनी सौन्दर्य पूर्ण रही होगी, इसका सहज अनुमान केवल वही कर सकता है,

जिसने इस सृष्टि–सौन्दर्य को स्वयं देखा हो। यहाँ की कला और साधना को देखकर रोम–रोम विह्वल हो उठता है। लगभग आठ सौ वर्षों तक निरन्तर बौद्ध भिक्षुओं के कला की साधना का स्थल रहे इन गुहा मंदिरों की निर्माण प्रक्रिया तथा कलात्मक वैभव की कल्पना इन्हें बिना देखे नहीं की जा सकती।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेगसांग जो कि सातवी शताब्दी में भारतवर्ष आया था, ने अपने यात्रा संस्मरण में इन गुहा मंदिरों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।[21] सम्राट हर्ष के समय बाणभट्ट ने गुफा चित्रों का जो वर्णन किया है, वह भी अजन्ता के ही समान है।

अजन्ता की खोज एवं जीर्णोद्धार –

अजन्ता के गुफाओं की खोज भारतीय चित्रकला के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। ये महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ लगभग 1000 हजार वर्ष तक कलाजगत् में अनभिज्ञता का शिकार होकर अचानक कैसे प्रकाश में आई, इसके पीछे एक कहानी है। उल्लेखनीय है कि आठवीं–नवीं शताब्दी में भारत को पुनः एक बार विघटनकारी प्रकृतियों का सामना करना पड़ा। जैन तथा सनातन धर्म के पुनः एक बार सक्रिय हो जाने के पश्चात् बौद्ध धर्म का धीरे–धीरे पतन होने लगा तथा बौद्ध धर्म के धर्मावलम्बितयों की संख्या कम हो गई और इन गुफाओं का महत्व कम हो गया। इन गुफाओं में बौद्ध विद्वान, भिक्षु, भिक्षुणी के स्थान पर वन तथा पहाड़ों के पशु–पक्षी रहने लगे। इस प्रकार इन कलामण्डपों का स्थापत्य एवं वैभव धीरे–धीरे सघन जंगलों तथा विशालकाय वृक्षों में छिपता चला गया। ये गुफायें घुमक्कड़ जातियों का आश्रय स्थल बन गई। घुमन्तु जातियों के रसोई बनाने से इनके चित्र धुंए के कारण कुरूप हो गए हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि औरंगजेब की सेना ने अपने सैन्य अभियान के समय इस क्षेत्र से गुजरने पर इन गुफाओं को देखा था परन्तु राजनीतिक तथा सैनिक व्यस्तता के कारण इस ओर

ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार ये कला मण्डप सैकड़ों वर्षों तक जंगली पशु–पक्षियों के रैन बसेरा बने रहे।

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की स्थापना के पश्चात् 1819 AD में मद्रास सेना के कुछ अधिकारी शेर के शिकार की खोज मे अजन्ता पहुँच गये। यहाँ उन्हें शेर तो नहीं मिला परन्तु उन्होंने पहाड़ के एक भाग से नीचे घाटी में एक बड़ी गुफा देखी। यह अत्यधिक वर्षा के कारण कुछ खुली हुई थी। ये सैनिक अधिकारी नीचे गये और वहाँ ढकी हुई अनेक गुफाएं देखी। पहाड़ के जिस स्थान से खड़े होकर नीचे के घाटी की गुफाओं को देखा गया था, वहाँ एक छोटा–सा स्मारक भवन बना हुआ है, जिसे व्ह्यू–प्वाइंट (View-point) कहते हैं। वर्तमान में यहाँ जाने का मार्ग बना दिया गया है और यहाँ से सभी गुफाओं के दृश्य देखे जा सकते हैं। इन सैनिक अधिकारियों ने तुरन्त गाँव वालों से कुल्हाड़ी, भाले, ढोल, टार्च आदि लेकर आने के लिए कहा। इस प्रकार सदियों से भूले गुफा मंदिरों तक पहुँचने का रास्ता साफ हुआ और बौद्ध कला की इस महान उपलब्धि से कला मर्मज्ञों का परिचय हो सका।

यह सूचना पाकर सर्वप्रथम कम्पनी के एक अंग्रेज अधिकारी ''विलियम एरिकसन'' ने एक लेख तैयार कर उसे ''बाम्बे लिटरेरी सोसाइटी'' में पढ़ा। इस लेख में उन्होंने अजन्ता के गुफा मंदिरों का उल्लेख किया।

अजन्ता के गुहा मन्दिरों की जानकारी प्राप्त करके 1824 AD में लेफ्टिनेंट जेम्स ई0 अलेक्जेन्डर ने इन गुफाओं को देखा और इस अनुपम धरोहर की जानकारी ''रायल एशियाटिक सोसाइटी'' लन्दन को भेजी। परन्तु सोसाइटी उनकी इस समीक्षा से संतुष्ट न हुई। 1843 AD तक इन गुफाओं की ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

1843 AD में अजन्ता के भित्ति चित्रों पर विशेष ध्यान तब दिया गया, जब जेम्स फर्ग्यूसन ने "रायल एशियाटिक सोसाइटी" के समक्ष अपना एक लेख "राक कट टैम्पिल्स आफ इण्डिया" शीर्षक पढ़ा।[22] यह लेख उन्होंने लगातार चार वर्षों तक अजन्ता के भित्ति चित्रों का अध्ययन करने के बाद प्रस्तुत किया था। अपने लेख में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इन चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार की जाए तथा इनकी सुरक्षा के लिए विशेष कदम उठाया जाय। इसका प्रभाव यह हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टर ने अजन्ता के भित्ति चित्रों की अनुकृति करने के लिए मद्रास आर्मी के एक कुशल चित्रकार मेजर रावर्ट गिल को 1844 में नियुक्त किया।

मेजर रावर्ट गिल ने 12 वर्षों तक अथक परिश्रम करके 30 पूर्ण आकार की प्रतिलिपियाँ तैयार की। उनका माध्यम तैल रंग रहा। 1857 के विद्रोह की ज्वाला भड़कते ही मेजर गिल ने चित्रों की अनुकृतियाँ बनाने का कार्य छोड़ दिया, जिन्हें वे स्वदेश ले गए। 5–6 को छोड़कर सभी प्रतिकृतियाँ "सिडिहोम के क्रिस्टल पैलेस" की प्रदर्शनी में प्रदर्शित की गई। दुर्भाग्यवश इस भवन में भीषण आग लग जाने से ये प्रतिकृतियाँ जलकर स्वाहा हो गई। इस प्रकार 5–6 चित्र, जोकि प्रदर्शित नहीं हुए थे, कुछ छोटे–छोटे एनग्रेविंग प्रिन्ट 'मिसेज इस्यियर' की एन्सेन्ट इण्डिया नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए थे।

जेम्स फर्ग्यूसन तथा डॉ0 वर्मीज आदि कलाविदों ने भारत सरकार से क्रिस्टल पैलेस के अग्निकाण्ड में स्वाहा हुई अजन्ता की बहुमूल्य एवं महत्वपूर्ण प्रतिलिपियों के प्रतिस्थापन की माँग की। उनकी इस माँग पर ध्यान देते हुए बम्बई स्कूल ऑफ आर्ट के प्राचार्य जान ग्रिफित्स को इस कार्य हेतु तैयार किया गया तथा 5000 रूपये स्वीकृत किये गये। ग्रिफित्स महोदय जो कि एक अनुभवी कलाकार थे, अपने प्रतिभावान छात्रों की मदद से इन भित्तिचित्रों की अनुकृतियाँ

तैल रंग की सहायता से तैयार की। परन्तु ग्रिफित्स महोदय के अटूट लगन तथा अथक परिश्रम का भी वही हश्र हुआ जो मेजर गिल की प्रतिलिपियों का हुआ था। जून 1885 में साउथ केन्सिगटन के इण्डियन म्यूजियम में आग लगने के कारण ग्रिफित्स द्वारा तैयार 87 प्रतिलिपियाँ जलकर स्वाहा हो गई। यद्यपि ग्रिफित्स महोदय ने इन प्रतिलिपियों को इग्लैंड भेजने का विरोध किया था, लेकिन अंग्रेज अधिकारियों ने उनकी एक न सुनी। इसके पश्चात् ग्रिफित्स महोदय पुनः अजन्ता गए, जहाँ उन्होंने प्रतिलिपियाँ तैयार की, जो दो जिल्दों में ''दी पेटिंग्स ऑफ बुद्धिस्ट केव टेम्पल ऑफ अजन्ता'', ''खान देश इंडिया'' शीर्षक से सन् 1896 में प्रकाशित हो चुकी हैं। अजन्ता चित्रों की ख्याति से प्रभावित होकर 1909 से 1911 के मध्य ''लेडी हैरिघम'' भारत आईं तथा अजन्ता शिला गृहों के दर्शनोपरान्त उन्होंने इसके चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार करने का निर्णय लिया। उनके पर्यवेक्षण में सैयद अहमद, मोहम्मद फजलुदीन, नन्दलाल बोस, आसित कुमार हाल्दार, समरेन्द्र नाथ गुप्त, वेकटप्या, लार्चर तथा ल्यूक जैसे तरुण भारतीय कलाकारों द्वारा पुनः अजन्ता के चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार कराई। इस बार उनका माध्यम जल रंग रहा और इस कार्य में सरकार का कोई हाथ नहीं था। इन प्रतिलिपियों को ''अजन्ता फ्रेस्को'' नाम से इण्डिया सोसाइटी में सन् 1915 में प्रकाशित किया।

स्वतंत्रता के पूर्व और राज्यों के पुनर्गठन के पहले अजन्ता की गुफाएँ हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत थे। हैदराबाद राज्य के पुरातत्व विभाग के निर्देशक ''गुलाम यजदानी'' ने अजन्ता के चित्रों की पुनः प्रतिकृतियाँ तैयार करवाई और लेख को निजाम सरकार के पुरातत्व विभाग ने चार भागों में क्रमशः 1930, 1933, 1946 व 1955 में प्रकाशित करवाया।

अजन्ता के चित्र सुरक्षित नहीं रह पाये हैं। हैदराबाद के निजाम ने इन चित्रों के सुरक्षा में अपनी कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई और बाद में छोटे दर्जे के अधिकारियों ने इसे क्षति पहुँचाई। आम जनता ने भी इसे जगह–जगह खुरच डाला है। सन् 1903 से 1904 के बीच पुरातत्व विभाग ने प्रमुख चित्रों के सामने जाली लगवा दी तथा इसकी सफाई भी करवाई। इन चित्रों को अपक्षय तथा विनाश से बचाने के लिए एक विस्तृत योजना के अन्तर्गत इटली के भित्तिचित्र विशेषज्ञों प्रो0 लोरेजो सिकोनी तथा काण्ट ओर्सिनी को सन् 1920 से 22 ई0 तक बुलाकर इन चित्रों की सफाई व संरक्षण कराया गया। रासायनिक उपचार से चित्रों को साफ किया गया और जहाँ प्लास्टर में दरार पड़ गई थी, उन्हें प्लास्टर आफ पेरिस से भर दिया गया, जिससे प्लास्टर खण्ड, दीवार से गिर न जाय। कुछ उत्साही अधिकारियों द्वारा सुरक्षा के नाम पर इन चित्रों पर वार्निश लगवा दिए जाने के कारण चित्रों के सौन्दर्य में गिरावट आई है। सन् 1908 में अजन्ता के क्यूरेटर की नियुक्ति हुई। 1953 से भारत सरकार के सर्वेक्षण विभाग इन गुफा चित्रों के संरक्षण का दायित्व अपने हाथ में ले लिया। 1976 से इन चित्रों का विशेष संरक्षण कार्य चल रहा है। आज बहुत से चित्रों को शीशों व कपड़ों के पर्दों से ढक दिया गया है, ताकि वाह्य प्रकाश पुंज चित्रों की चमक को कम न कर दे।

अजन्ता गुहा मन्दिरों का निर्माण –

अजन्ता गुहा मन्दिर में कुल 30 गुफाएं हैं। इनमें 29 पूर्णनिर्मित तथा 1 अर्द्धनिर्मित गुफाएं क्षीणकाय वाघोरा नदी के तट पर स्थित अर्द्धचन्द्राकार पहाड़ी चट्टानों को काटकर बनाई गई है। पहले 29 गुफाओं की एक श्रेणी थी लेकिन बाद में एक और गुफा का पता चला, जिसकी क्रम संख्या 15अ रखी गई क्योंकि यह गुफा 14 ओर 15 के बीच स्थित है। अध्ययन की सुविधा से इन गुफाओं की गिनती पूर्व से पश्चिम की ओर की गई है।

अजन्ता की गुफाओं में 9, 10, 19, 26 तथा 30 चैत्य हैं, जहाँ पूजा और उपासना होती थी। शेष गुफाए बौद्ध भिक्षुओं के रहने के लिए निर्मित की गई थी। दूसरे शब्दों में ये गुफाएं विहार हैं।

अजन्ता के गुहा मन्दिरों का निर्माण एक ही समय में नहीं हुआ। इसका निर्माण लगभग 900 वर्षों के सतत् प्रक्रिया का परिणाम है। इनका निर्माण शुंग वंशीय राजाओं के शासन काल से प्रारम्भ होकर सातवाहन, वाकाटक, गुप्त राजाओं के शासनकाल को पार करता हुआ चालुक्य वंश के अभ्युदय के साथ समाप्त हो जाता है। अजन्ता गुहा मन्दिरों के निर्माण में सबसे अधिक योगदान वाकाटक राजवंश का है। गुहा क्रमांक–16 के एक लेख से ज्ञात होता है कि वाकाटक नरेश हरिषेण के अमात्य वाराह देव ने अजन्ता के सर्वश्रेष्ठ ''सुवीथि'' गुहा मंदिर 16, 17 (विहार) तथा 19 (चैत्य गृह) का निर्माण कराकर बौद्ध संघ को प्रदान कर दिया था। वाकाटक नरेशों के शासनकाल में अजन्ता चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थी।

अजन्ता के तीन गुहा मन्दिर 9 एवं 10 (चैत्य गृह) तथा 12 (विहार मण्डप) ईसा पूर्व के काल के हैं। शेष सभी ईस्वी सन् के आरम्भ होने के बाद निर्मित हुए।

धार्मिक दृष्टि से गुहा मन्दिर क्रम संख्या 8, 9, 10, 12 और 13 हीनयान काल के हैं और ये संभवतः ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर दूसरी शती ईस्वी के बीच उत्खनित किए गए। शेष गुफाएं महायान काल की है जिनका निर्माण 450 ईस्वी से लेकर 650 ईस्वी के बीच हुआ। इस प्रकार अजन्ता गुहा मंदिर के निर्माण काल को दो भागों में बाँटा जा सकता है, जिसकी अपनी–अपनी विशेषता है। हीनयान काल में जो गुफाएं निर्मित हुई हैं, उनके स्थापत्य तथा कला में सादगी दिखाई देती है, वही महायान काल में इसमें अलंकरणात्मक

प्रवृत्ति बढ़ जाती है। प्राचीनता की दृष्टि से इनका निर्माण क्रम इस प्रकार है– क्रम सं0 10, 9, 12, 13, 8, 11, 6, 7, 16, 17, 19, 26, 1 और 2, बाकी 15 गुफाएँ अधूरी हैं।

चित्र निर्माण की तकनीक –

चित्रों के निर्माण की तीन प्रमुख तकनीक हैं– फ्रेस्को, टेम्पेरा और एन्कास्टिक। फ्रेस्को तकनीक में चित्रों का निर्माण गीली सतह पर किया जाता है। टेम्पेरा में सूखी तरह पर चित्र बनते हैं। एन्कास्टिक विधि में चित्र के निर्माण के पूर्व मोम का लेप किया जाता है। अजन्ता में चित्र निर्माण में इन तीनों तकनीकों का प्रयोग सुविधानुसार किया गया है। गुहा मंदिरों की दीवारें जोकि पत्थर की थी, उन्हें पहले समतल करके छेनी से छेद कर खुरदुरा छोड़ दिया जाता था। ऐसा इसलिए किया जाता था कि इस पर किया गया पलस्तर पत्थर को मजबूती से पकड़ ले। पलस्तर का यह मसाला चट्टानों के बारीक रेत, खड़िया, चूना, गोबर, भूसी, गोद मिलाकर तैयार किया जाता था। इसे पतला लेप करके गुफाओं के भीतरी दीवारों और छतों का समतल बनाते थे। चित्र सूत्र में मसाला बनाने की जो विधि दी गई है उन सामग्रियों के इस्तेमाल से इन्कार नहीं किया जा सकता। प्लास्टर की पहली तह पौन इंच से लेकर एक इंच तक मोटी होती थी। इसके पश्चात् मिट्टी, महीन बालू, भूसी को मिलाकर प्रलेप की दूसरी परत लगाई जाती थी। इसी लेप को ही विष्णुधर्मेत्तर पुराण में "वज्रलेप" कहा गया है। दीवाल के पलस्तर के गीला रहने पर ही उस पर चूने का पतला घोल पोत दिया जाता था। चित्रों की चमक को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि चूने के सतह की घुटाई भी की जाती है। इस प्रकार लेप तथा घोल सूखने के बार चित्र बनाने की भूमि तैयार हो जाती थी। इस सतह पर विविध रंगों से चित्रों का निर्माण कुशल चितेरों द्वारा होता था।

रंग –

चित्राधार तैयार होने के पश्चात हल्के गेरू रंग से तूलिका (ब्रश) द्वारा रेखांकन किया जाता था। आवश्यकतानुसार काले रंग से उसमें संशोधन भी किया जाता था। भित्ति चित्रों में केवल खनिज रंगों का ही प्रयोग होता था, ताकि चूने के प्रभाव में रंग हल्का न पड़े। रंगों का निर्माण पीली मिट्टी, नील के पौधों, खड़िया तथा काजल आदि से किया जाता था। अजन्ता में रंगों की संख्या कम दिखाई देती है। यहाँ के चित्रों में प्रमुखतया पीले, लाल, नीले, सफेद, काले और हरे रंग प्रयोग में लाये गये हैं। नीले को छोड़कर ये सभी रंग स्थानीय रूप से उपलब्ध है। लार्जवर्द को घिसकर बनाया गया गहरा नीला रंग अभी तक चटक है। इसे (लार्जवर्द) को संभवतः अफगानिस्तान के वदक्शा क्षेत्र से आयात किया गया था। चित्र सूत्र के अनुसार विभिन्न रंगों को बनाने की जो प्रक्रिया बताई गई है, संभव है उस प्रक्रिया से भी कुछ रंग बनाये गये हों अथवा कुछ रंग वनस्पतियों से लिए गए हों। रंगों का रासायनिक विश्लेषण करने पर यह भी ज्ञात होता है कि इनमें गोंद मिलाकर चित्रण किया जाता था। रंगों का उपयोग स्वतंत्र रूप से अथवा दो या अधिक रंगों को मिलाकर किया जाता था।

शैली –

अजन्ता चित्रकला की शैली विश्व की शैलियों से सर्वथा भिन्न है। उसकी अपनी मौलिकता है। यह शैली अत्यन्त सरल तथा चित्ताकर्षक है। चित्रों की रूपरेखा भावमय एवं सप्राण है। इस शैली में करतल और अंगुलियों की, मुख मंडल और नेत्रों की अपनी मुद्राएं हैं। उसमें अंग–प्रत्यंगों का अपना सौन्दर्य तथा सौष्ठव है। आकृतियाँ जानी–पहचानी सी लगती हैं। अंगुलियाँ कमल की पंखुड़ियों की भाँति नमित होती हैं। नेत्र अर्द्ध–निमीलित मुद्रा में है।[23] गन्धर्वों, विद्याधरों के शरीरिक सौन्दर्य, पशुओं के शारीरिक गठन, पक्षियों की स्वाभाविकता,

फूल पत्तियों की सहज सुन्दरता को चित्रकार ने सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। अंग विन्यास तथा अलंकरण के उत्कृष्ट उदाहरण यहाँ से प्राप्त होते हैं। अजन्ता के चित्रकार कितने कुशल, कितने मानवीय और जीवन के प्रति कितने उदार, कितने संवेदनशील थे, ये चित्र भलीभाँति व्यक्त करते हैं।[24]

अजन्ता चित्रकला की विषयवस्तु –

अजन्ता चित्रकला की तीन विषयवस्तु हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. जातक कथाओं के चित्र :

इसमें बुद्ध के पूर्व जन्म सम्बन्धी कथाओं का चित्रण किया गया है।

2. बुद्ध एवं बोधिसत्वों के चित्र :

इसमें भगवान बुद्ध के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप के साथ ही पद्मपणि, व्रजपाणि, बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर का चित्रण किया गया है। साथ ही बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं जैसे– जन्म, गृह त्याग, संबोधि, निर्वाण आदि का भी इन गुफाओं में चित्रण है।

3. चित्रों की पृष्ठभूमि और अलंकार के लिए बनाई गई आकृतियाँ

इसमें विविध आलेखन बनाये गये हैं। जैसे– गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष–किन्नर, पशु–पक्षी, फूल–पत्तियाँ, पुष्प की बेले इत्यादि।

इस प्रकार अजन्ता के भित्ति चित्रों का प्रमुख विषय गौतम बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं तथा जातक कथाओं पर आधारित है। इन गुफाओं में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म से सम्बन्धित चित्रों का समावेश नहीं हुआ। बुद्ध और बोधिसत्वों के जीवन की घटनाओं को तथा जातक ग्रन्थों के कथानकों को बड़ी सुन्दरता तथा सजीवता के साथ चित्रित किया गया है। चित्रों में आध्यात्मिकता तथा बौद्धिकता दोनों की झलक दृष्टिगोचर होती है। अजन्ता के

कलाकारों ने जीवन की घटनाओं, मानव आकृति के चित्रण तथा प्रकृति के चित्रण के साथ–साथ अलंकरण तथा सजावट हेतु चित्र बनाने में भी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है।

अजन्ता की गुफाओं में गुफा क्रमांक 1, 2, 9, 10, 16, 17 में चित्रकला के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इनका समय अलग–अलग है। इनमें से गुफा क्रमांक 9–10 के चित्र दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व (शुंग–सातवाहन काल) के हैं। ये अजन्ता के चित्रों में सबसे प्राचीन है। गुफा क्रमांक 1 और 2 के चित्र सातवीं शताब्दी ईस्वी के हैं। गुफा क्रमांक 16 तथा 17 के भित्ति चित्रों को गुप्त–वाकाटक, कालीन माना गया है। ये चित्र अधिक सुरक्षित तथा तकनीकी दृष्टि से उत्कृष्ट है। इन गुफाओं के चित्रों का विवेचन निम्नलिखित है।

गुफा सं० 1 –

यह गुहा मंदिर अजन्ता गुहा समूह का उत्कृष्ट गुहा मंदिर है, जिसका निर्माण 500 से 625 ईस्वी के मध्य माना जाता है। इसमें कुछ चित्र वाकाटक साम्राज्य के अन्तिम वर्षों में तथा कुछ चालुक्य वंश के आरम्भ के समय बनाये गये हैं। यह एक विशाल गुफा है, जो एक सुरक्षित विहार गृह है। इसके मुख मण्डल की लम्बाई 64 फीट तथा चौड़ाई 9 फीट 3 इंच है।[25]

इस गुफा के प्रवेश द्वार के ठीक सामने अन्तराल एवं गर्भगृह बने हैं। इसके गर्भगृह में 20 फीट चौड़े चबूतरे पर भगवान बुद्ध की धर्म चक्र प्रवर्तन की मुद्रा में विशाल प्रतिमा बनी हुई है। उनके भव्य प्रतिमा के साथ उनके सेवकों की भी उभारदार प्रतिमाएँ उकेरी गई हैं। इस गुहा मंदिर में मूर्ति शिल्प, स्थापत्य एवं भित्ति चित्रों का उत्कृष्ट एवं सुन्दर समावेश देखने को मिलता है।

"नन्द की दीक्षा" इस गुहा मन्दिर के प्रमुख चित्रों में "शिबि जातक की कथा", "नन्द की दीक्षा", "बज्रपाणि", "पद्मपाणि बोधिसत्व", "मार विजय", नागराज शंखपाल, नागराज की सभा का दृश्य, चालुक्य राजा पुलकेशिन–द्वितीय के दरबार में ईरानी राजदूत के स्वागत का दृश्य, श्रावस्ती का चमत्कार इत्यादि उल्लेखनीय है।

शिबि जातक :

इस गुहा मंदिर के प्रवेश द्वार के समीप बायी ओर की दीवार पर "शिबि जातक" की कथा चित्रित है। इस कथा के अनुसार बोधिसत्व ने राजा शिबि के रूप में अवतार लिया था। वे अपनी उदारता और करुणा भाव के लिए प्रसिद्ध हुए। इस चित्र के प्रथम दृश्य में घायल कबूतर राजा शिबि की गोद में पड़ा शरण मांग रहा है। दूसरे दृश्य में राजा शिबि तराजू के पास खड़े हैं जो अपनी रानियों तथा दासियों के साथ घिरे हैं। अन्तिम दृश्य में इन्द्र तथा अग्नि को साधु के रूप में दिखाया गया है और वे राजा को श्रद्धाभिव्यक्ति के रूप में कुछ दे रहे हैं। चित्र का काफी भाग नष्ट हो चुका है। गुफा संख्या 17 में भी शिबि जातक की घटना का चित्रण किया गया है लेकिन यह घटना भिन्नता लिए हुए हैं। इस घटना में राजा ने अपने नेत्रों का दान कर दिया था।

नन्द की दीक्षा :

शिबि जातक के बाद बुद्ध के सौतएण्ले भाई नन्द के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की घटना का चित्र अंकित है। बुद्ध ने अपने भाई नन्द को दीक्षा देकर बौद्ध भिक्षु बनाया। चित्र में नन्द को राज्य का त्याग करते हुए, भगवा वस्त्र पहने हुए तथा नन्द की पत्नी सुन्दरी के विरह के कारण शोकमग्न होकर मूर्छित हो जाने की अवस्था को दिखाया गया है। चित्र को देखने से इसमें सजीवता का आभास मिलता है।

शंखपाल जातक :

शंखपाल जातक की विषयवस्तु बोधिसत्व के नाग के रूप में जन्म लेने तथा उनका त्याग है। इसमें बोधिसत्व का नागराज शंखपाल की योनि में जन्म लेकर नागलोक का वैभव भोग कर पुनः विरक्त हो जाने की कथा चित्रित है। इसी जातक कथा के एक चित्र में एक स्त्री का चित्र सुन्दर एवं आकर्षक है जो अत्यन्त भाव पूर्ण एवं तल्लीन मुद्रा में दिखाई गई है।

महाजनक जातक :

गुफा के बायी भित्ति पर 'महाजनक जातक' की कथा अंकित है। यह तीन भागों में बँटी है। पहले भाग में राजा राजसभा में खिन्न बैठे हुए दिखाये गये हैं, उनके पास में रानी बैठी हुई हैं, जो उन्हें समझा रही है। दूसरे भाग में राजा को किसी बौद्ध भिक्षु के सामने उपदेश की याचना करते हुए चित्रित किया गया है। तीसरे भाग में राजा को अश्व पर सवार होकर नगर द्वार से बाहर निकलते हुए दिखाया गया है। उसी विदाई के लिए आयी दासियाँ तथा उसकी रानी खिन्न है। सामने के दृश्य में जहाज को डूबते हुए दिखाया गया है।

अवलोकितेश्वर बुद्ध :

इसी गुफा की बायी दीवार पर अवलोकितेश्वर बुद्ध के चित्र को दिखाया गया है। इस चित्र के अंकन में चित्रकार ने असीम दया एवं विश्व करुणा को व्यक्त करने का अद्भुत प्रयास किया है।

बोधिसत्व पद्मपाणि :

यह चित्र (द्रष्टव्य चित्र सं0 5/परि0 5) अजन्ता के सबसे विख्यात चित्रों में से एक है। यह चित्र शान्ति एवं विश्व बन्धुत्व का सन्देश देता है। आज भी यह चित्र विश्व के कलाकारों के लिए एक चुनौती है। इसमें बोधिसत्व

रत्नजड़ित मुकुट, कुंडल, यष्टि, मुक्ता यज्ञोपवीत, केयूर तथा कटक आदि आभूषणों से युक्त है। दायें हाथ में कमल का पुष्प लिए हुए दिखाया गया है। पद्मपाणि के इस चित्र पर गुप्ताकलीन विष्णु की झलक दृष्टिगोचर होती है। यह चित्र शरीर सौष्ठव का वह आदर्श प्रस्तुत करता है जिसमें एक महामानव की कल्पना की गई है। इस चित्र के आधार पर विसेर स्मिथ ने कहा था– "The Ajanta School is local development of the cosmopolitian art of the contemporary Roman Empire."[26]

काली राजकुमारी :

बोधिसत्व के बायीं ओर एक नारी के चित्र का अंकन है, जिसे पाश्चात्य लेखकों ने काली राजकुमारी की संज्ञा दी है। इससे शरीर सौष्ठव तथा नैनों की लाली अनुपम है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह चित्र बोधिसत्व की पत्नी का है। संभवतः सिन्दूर रंग से चित्रांकन होने के कारण इसका रंग काला पड़ गया है। याजदानी ने इसे संसार की सुप्रसिद्ध कृतियों में से एक माना है।[27] मदनजीत सिंह ने इसे शक्ति पण्डारा कहा।[28]

बज्रपाणि तथा चम्पेय जातक :

पहली गुफा के अन्तराल से निकलकर सभामण्डल में वज्रपाणि का चित्र है। इस चित्र में वज्रपाणि के शरीर पर आभूषणों का बाहुल्य है तथा मुकुट बड़ा ही आकर्षक है। वज्रपाणि के दाहिनी ओर चम्पेय जातक की कथा चित्रित की गई है।

राज सभा का दृश्य :

प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर सभा मण्डप की दीवार पर राजसभा का दृश्य अंकित किया गया है। विद्वानों का मत है कि चालुक्य नरेश पुलकेशिन

द्वितीय की राजसभा का दृश्य है। इसमें सम्राट पुलकेशिन द्वितीय को ईरानी नरेश खुसरो परवेज के राजपूत का स्वागत करते हुए दिखाया गया है।

मार विजय :

पहली गुफा का एक अन्य प्रसिद्ध चित्र "मार विजय" का चित्र (द्रष्टव्य चित्र सं0 6/परिशिष्ट 6) है। यह चित्र गुफा की बायी भित्ति पर चित्रित किया गया है। इस चित्र में मार (कामदेव का स्वरूप) द्वारा महात्मा बुद्ध को समाधिस्थ अवस्था में विचलित करने के लिए प्रलोभन देने तथा महात्मा बुद्ध का मार द्वारा किए गए प्रलोभन से अप्रभावित होने पर मार की सेना एवं उसकी तीन पुत्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार से भयभीत करने की कथा का अभिव्यक्ति पूर्ण चित्रण किया गया है। इसी चित्र के ठीक सामने एक अन्य चित्र में असंख्य बुद्ध बनाकर श्रावस्ती का चमत्कार चित्रित किया गया है।

गुफा सं0 2 –

गुफा क्रमांक 2 एक गुहा विहार है, जिसका निर्माण 500–600 ईस्वी के मध्य माना जाता है। इसका मुख मण्डप लगभग 46 फीट लम्बा है। इसके बरामदे में छत पर अनेक मनोरंजक, आकर्षक अलंकरण चित्र हैं। इस गुहा मंदिर के चित्रों की स्थिति अच्छी है। इसके प्रमुख चित्रों में महाहंस जातक, माया देवी का स्वप्न, बुद्ध जन्म, श्रावस्ती का चमत्कार, पूर्णावदान जातक, विदुर पंडित की कथा, क्षान्तिवादी जातक, सर्वनाथ, प्राणों की रक्षा आदि चित्र उल्लेखनीय है।

महाहंस जातक :

गुहा में प्रवेश करने के बाद ही बायीं ओर महाहंस जातक कथा का प्रसंग है, जिसमें हंस के रूप में बोधिसत्व बनारस के राजा एवं रानी को धर्मोपदेश दे रहे हैं।

गुफा की बायी दीवार पर 'तुर्षित स्वर्ग', 'बुद्ध जन्म' तथा 'माया देवी का स्वप्न' नामक चित्र अंकित है।

माया देवी का स्वप्न :

अजन्ता के चित्रों में "माया देवी का स्वप्न" उत्कृष्ट चित्रों में से एक है। चित्र में माया देवी का शयन कक्ष दिखाया गया है। यहाँ वे अपने बिस्तर पर निद्रा में लेटी हुई हैं। निकट ही दो तीन दासियों को बैठा हुआ दिखाया गया है। चित्र में माया रानी का वह स्वप्न चित्रित है जिसमें उन्होंने एक श्वेत हाथी को अपने गर्भ में प्रवेश करते हुए देखा था। इस स्वप्न की चर्चा उन्होंने राजा शुद्धोधन से की थी।

बुद्ध जन्म :

बुद्ध जन्म वाले चित्र में महा माया तथा शुद्धोधन को स्वप्न की चर्चा करते हुए दिखाया गया है।

तुर्षित स्वर्ग :

इस चित्र में भगवान बुद्ध को स्वर्ग में सिंहासन पर विराजमान दिखाया गया है। यह चित्र अत्यन्त भव्य रूप में अंकित है। आगे "श्रावस्ती का चमत्कार" चित्रित है। श्रावस्ती में बुद्ध ने एक ही समय में अपने शरीर को पृथक–पृथक स्थान पर बतलाकर दर्शन दिया था।

गर्भ गृह के दाहिनी ओर दीवार पर कुछ अन्य चित्रों के अतिरिक्त तीन प्रसिद्ध जातक कथाओं के दृश्य अंकित किये गये हैं। इसमें विदुर पंडित का जातक चित्रण सबसे बड़ा है। इस चित्र में नागराज की पुत्री का झूले का खेल खेलना, उसके सौन्दर्य से यक्ष का प्रभावित होना, राजसभा और वहाँ होने वाली चर्चा का दृश्य अंकित है।

क्षान्तिवादी जातक :

मण्डप में प्रवेश करते ही दायी ओर की दीवार में बनी पहली कोठरी के उपर क्षान्तिवादी जातक की कथा चित्रित है। गुफा की दाहिनी ओर पूर्णक इन्दरवती की प्रेम कथा का चित्रण है।

गुफा सं0 9 –

यह गुफा एक चैत्य मंदिर है जो हीनयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। यह अजन्ता की प्राचीनतम् गुफाओं में से एक है। इसका निर्माण काल द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व निर्धारित किया गया है। इस गुहा के अधिकांश चित्र धूमिल हो गये हैं, परन्तु जो शेष बचे हैं वे अजन्ता के प्रारम्भिक चित्रकला के श्रेष्ठ उदाहरण है। इस गुफा के चित्रों की अपनी अलग विशेषता है, जो इन चित्रों को गुप्तकालीन चित्रों से पृथक करती है। यहाँ के चित्रों में कुल चार रंगों– काला, पीला, हरा तथा हिरौजी का प्रयोग हुआ है। इस गुफा का सबसे प्राचीनतम् चित्र ग्रिफिथ्स द्वारा खोजा गया "एक बैठी हुई स्त्री" का चित्र है।[29] इस गुफा के अन्य कुछ प्रसिद्ध चित्र निम्नलिखित हैं–

स्तूप पूजा :

यह इस गुफा का प्रसिद्ध चित्र है। इस चित्र में व्यक्तियों का एक समूह को स्तूप की परिक्रमा करते हुए दिखाया गया है। दायी ओर वादक का चित्र विभिन्न वाद्य यंत्रों को बजाते हुए चित्रित किया गया है। स्तूप के बाहर एक विहार का अंकन है जिसमें पीपल एवं वट वृक्ष लगे हैं। अगले दृश्य में विहार के बाहर दो व्यक्ति खड़े दिखाए गए हैं। ऐसा लगता है कि इसमें विहार निर्माण के बाद इसको संघ को भेंट देने का दृश्य अंकित है।

पशुओं का खेदा :

गुफा की बायी ओर पशुओं को खदेड़ते हुए मनुष्य का चित्र अंकित है। पशुओं के भागने के विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का अंकन उत्कृष्ट है।

नागराज :

इस गुफा की एक भित्ति पर दो नाग पुरुष अंकित किये गये हैं। इसमें एक के सिर पर टोप होने से ऐसा लगता है कि वे नागराज है और दूसरा उनका मंत्री। नागराजा को पूजा की बाते सुनते हुए दिखाया गया है। समूह की तरफ उड़कर आती हुई मानव आकृतियों का अंकन इस कथानक में और प्रभाव उत्पन्न करता है।

गुफा सं० 10 –

गुफा संख्या 10 अजन्ता की सबसे प्राचीन गुफा है और यह एक चैत्य गृह है। यह वही गुफा है जिसे अंग्रेज अफसरों ने व्यू प्वाइंट से देखा था। इसमें एक बहुत बड़ा स्तूप है। यहाँ के लेखों से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ था। इस गुफा के प्रमुख चित्रों में– ''साम जातक'', ''बोधि वृक्ष की पूजा'', ''राजकीय जुलूस'', ''छदन्त जातक'' का चित्र उल्लेखनीय है। चित्रों का विवेचन निम्नवत् है।

साम जातक :

इस गुफा में ''सामजातक'' कथा का प्रसंग चित्रित किया गया है। यह कथा बहुत सीमा तक श्रवण कुमार की कथा से मिलती–जुलती है परन्तु अंत थोड़ा अन्तर लिए हुए है। कथा के अनुसार बोधिसत्व ने एक अंधे दम्पत्ति के यहाँ इकलौते पुत्र साम के रूप में जन्म लिया। वह अपने माँ–बाप की सेवा सुश्रुषा करता था। एक बार जब वह नदी से मटका भर रहा था, तभी काशीराज द्वारा

तीर चलाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु एक देवी की कृपा से वह पुनर्जीवित हो गया तथा उसके माँ–बाप की आँखें भी लौट आई। चित्र में साम को बाये कंधे पर घड़ा लिए दर्शाया गया है। साम के माता–पिता के चित्र में वेदना स्पष्ट झलकती है। भागते हुए हिरण की मुद्रा अत्यन्त कलात्मक ढंग से चित्रित है।

छदन्त जातक :

साम जातक की कथा के दायी ओर छदन्त जातक की कथा चित्रित है। इसमें चित्रकार ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया है।

बोधि वृक्ष पूजा :

इस चित्र में राजा को अपनी रानी, दासी तथा पुत्र के साथ चित्रित किया गया है। संभवतः यह चित्र बोधिसत्व से मनौती मानने के बाद पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में भेंट पूजा के लिए राजा के आगमन का है।

राजकीय जुलूस :

गुफा की बायी भित्ति पर राजकीय जुलूस का चित्र है, जिसमें राजा और उसके परिवार को बोधि वृक्ष तथा स्तूप की पूजा करते हुए चित्रित किया गया है। इस जुलूस में राजा को आठ स्त्रियों से घिरा दिखाया गया है जो तीव्र गति से चल रही हैं।

गुफा सं0 16 –

यह गुफा एक विहार है। इसकी दीवारों पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं तथा जातक कथाओं का चित्र अंकित है। इस गुफा के चित्र अपने कला और सौन्दर्य के लिए जगत् प्रसिद्ध हैं। यह गुफा सभी गुफाओं के बीच में स्थित है। यहाँ से बाघोरा नदी का उद्‌गम सप्तकुण्ड जलधारा भी दिखाई

देती है। इस गुफा का निर्माण बाकाटक नरेश हरिषेण के समय माना जाता है। इसके प्रवेश द्वार पर दो हाथी उत्कीर्ण है। प्रवेश स्थान पर नागराज की मूर्ति है जो सिंहासनारूढ़ अवस्था में दिखाई गई है। इस गुफा में खंभों से बने कक्ष स्थापत्य जगत में एक नई शैली की ओर संकेत करते हैं। इस गुफा के प्रमुख चित्रों में बुद्ध उपदेश, सुजाता की कहानी, हस्ति जातक, महा उम्मग्ग जातक, नन्द की दीक्षा, मरणासन्न राजकुमारी, अजातशत्रु एवं बुद्ध की भेंट, बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चित्र आदि उल्लेखनीय है। इनमें कुछ चित्रों का विवेचन निम्नवत् है–

बुद्ध उपदेश :

बुद्ध उपदेश का चित्र इस गुफा के उत्कृष्ट चित्रों में से एक है। इस चित्र में बुद्ध का तुषित स्वर्ग में उपदेश देते तथा वहाँ से लौटते हुए चित्रित किया गया है।

हस्ति जातक :

गुफा की भीतरी दीवार पर बांयी ओर हस्ति जातक की कथा का अंकन है। कथा के अनुसार– बोधिसत्व ने एक बार उदार हाथी के रूप में जन्म लिया। उन्होंने यात्रियों के एक बड़े समूह, जिन्हें कि राजा द्वारा निष्कासित कर दिया गया था, की भूख मिटाने के लिए स्वयं मृत्यु का वरण किया।

महाउम्मग्ग जातक :

गुफा के मण्डप में प्रवेश करने पर महाउम्मग्ग जातक की कथा चित्रित की गई है। चित्र में "महासंघ" नामक बालक जो कि दैवीय शक्तियों से युक्त है, को गम्भीर विवादों को समाधान अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से करता हुआ दिखाया गया है। चित्र के ऊपरी भाग में वह लोगों के विवादों को सुन रहा

है। नीचे असली माता के निर्णय का प्रसंग चित्रित है। इसी प्रकार रथ के स्वामित्व का प्रश्न भी हल करते दिखाया गया है।

मरणासन्न राजकुमारी :

अजन्ता की सोलहवीं गुफा में "मरणासन्न राजकुमारी" का चित्र (द्रष्टव्य चित्र सं0 7/परिशिष्ट 7) सर्वाधिक सुन्दर एवं आकर्षण है। यह अपने पति के विरह में मरती राजकुमारी का चित्र है। इस चित्र में करुणा की पराकाष्ठा दिखाई देती है। इस चित्र को चित्रकार ने बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया है। चित्र में एक कुलीन महिला अपने महल के कक्ष में अध लेटी अवस्था में दिखाई गई है। उसकी एक दासी सहारा देकर उसे ऊपर उठाए है। दूसरी दासी उसकी नाड़ी का परीक्षण करती हुई उसे देख रही है। एक अन्य परिचारिका डंडे वाला पंखा झुला रही है। उसके चारों ओर परिवार जन शोकाकुल अवस्था में दिखाये गये हैं, जिन्होंने राजकुमारी के जीवन की आशा त्याग दी है और रोना आरम्भ कर दिया है। यह मरणासन्न राजकुमारी और कोई नहीं, बल्कि बुद्ध के मौसेरे भाई नन्द की पत्नी सुन्दरी है जो अपने पति नन्द के वैराग्य ग्रहण कर लेने के कारण मूर्छित हो गई है और अन्तोगत्वा मृत्यु को वरण करती है। चित्र में सेवक को नन्द का मुकुट लेकर सुन्दरी के पास सूचना देते हुए दिखाया गया है। यह चित्र संसार के श्रेष्ठतम् चित्रों में से एक माना जाता है। इसकी प्रशंसा में ग्रिफिथ्स ने लिखा है– "फ्लोरेंस का चित्रकार इससे अच्छा रेखांकन कर सकता था और वेनिस का कलाकार अच्छे रंग भर सकता था, किन्तु दोनों में से कोई इससे अधिक सुन्दर भाव का प्रदर्शन नहीं कर सकता था।"[30] यह दृश्य देखकर उन्होंने आगे लिखा है– "भावना करुणा तथा चातुर्य की दृष्टि से इससे बढ़कर कला इतिहास में कोई प्रमाण नहीं है।"[31]

नन्द की दीक्षा :

इस गुफा की एक दीवार पर नन्द की दीक्षा के कथा का प्रसंग चित्रित किया गया है। यह कथा महान बौद्ध विद्वान अश्वघोष द्वारा रचित सौन्दरानन्द काव्य के आधार पर चित्रित की गई है। इस चित्र में नन्द के संघ में प्रवेश करने का अत्यन्त रागमय और करुण चित्रण है।

बुद्ध के आठ अवतारों का दृश्य भी इसी गुफा में चित्रित है। संसार में गौतम बुद्ध के पूर्व 6 बुद्धों ने अवतार लिया था। गौतम बुद्ध सातवें अवतार थे। आठवें अवतार को मैत्रेय कहा गया है। इन आठ अवतारों के चित्र उनके नाम सहित अंकित हैं। चित्र के पास ही दो गंधर्व आकाश मार्ग में उड़ते दिखाये गये हैं।

16वीं गुफा की दायी दीवार पर चार प्रसिद्ध दृश्यों– शव, बुद्ध, पुरुष, सन्यासी का अंकन है, जिसे देखकर गौतम बुद्ध को वैराग्य प्राप्त हुआ था। एक दृश्य में उन्हें विद्याध्ययन करते दिखाया गया है। एक अन्य स्थान पर उन्हें धनुर्विद्या का अध्ययन करते हुए दिखाया गया है। एक अन्य चित्र में उन्हें ज्ञान प्राप्ति के बाद सुजाता द्वारा खीर खिलाते हुए चित्रित किया गया है।

गुफा सं0 17 –

अजन्ता से जितनी भी गुफाएँ प्राप्त हुई है, उसमें यह गुफा सबसे अच्छी स्थिति में है। इस गुफा के चित्र सबसे अधिक सुरक्षित अवस्था में है। गुफा में बुद्ध के जीवन की घटनाओं की बहुलता है। इस गुफा का निर्माण भी वाकाटक नरेश हरिषेण ने करवाया था। आकार–प्रकार एवं शोभा में यह 16वीं गुफा के समान है। परन्तु इसमें 16वीं गुफा की अपेक्षा चित्रों का अंकन विस्तार से हुआ है। ये चित्र अधिक सुन्दर एवं आकर्षक हैं। इस गुफा को "चित्रशाला" भी कहा जाता है। इस गुफा के चित्रों का विवेचन निम्नलिखित है–

गुफा में प्रवेश करते ही बरामदा विभिन्न प्रकार के चित्रों से भरा पड़ा है। बाये हाथ की दीवार पर एक बहुत बड़ा चक्र है, जिसके साथ वेस्सन्तर जातक की कथा चित्रित की गई है। गुफा के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर हवा में उड़ती हुई एक अप्सरा का चित्र बड़ा ही लुभावना है। मुख्य द्वार के बायी तरफ बाहर बरामदे की तरफ गन्धर्व राज को अप्सराओं तथा परिचारकों के साथ चित्रित किया गया है। यह चित्र अत्यन्त मनोहरी है। आगे नीलगिरि दमन की कथा चित्रित की गई है। इस चित्र के एक दृश्य में देवदत्त तथा अजातशत्रु बुद्ध को मारने का षड्यन्त्र रच रहे हैं। उन्मत्त नीलगिरि हाथी मार्ग में पड़ने वाले लोगों को कुचलता हुआ चिणित किया गया है। भयवश जनता अपनी दुकानें, किवाड़ बन्द कर रही है। दूसरे दृश्य में नत नीलगिरि हाथी तथा उसके मस्तक को थपथपाते बुद्ध का चित्रण बड़ा भावपूर्ण है।

प्रवेश द्वार से गुफा में भीतर जाने पर बायी ओर छदन्त जातक की कथा चित्रित है। इस कथा का चित्रण गुफा सं0 10 में भी है परन्तु कलाकार को यहा उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इसके पश्चात् महाकपि जातक की कथा चित्रित है जिसमें बोधिसत्व रूपी वानरराज को अपने वधु–वाधवों को लाभ पहुँचाने के लिए अधिक त्याग करते हुये चित्रित किया गया है। इसके बाद दीवार पर हंस जातक की कथा का प्रसंग है। इस चित्र में बोधिसत्व रूपी हंस वाराणसी की राजसभा में राजा रानी को उपदेश दे रहे हैं। सामने बैठे हुए लोग बोधिसत्व हंस का प्रवचन बड़ी उत्सुकता, एकाग्रता तथा ध्यान से सुन रहे हैं। इसके आगे दीवार पर सुतसोम जातक की कथा का चित्रण है जिसमें वन और आखेट के दृश्य है और विविध प्रकार के पशु–पक्षियों जैसे सिंह, श्याम मृग, हाथी आदि का चित्रण है। सिंह, हाथी और मृग का शिकार करते अंकित किया गया है। इस चित्र में छाया और प्रकाश का सुन्दर समन्वय किया गया है।

17वीं गुफा के समस्त चित्रों में सबसे उत्कृष्ट चित्र "माता और शिशु" का चित्र (द्रष्टव्य चित्र सं0 8/परिशिष्ट 8) है। इस चित्र में गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा अपने पुत्र राहुल को उन्हें समर्पित कर रही है। इस चित्र को देखने से सहानुभूति एवं करुणा टपकती है। चित्रकार ने राहुल के मुख पर अबोधता, उलझन, यशोधरा के मुख मण्डल पर दीनता, विवशता, आग्रह तथा महात्मा बुद्ध के मुख मण्डल पर विश्व करुणा, शाश्वत प्रेम, अपूर्व गाम्भीर्य तथा आध्यात्मिकता का अद्वितीय चित्रण किया है। यह चित्र अपने आप में बेजोड़ है। प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ हेवल इस चित्र की समानता जावा देश के बोरो बुदुर स्थान से प्राप्त सर्वश्रेष्ठ बौद्ध कला से करते हैं। उनके शब्दों में यह चित्र अपनी सौंदर्य भावना में इटली के प्रसिद्ध चित्रकार बेलिनी के अद्‌भुत मेडोना से तुलना करने योग्य है।[32] गर्भ गृह के दाहिनी ओर मातृपोषक जातक, महिष जातक, शरम जातक, सिंह लावदान, प्रसाधिका, शिवि जातक, क्रक्ष जातक, न्यग्रोधमृग जातक की कथा अंकित है।

17वीं गुफा में बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले चित्रों में उनके महानिभिष्क्रमण का चित्र अत्यन्त सजीवता के साथ उत्कीर्ण किया गया है। इसमें युवक सिद्धार्थ के सर पर मुकुट है। उनका शरीर सुडौल है। शरीर का ऊपरी भाग वस्त्र विहीन है, नीचे धोती लपटी हुई दिखाई गई है। उनके आँखों से अहिंसा, शान्ति एवं वैराग्य टपकता है। उनकी मुख मुद्रा गम्भीर है तथा सांसारिकता से उदासीनता दृष्टिगोचर होती है। इस चित्र के सम्बन्ध में भगिनी निवेदिता का कथन है– "संभवतः यह चित्र बुद्ध का सबसे बड़ा कलात्मक प्रदर्शन है, जिसे संसार ने कभी नहीं देखा। ऐसी अद्वितीय कल्पना कठिनता से दूसरी बार उत्पन्न होती है।[33]

अजन्ता चित्रकला की विशेषताएँ –

अजन्ता के भित्ति चित्र अपनी उत्कृष्ट कलाकृति के लिए जगत् प्रसिद्ध है। यहाँ के चित्रों की बाहुल्यता और विविधता विलक्षण और आश्चर्यजनक है। यहाँ के चित्र सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि तथा महान तकनीकी कुशलता के प्रमाण हैं। इन्हें विश्व की प्रथम श्रेणी की कलाकृतियों के समकक्ष रखा गया है। इस चित्रकला की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. रेखांकन प्रधान चित्रकला :

प्रसिद्ध कलाविद् पर्सी ब्राउन ने पूर्वी देश की चित्रकला को रेखा प्रधान चित्रकला माना है। जबकि पश्चिमी देश की कला को छायाप्रधान। अजन्ता की चित्रकला रेखा प्रधान चित्रकला है। विश्व की कोई कला शैली इनके रेखांकन की समानता नहीं कर सकता। अजन्ता के कलाकार अपने अपूर्व कौशल का परिचय देते हुए रेखीय अंकन की निपुणता के बल पर ही नग्न आकृतियों को सौम्य रूप में प्रस्तुत किया है। उसने जिस चतुराई से हृदयगत भावों को कुछ ही रेखाओं से व्यक्त किया, वह कला के क्षेत्र में बेजोड़ है। यहाँ की रेखाओं में सतत प्रवाह है, जो सूक्ष्म से सूख्म भावों को बड़ी आसानी से कुशलता पूर्वक व्यक्त कर देती है। रेखाओं का अंकन विविध भावों के अनुरूप है।

2. नारी चित्रण :

अजन्ता के चित्रों में विशेष रूप से नारी चित्रण की बाहुल्यता दृष्टिगोचर होती है। यहाँ के कलाकारों का उपास्य विषय नारी चित्रण है। यहाँ उनकी आकृतियों में स्त्रीत्व का नैसर्गिक चित्रण बड़ा ही सुन्दर एवं आकर्षक है। यहाँ की नारी आदर्श रूप में चित्रित है और उन्हें उच्च सामाजिक मानमर्यादा प्राप्त है। स्त्रियों के नितम्बों एवं स्तनों का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण कलात्मक

स्पंदन को व्यक्त करता है। स्त्रियों के नितम्बों एवं स्तनों का आकार बढ़ाकर चित्रित करना जीवन के वास्तविक आकारों की अपेक्षा कविता में वर्णित आकरों के निकट रहा है। यहाँ की नारी आध्यात्मिक शक्ति, प्रेरणा, वात्सल्य, प्रेम, करुणा और दया की जीती–जागती प्रतिमूर्ति है। प्रसिद्ध कला समीक्षक ग्लेडस्टोन सालमान यहाँ के नारी चित्रण से प्रभावित होकर लिखा है– "कहीं भी नारी को इतनी पूर्ण सहानुभूति व श्रद्धा प्राप्त नहीं हुई है। अजन्ता में यह प्रतीत होता है कि उसे विशिष्टता के साथ ही नहीं बल्कि एक सारतत्व के रूप में निरूपित किया गया है। वह कोई व्यक्तिगत पात्र नहीं है, वह तो एक नियम है। वह वहाँ एक नारी ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के सौन्दर्य का अवतार है।[34]

3. विषय की विविधता :

अजन्ता चित्रकला का मुख्य विषय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। यहाँ मुख्य रूप से जातक कथाओं तथा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का चित्रण हुआ है। धर्मोपदेशकता इस चित्रकला की प्रमुख विशेषता है लेकिन इसके साथ ही तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक परिस्थितियों का प्रदर्शन करती हुई विविध घटनाएँ अजन्ता की भित्ति का अलग रूप प्रदर्शित करती है।[35] यहाँ के कलाकारों ने धर्म के साथ–साथ तत्कालीन जीवन के घटनाओं का भी नाना प्रकार से चित्रण किया है। समकालीन जीवन की यथार्थ झलक इस चित्रावली में दृष्टिगोचर होती है।

4. भाव व्यंजना :

अजन्ता के चित्रकारों ने भाव व्यंजना में अवर्णनीय चित्रकला चातुर्य का प्रदर्शन किया है। यहाँ के चित्रकारों ने भावना की अभिव्यक्ति के लिए हस्त मुद्रा का विशेष आश्रय लिया है। हस्त मुद्राओं का ऐसा सार्थक प्रदर्शन अन्यत्र

नहीं दिखाई देता। यहाँ के चित्रों में भावभंगिमा के साथ हस्त मुद्रा का समन्वय अभूतपूर्व है।

5. रंग योजना :

अजन्ता के चित्रों की रंग योजना साधारण है। परन्तु यह रंग योजना अपने आप में निराली एवं अनूठी है। यूं तो काल प्रवाह में बहुत से चित्रों की आभा फीकी पड़ गई है परन्तु फिर भी जो चित्र उपलब्ध हैं, वे तरोताजा नजर आते हैं। अजन्ता के चित्रों में गिने–चुने प्राकृतिक खनिज रंगों का ही प्रयोग किया गया है, ताकि वे चूने के क्षारात्मक प्रभाव से सुरक्षित रह सकें। यहाँ के चित्रों में प्राकृतिक रंग यथा गेरू, पीली मिट्टी, हरा, लाल तथा नीले रंग का ही प्रयोग किया गया है। शरीर तथा कपड़ों का रंग, लावण्य युक्त एवं संगत है। बहुवर्णी योजना का सफलतम् प्रयोग यहाँ दिखाई पड़ता है। संक्षेप में अजन्ता के चित्रों की रंग योजना अपने आप में पूर्ण एवं प्रभावशाली है।

6. केश विन्यास :

अजन्ता चित्रकला पुरानी है लेकिन यहाँ के चित्रों में वर्णित केश विन्यास से आज की स्त्रियाँ प्रेरणा लेती हैं।

7. आलेखन :

अजन्ता की चित्रकला को ''आलेखन की खान'' कहना गलत न होगा। अलंकरणों में आयताकार, वर्तुलाकार, शंकु के आकार में ज्यामितीय आलेखनों की भरमार है। प्रकृति की विविध हरियाली के रूप में साल, आम, बरगद, पीपल, गूलर आदि पेड़ों का सुन्दर समन्वय है। उचित अन्तराल व्यवस्था के कारण ये आलेखन सन्तुल पूर्ण, ठोस एवं प्रभावशाली हैं। अजन्ता के आलेखन भारतीय चित्रकला की सर्वोत्कृष्ट निधि माने जाते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अजन्ता चित्रकला बेजोड़ तथा अनूठी है। ये चित्र अपूर्व कौशल तथा उत्कृष्ट तकनीकी का परिणाम है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इन्हें विश्व की कलाकृतियों में उच्च स्थान प्राप्त है।

अजन्ता की कला बौद्ध कला के लिए प्रेरणा का स्रोत थी। पाँचवीं–छठीं शताब्दी में श्रीलंका के सिगीरिया के पहाड़ी किले भित्ति चित्रों का निर्माण किया गया, जिस पर अजन्ता चित्रकला का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। मध्य एशिया के दन्दान उलिक, किजिल तथा भिरान की चित्रकला पर भी अजन्ता चित्रकला का प्रभाव देखा जा सकता है। चीन और जापान के भी भित्ति चित्रों में इस चित्रकला का प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

(ब) बाघ चित्रकला

सामान्य परिचय –

बाघ की गुफाएं मध्य प्रदेश के धार जिले में इन्दौर से उत्तर पश्चिम में लगभग 140 किमी0 की दूरी पर विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिणी ढलान पर नर्मदा की सहायक बाघिनी (बाघ) नदी के तट पर स्थित है। जिस पहाड़ी पर ये गुफाएँ बनाई गई हैं, वह उत्तर पूर्व से दक्षिण–पश्चिम दिशा में है। इस कारण यहाँ सूर्यास्त के समय ही थोड़ा बहुत प्रकाश पहुँच पाता है। इन गुफाओं की पहाड़ी के समानान्तर बाघिनी नदी प्रवाहमान है।[36] इन गुफाओं के आसपास का क्षेत्र पहाड़ियों एवं सुहावने वनों से घिरा है। इन्हीं गुफाओं के पास ही बाघ नामक कस्बा है, जहाँ से इन गुफाओं की दूरी 8 किमी0 है। संभव है कि इसी कारण इन गुफाओं का नाम बाघ पड़ गया है। यहीं पर बाघेश्वरी देवी का प्राचीन मंदिर है। स्थानीय लोग इन गुफाओं को पंचपाण्डव की गुफाओं के नाम से जानते हैं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि इस स्थान पर बाघ, चीते तथा जंगली जानवर गुफाओं में निवास करते थे, इस कारण इन गुफाओं का नाम बाघ की गुफाएँ पड़ा।[37]

गुफाओं की खोज तथा सुरक्षा –

अजन्ता की गुफाओं की तरह बाघ की गुफायें भी सैकड़ों वर्षो तक अंधकार में पड़ी रहीं, यद्यपि स्थानीय लोगों को इस बात का पता था कि यहाँ कुछ प्राचीन गुफाएँ हैं परन्तु ये क्या हैं, इनका क्या महत्व है, इसे कोई नहीं जानता था। अराजकता, अव्यवस्था, सघन और दुर्गम वन के कारण ये गुफाएँ दीघ्रकाल तक उपेक्षित रही। इन गुफाओं को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय एक अंग्रेज सैनिक अफसर डेजर फील्ड को है। उन्होंने इन गुफाओं का विवरण एवं परिचय सन् 1818 में बम्बई में "ट्राजेक्शन ऑफ द लिटरेरी सोसाइटी ऑफ बाम्बे" में प्रकाशित करवाया। इसके पश्चात् 'एरिक्सन' ने भी इन गुफाओं के सम्बन्ध में छपे लेख पर अपनी टिप्पणियां व्यक्त की। इसके पश्चात् डॉ0 इम्पे ने इनका कुछ विस्तृत विवरण प्रकाशित किया। सन् 1907–08 में कर्नल सी0ई0 ल्यूवर्ड ने इन गुफाओं को देखा। सन् 1910 में इनका सचित्र विवरण अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किया। सन् 1923 में प्रसिद्ध कलाविद् श्री असित कुमार हाल्दर तथा सन् 1925 में श्री मुकुल चन्द्र ने बाघ की गुफाओं के सम्बन्ध में अपने–अपने विस्तृत लेख प्रकाशित किये। मार्शल गर्दे एवं फोगल ने भी इन गुफाओं के विषय में अपने विचार एक पुस्तक में प्रस्तुत किया।

दीर्घकाल तक उपेक्षित रहने के पश्चात् इन गुफाओं की सुरक्षा की जिम्मेदारी तत्कालीन ग्वालियर सरकार ने उठायी क्योंकि ये गुफाएँ उसी राज्य के अन्तर्गत पड़ती थी। कालान्तर में पुरातत्व विभाग ने इन गुफाओं को अपने अधिकार में ले लिया ओर सुरक्षा तथा सफाई के लिए समुचित कदम उठाए। इन गुफाओं की सफाई कराई गई, खिड़कियाँ एवं द्वार बन्द किये गये। तत्पश्चात् यहाँ के चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार करने का कार्य देश के प्रसिद्ध कलाकारों को दिया गया, जिसमें स्वर्गीय नन्दलाल वसु, असित कुमार हाल्दर, सुरेन्द्र नाथ कर,

ए0बी0 भोसले, बी0एन0 आमटे, एम0एस0 भाण्ड, श्री वी0वी0 जगपत आदि का नाम उल्लेखनीय है। आरमीनियन प्रदेश के चित्रकार "सरकिस कचडोरियल" ने भी बाघ के चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार की। इन चित्रों की अनुकृतियाँ ग्वालियर दुर्ग के गूजरी महल में स्थित पुरातत्व विभाग के संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही हैं।

बाघ की गुफाओं का निर्माण –

बाघ की गुफाओं का निर्माण कब हुआ, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। चट्टानों का पत्थर मुलायम होने के कारण यहाँ कोई लेख उत्कीर्ण नहीं किया जा सका होगा। दुर्भाग्यवश चित्रित प्रमाण भी नष्ट हो गए हैं। इस कारण इन गुहाओं के निर्माण के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। इसके निर्माण को लेकर विद्वानों ने भिन्न–भिन्न मत दिये हैं।

प्रसिद्ध कलाविद् फर्ग्यूसन एवं वर्गेस ने अपनी एक ही पुस्तक "केव टेम्पिल्स ऑफ इण्डिया" में दो मत दिये हैं। एक स्थान पर उन्होंने इन मंदिरों का निर्माण काल 350 से 450 ईस्वी बताया है।[38] उसी के आगे दूसरे स्थान पर उन्होंने इन गुफाओं का काल 450–500 ईस्वी निर्धारित किया है।[39] विसेन्ट स्मिथ ने इन्हें उत्तर गुप्तकाल तथा अजन्ता की सबसे बाद में बनी गुहाओं के पूर्व बताया।[40] इस प्रकार वे इन गुफाओं का काल छठीं शताब्दी ईस्वी के माध्यम से सातवीं शताब्दी ई0 तक मानते हैं। भारत कलाभवन वाराणसी के भूतपूर्व अध्यक्ष रायकृष्ण दास ने इन गुफाओं के निर्माण की तिथि पर कोई स्पष्ट मत व्यक्त नहीं किया है। किन्तु वे बाघ के चित्रों को पूर्व मध्यकाल का मानते हए इसका निर्माण काल 600–900 ईस्वी ठहराते हैं[41] आनन्द कुमार स्वामी ने इन गुफाओं को 500 ई0 के लगभग माना है।

बाघ के चित्रों पर अंकित एक लेख का चिन्ह प्राप्त हुआ है। यद्यपि यह लेख नष्ट हो गया है परन्तु एक चिन्ह "क" शेष रह गया है जो हिरौजी रंग

में लिखा गया है। यह अक्षर गुप्तलिपि में है और लिपि विज्ञान के आधार पर ग्वालियर पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व डायरेक्टर गर्गे महोदय ने इनका समय छठी या सातवीं शताब्दी ई0 माना है और यही समय इन गुफाओं का भी निर्धारित किया है।

इस संदर्भ में एक और तथ्य उल्लेखनीय है जो इसके निर्माण के सम्बन्ध में प्रकाश डालने के लिए उपयोगी हैं। इन गुफाओं की सफाई तथा जीर्णोद्धार के समय दूसरी गुफा से "महाराजा सुवन्धु" का एक ताम्र पत्र मिला है, जिससे इन गुफाओं के निर्माण का ठीक–ठीक समय निश्चित हो जाता है। ताम्र पत्र पर उत्कीर्ण चौथी, पांचवीं पंक्ति से ज्ञात होता है कि महिष्मती के राजा सुवन्धु ने दासिलकपल्ली नामक एक ग्राम "दत्तरक–कारित कलयन विहार" को भगवान बुद्ध की पूजा अर्चना बौद्ध भिक्षुओं के भरण–पोषण एवं मठ के संघारण के लिए दान में दिया था। ऐतिहासिक गणना के आधार पर इस ताम्र पत्र के लेख का समय 416 ई0 निर्धारित है। अतः इन गुफाओं का समय चौथी–पांचवी शताब्दी ई0 में रखना अधिक तर्कसंगत है। ताम्र पत्र में सुवन्धु को महाराज कहा गया है जिससे ज्ञात होता है कि वह माण्डलिक नरेश था। पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि सुवन्धु गुप्त नरेश बुधगुप्त के अधीन शासक था। असित कुमार हाल्दर भी सुवन्धु को बुधगुप्त का समकालीन बताते हैं। इस प्रकार बाघ के चित्रों का समय गुप्ताकलीन मानना ही अधिक उचित है।

चित्रण विधान एवं रंग योजना –

बाघ के चित्रों को देखकर अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि इसके चित्र निर्माण में फ्रेस्को विधि का प्रयोग किया गया है। किन्तु यह सही नहीं है। वास्तव में इन चित्रों में "फ्रेस्को" तथा "टेम्परा" का मिश्रण विद्यमान है।[42]

इन चित्रों को प्रस्तुत करने के लिए यहाँ के चित्रकारों ने एक विशेष विधि अपनाया है जिसके कारण कई व्यवधानों के बावजूद ये अभी तक बचे हुए हैं। यहाँ के भित्ति चित्रों में खनिज रंगों का ही प्रयोग होता था, ताकि चूने के क्षारात्मक प्रभाव से मिट न जाएं। यहां के रंगों का अपना अनूठा विधान है। रंग विधान सादा है तथा रंग अमिश्रित तथा चमकीले हैं। बाघ में जिन रंगों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया गया है, उनमें सफद, लाल और विभिन्न भूरे रंग है। इसके अतिरिक्त हरे तथा नीले रंग का भी प्रयोग देखने को मिलता है। सफेद रंग को चूने या खड़िया से निर्मित किया गया है। लाल तथा भूरे रंग लोहे के खनिज रंग हैं।[43] यहाँ की गुफाओं में लाल एवं पीले रंग का अत्यधिक प्रयोग है।

बाघ में कुल् नौ गुफाएँ हैं और ये सभी विहार गुफाएँ हैं। इनमें से सात गुफाओं के चित्र प्रायः नष्ट हो चुके हैं। केवल गुफा संख्या 4 एवं 5 में कुछ चित्र शेष बचे हैं, वे भी क्षत–विक्षत अवस्था में है। अजन्ता के गुफाओं की अपेक्षा यहाँ के गुफाओं की चट्टानें नरम है। इस कारण भी यहाँ के अधिकांश चित्र नष्ट हो गये हैं। इन गुफाओं के चित्रों का विवेचन निम्नलिखित है–

गुफा संख्या–1 :

यह गुफा "गृह गुफा" के नाम से प्रसिद्ध है। इस गुफा में अपक्षयता पूर्णरूप से दिखाई पड़ती है। यह अनुमान व्यक्त किया जाता है कि यह गुफा गृह महास्थापति का निवास रहा होगा। इस गुफा से सम्पूर्ण घाटी का विहंगम दृश्य दिखायी पड़ता है।

गुफा संख्या–2 :

गुफा संख्या 1 एवं 2 के बीच रास्ते में अनेक छोटी–छोटी प्राकृतिक गुफायें हैं। गुफा संख्या–2 को ::गोसाई गुफा" अथवा "पंच पाण्डवों" की गुफा के

भी नाम से जाना जाता है। इसी गुफा में महाराज सुवन्धु का ताम्र पत्र मिला था, जिससे ज्ञात होता है कि इसका नाम "कलायन" था।

यात्रियों, साधुओं तथा घुम्मकड़ जातियों के भोजन बनाने से धुंए की कालिख के कारण इस गुफा के अधिकांश चित्र खराब हो गये हैं। इसमें कुछ अलंकरण शेष बचे हैं। इस गुहा के सभा मण्डप की छत में एक फुट वर्गाकार के अनेक उपखण्ड चित्रित हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के डिजाइनों का निर्माण किया गया है। इसमें लता, पुष्प (विशेष रूप से कमल का पुष्प) तथा बेलों के साथ–साथ गज, वृषभ, पक्षी हंस आदि के चित्र उकेरे गये हैं। इस गुफा का सबसे प्रसिद्ध चित्र "पद्मपाणि बोधिसत्व" का चित्र है जिसकी अनुकृति ही प्राप्त होती है। इस चित्र के मुखाकृति को छोड़कर अन्य भाग नष्ट हो गया। इसकी भावभंगिमा तथा रेखीय लयात्मकता से यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि इसकी रचना किसी उत्कृष्ट कलाकार ने की होगी। बोधिसत्व के आभामुखी मुख पर गहन चिन्तन, गम्भीरता, वैराग्य आदि भावों का उत्कृष्ट अंकन है। उन्हें आभूषणों तथा पुष्पों से अलंकृत किये हुए दिखाया गया है। यह चित्र कलाकार की अद्भुत प्रतिभा गहन दृष्टि का परिचायक है।

गुफा संख्या–2(अ) :

इसे गुफा संख्या 2 की विस्तार योजना भी कहा जा सकता है क्योंकि अन्दर से कोठरियाँ जुड़ी हुई हैं। ऐसा लगता है कि उत्खनन में कठिनाई के कारण इसको छोड़ दिया गया।

गुफा संख्या–3 :

गुफा संख्या 3 को "हाथी खाना" भी कहा जाता है। इसके मुख द्वार पर हाथियों की पंक्ति उत्कीर्ण थी। यह अब गिरकर नीचे आ गई है। इसी

कारण इसका नाम हाथी खाना पड़ा। इसका निर्माण बौद्ध भिक्षुओं के उच्च अधिकारियों के लिए किया गया था।

इस गुफा में कोई गर्भ गृह या मूर्ति नहीं थी। इस कारण इसके एक कक्ष को पूजा गृह बना लिया गया। पूजा कक्ष के द्वार के दोनों ओर सुन्दर नारियों के चित्र हैं। बायी ओर की युवती थोड़ा नीचे की ओर झुकी दिखाई गई है। उसका दाहिना हाथ लम्बवत् है। उसने पुष्पों के द्वारा अपने केश विन्यास का श्रृंगार किया है। दाहिनी ओर की नारी आकृति इतनी स्पष्ट नहीं है। उसका अधिकांश भाग नष्ट हो गया है। प्रकोष्ठ के सामने की दीवार पर बुद्ध का विशाल चित्र था। अब इसका केवल प्रभा मण्डल देखा जा सकता है। फोगेल ने उन्हें उष्णीष के साथ शीर्ष तथा कंधों को ढके वस्त्रों में देखा था। पृष्ठभूमि में श्वेत कमल दिखाये गये थे। प्रकोष्ठ की अन्य भित्तियों पर भी कमल पुष्प पर खड़े बुद्ध के चित्र थे। कमल पुष्प सहित सुचित्रित बुद्ध पाद के समीप एक–एक झुके हुए उपासक के चित्र थे।[44]

गुफा संख्या–4 :

गुफा संख्या 4 को रंग महल के भी नाम से जाना जाता है। यह गुफा चैत्याकार है जो किसी समय चित्रों से सुसज्जित रही होगी। इसके द्वार मण्डप के सामने की दीवार पर सबसे अधिक तथा सुरक्षित अवस्था में चित्र विद्यमान हैं। इन चित्रों की गणना विश्व की श्रेष्ठ कलाकृतियों में की जाती है। प्रसिद्ध कलाविद् प्रो0 असित कुमार हाल्दार ने 1917 में इन गुहा मंदिरों को देखा था और उन्होंने यहाँ के चित्रों की प्रतिकृतियाँ भी तैयार की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक "ललित कला की धारा" में यहाँ के चित्रों का वर्णन किया है।[45]

गुफा संख्या 4 से बाहर निकलकर आने पर बरामदे से गुहा संख्या 5 के प्रवेश द्वार तक लगभग 45 फीट लम्बी दीवार पर चित्रों की एक लम्बी

श्रृंखला है, जो किसी ऐतिहासिक घटना से जुड़ी लगती है। इस चित्र पैनल में केवल 6 दृश्य ही सुरक्षित अवस्था में बचे हैं। जिनका वर्णन निम्नवत् है–

दृश्य-1 -

पहला दृश्य वियोग का है, जिसमें दो स्त्रियाँ एक खुले मण्डप में चंदोवे के नीचे एक साथ बैठी हैं। ये दोनों समवयस्क है। इन स्त्रियों में एक दुःख से व्याकुल दिखाई गई है। वह शोकग्रस्त होने के कारण अपना मुख आंचल से एक हाथ के सहारे ढके है तथ अपना दूसरा हाथ आंचल से बाहर निकाले है। दूसरी स्त्री जो कि उसके पास बेठी है, अपना एक हाथ शोकग्रस्त स्त्री के कंधे पर रखकर उदास भाव से सांत्वना दे रही है तथा उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर रही है। वह बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत दिखाई गई है। छज्जे के छत पर नीचे कबूतरों का युग्म बैठा है जो किसी प्रणय प्रसंग स्वरूप अंकित किये लगते हैं।

उपरोक्त चित्र को देखकर कलाविदों ने भिन्न–भिन्न मत दिये हैं परन्तु चित्र के विषय पर सम्यक रूप से किसी ने प्रकाश नहीं डाला है। प्रख्यात कलाविद रायकृष्ण दास का कथन है– "मुँह ढककर रोती हुई स्त्री का चित्र जिसे उसकी सखी सांत्वना दे रही है, बड़ा भावपूर्ण है।[46] महान कला समीक्षक प्रो0 सी0 शिवराम मूर्ति का कथन है "चित्रित विषय स्पष्ट रूप से जातक अथवा अवदान से है जिसे पहचाना जाना अभी बाकी हैं।"[47] प्रो0 असित कुमार हाल्दार, जिन्होंने यहाँ के चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थी, का कथन है– "घटनाओं की तारतम्यता अथवा रचना विधि स्पष्ट रूप से यह व्यक्त करते हैं कि सारे चित्र किसी महान ऐतिहासिक घटना के रूप में आपस में एक–दूसरे से गुथे हुए हैं। हमने उनकी बौद्ध जातक कथाओं से तुलना की परन्तु कुछ अंश में ही समानता दृष्टिगोचर होती है पूर्णरूप से नहीं। इस भाग के चित्रों का प्रतिरूप उतारने में हम सफल हुए। उनके पहले दृश्य में अपार दुःख सागर में डूबी हुई एक महारानी

और उसकी परिचारिका है। उसके साथ ही दो राजकुमार दो अतिथियों से परामर्श करते हुए प्रतीत होते हैं।"[48] प्रो0 हालदार का यह कथन पूरी चित्र श्रृंखला के संदर्भ में है।

इस दृश्य पर प्रसिद्ध पुरातत्व विशेषज्ञ माहेश्वरी दयाल खरे ने जो विचार व्यक्त किया है, वह अधिक तर्कसंगत लगता है। उनका कथन है कि– "यह दृश्य दु:ख, सांत्वना और शोक से नहीं अपितु लज्जा से सम्बन्धित है। उनके अनुसार शोकग्रस्त स्त्री परिचारिका है और बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत स्त्री या राजकुमारी है। संभवतः रानी ने सेविका का हाथ देखने के बहाने उसके प्रेम सम्बन्ध का रहस्योद्घाटन कर दिया। बात की गंभीरता को देखकर वह बहुत शांत एवं गंभीर हो गई। लज्जावश सेविका ने अपने दाहिने हाथ और आंचल से मुँह ढक लिया। इसके अतिरिक्त कबूतरों के जोड़ों को चित्रण काम और प्रेम का प्रतीक है, दु:ख का नहीं।"[49] इस चित्र में रानी की आकृति एवं स्वरूप को एक आदर्श नारी के रूप में दर्शाया गया है।

दृश्य-2 -

दूसरा दृश्य मंत्रणा करते हुए दिखाया गया है। इस चित्र में चार सांवले रंग के भद्र पुरुष गद्दीनुमा आसन पर पद्मासन मुद्रा में बैठे हैं और किसी गम्भीर वार्ता में मग्न है। उनके आकृति से भी ऐसा लगता है कि वे परस्पर शास्त्रार्थ कर रहे हैं। इसमें दो एक ओर तथा दो एक ओर आमने–सामने बैठे दिखाए गए हैं। चारों पुरुष धारियों वाली धोती पहने दिखाये गये हैं तथा इनके गले में मुकृमाला, हाथों में कंगन और कानों में कुंडल है। बायी ओर दो व्यक्तियों के सिर पर मुकुट है। इसमें पहला कोई मंत्री तथा दूसरा राजपुरुष है। चित्र की पृष्ठभूमि में वृक्ष, लताएं, पत्तियाँ, काष्ठ स्तम्भ चित्रित किये गये हैं। शास्त्रार्थ में तल्लीन यह दृश्य अपने आप में अनूठा है।

प्रो0 असित कुमार हाल्दार ने इसे पहले चित्र में जोड़ा है।[50] मुकुल डे के अनुसार– "दाहिनी ओर बैठे राजा अपने राजकुमार के साथ जो उनके पीछे है, एक दूसरे राजा और राजकुमार से विचार–विमर्श कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने हाल में ही बौद्ध धर्म ग्रहण किया है। उनके सिर पर मुकुट नहीं है। उनके पीछे राजउद्यान के गहरे हरे वृक्ष दिखाई दे रहे हैं।"[51] इन विचारों से अलग हटकर माहेश्वरी दयाल खरे ने अपना विचार दिया है। उनके अनुसार– "इस चित्र में दो युग्म लगभग एक–दूसरे के सामने बेठे हैं, किसी धार्मिक व्याख्यान में तल्लीन है। उनकी मुखाकृति तथा हाथों के अर्थपूर्ण संकेतों से भी ऐसा प्रतीत होता है। सभी लोग गद्दियों पर पधारे हैं तथा धारीदार अंतरीय पहने हैं। प्रतिष्ठित शिरो वस्त्र से स्पष्ट होता है कि बायी ओर का युग्म दाहिनी ओर बैठे युगल से उच्च स्तर का है। इनमें से जिनके शीर्ष पर दीर्घ व रत्न जड़ित मुकुट है, वह संभवतः राजा तथा उसके निकट बैठी रानी का है।"[52] श्री खरे का कहना कि इन चार में से दो महिलाओं की आकृति है इसकी पुष्टि किसी अन्य विद्वान ने नहीं की और न ही यह विचार इन आकृतियों को देखने के बाद उपयुक्त लगता है। शिवराम मूर्ति ने मुख्य आकृति जिसने कि विशेष प्रकार का मुकुट धारण किया है, को "शक्र" माना है।[53]

दृश्य-3 -

इस दृश्य के दो भाग है, जो एक दूसरे से सम्बद्ध है। ऊपरी भाग में देव पुरुषों को आकाश में विचरण करते दिखाया गया है। यहाँ 6 पुरुष आकृतियाँ दिखाई पड़ती है, जो आकाश मार्ग में बादलों के बीच उड़ रही हैं। मुकुल ने यहाँ 7 आकृतियाँ देखी थी।[54] इनका प्रधान अधो वस्त्र पहने दिखाया गया है। शेष उत्तमांग ही है। उनके शेष अंग बादल में छिपे हैं। संभवतः वे देवगण या अर्हत है क्योंकि इनका सिर मुंडित दिखाया गया है और किसी भी

पुरुष के शरीर पर कोई आभूषण नहीं है। कुछ विद्वानों ने इन्हें उड़ता हुआ गन्धर्व माना है जो निचले भाग में चित्रित संगीतज्ञों पर पुष्प वर्षा कर रहे हैं।

दृश्य के निचले भाग में पांच सुन्दर स्त्रियाँ चित्रित हैं। इनका केवल मस्तक दिख रहा है। इनमें एक के पास वीणा है। संभव है अन्य के पास भी कोई वाद्य यंत्र रहा हो, जो नष्ट हो गया हो। इनमें सभी ने विभिन्न रंगों की चुस्त चोलियाँ पहन रखी हैं जिनमें कुछ के ऊपर छीट की डिजाइन है। इनका केश विन्यास सादा किन्तु आकर्षक है। कानों में कुंडल तथा गले में रत्नजड़ित मोतियों का कंठाहार है। इस चित्र में अजन्ता की तरह ईरानी नीला रंग भरा गया है।

दृश्य-4 -

चौथा दृश्य 'नृत्यांगनाओं और वादिकाओं' का है। इसमें दो समूह अंकित है। पहले समूह में सात स्त्रियाँ एक पुरुष नर्तकों को चारों ओर से घेरे पड़ी हैं। पुरुष नर्तक लम्बा चोगा पहने हैं जिस पर सफेद चिन्ह बने हैं। गले में रत्नजड़ित मुक्तमाल है और हथेली नृत्य की मुद्रा में है। सात स्त्रियाँ जो उसे घेरे हैं, उनमें एक मृदग बजा रही है जिसके नग्न शरीर पर डोरियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं और मृदग बजाने के लिए उठी बाये हाथ की अगली का चित्रण बड़ा स्वाभाविक है। शेष तीन के पास करतालें तथा तीन के पास मजीरे हैं। चित्र के अग्र भूमि में अंकित चौकी पर तकिये एवं गोल गद्दी की व्यवस्था है ताकि राजा और अधिकारीगण नृत्य का रसास्वादन कर सकें।

दूसरे समूह में एक पुरुष आकृति को घेरे 6 स्त्रियाँ नृत्यरत मुद्रा में मण्डलाकार रूप में खड़ी हैं। नर्तक के बाल कंधों तक लहरा रहे हैं। वह चुस्त पायजामा, कर्ण आभूषण तथा कड़ा पहने हुए हैं। 6 गायिकाओं में एक मृदग, दो छोटे मजीरे और शेष तीन डंडे बजा रहे हैं।

इन दोनों चित्रों में नृत्य, गीत, गायन, वादन का सुन्दर आयोजन दिखाई पड़ता है। सभी नर्तकियाँ यौवन पूर्ण हैं, पुरुष बस एक है। कुछ विद्वानों ने इसे पुरुष नर्तक माना है, कुछ ने इसे विदेशी। तथ्य जो भी हो, नृत्य और वादन का यह दृश्य निःसन्देह अत्यन्त मनोरम एवं आकर्षक है। विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित की गई नर्तकियाँ, उनके परिधान, आकर्षक केश विन्यास, विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र तथा राजसभा का दृश्य प्राचीन समय के उस वैभव का प्रतीक है, जिसमें संगीत अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। शिवराम मूर्ति ने इस नृत्य समारोह को 'हल्लिसलास्य' नामक लोकनृत्य बताया है।

दृश्य-5 -

पांचवा दृश्य 'घुड़सवारों के जुलूस' का है। यह चित्र बहुत स्पष्ट नहीं है। फिर भी घोड़ों के अंकन में सजीवता एवं स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है। इस दृश्य में लगभग 17 अश्वारोही घोड़े, 5 या 6 की पंक्तियों में जुलूस बनाकर चल रहे हैं। दल के मध्य में एक श्वेत घोड़े पर सवार कोई राजकीय पुरुष चित्रित किया गया है। वह पीला वस्त्र धारण किये नीले रंग से चित्रित है। उसके मस्तक पर राजचिन्ह छत्र सुशोभित है तथा बायें हाथ से अश्व की लगाम पकड़े हैं। संभवतः यह राजकुमार या सेनानायक है। अन्य घुड़सवारों ने लम्बे चोगे पहन रखे हैं। सभी घोड़े अच्छे नस्ल के हैं। अश्वों की गतिशीलता तथा अश्वारोहियों के मुख मुद्राओं से ऐसा लगता है मानों ये किसी विजयोल्लास में तल्लीन अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान कर रहे हों।

दृश्य-6 -

इस दृश्य में 'हाथियों का जुलूस' चित्रित किया गया है। इसमें 6 हाथी तथा 3 घुड़सवार है परन्तु अब केवल एक ही घुड़सवार का चिन्ह अवशेष है। इस चित्र का बहुत सा भाग नष्ट हो गया है। सबसे आगे मुख्य हाथी पर बैठा

पुरुष का चित्र दिखाई पड़ता है जो बहुत ही असाधारण है तथा उसका शरीर सौष्ठव गठीला है। उसके लम्बे केश लटकते हुए दिखाये गये हैं तथा मस्तक पर एक टोपी है। उसके पीछे सेवक हाथ में चामर तथा छत्र लिए बैठे हुए दिखाये गये हैं। हाथी की झूल एवं लटकन स्वाभाविक, आकर्षक एवं सुन्दर है। दृश्य में आगे हाथी में तीन नारियों तथा एक महाकाय व्यक्ति का समूह बैठा है। इन तीन युवतियों से दो के शरीर कटि भाग तक नग्न है परन्तु बीच वाली स्त्री एक सफेद ब्लाउज पहन रखी है। इसी प्रकार दूसरे पीछे हाथी पर भी एक व्यक्ति तथा तीन युवतियाँ बैठी हैं। यहाँ बीच में जो नारी है उसके तन पर कंचुकी नहीं है परन्तु उसके पार्श्व में बैठी दोनों स्त्रियों के बंद गले के ब्लाउज है। सभी युवतियाँ विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलंकृत है। कानों में कुण्डल, गले में कंठाहार, हाथों में कंगन तथा पैरों के पायल का अंकन विशेष रूप से प्रभावित करता है। केश विन्यास की अपनी छटा है, जिन्हें बड़े सलीके से संवारा गया है। समूचे दृश्य में हाथियों का चित्रण बड़ी कुशलता और स्पष्टता के साथ किया गया है।

इस चित्र के आगे भी चित्र था परन्तु अब नष्ट हो गया है। इस दृश्य को डॉ0 इम्पे ने देखा था जिसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है– इसके आगे का दृश्य बड़ा ही रोचक एवं विशिष्ट है। आकृतियाँ उल्टी दिशा में देख रही हैं। इनमें चार हाथी तथा तीन घोड़े हैं, जो अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच चुके हैं। हाथी विश्राम कर रहे हैं तथा महावत हाथियों के मस्तक पर अपने हाथ आड़े रखकर शांत पड़े दिखाये गये हैं। आगे दो पैदल व्यक्ति जिनके हाथ में तलवार एवं भाला है। इनका ध्यान आगे की ओर आम्र वृक्ष के नीचे रखे दो पानी के पात्र तथा तुम्बे पर है। वृक्ष की शाखा पर एक नीला वस्त्र लटक रहा है जिसके पीछे चक्र है। आगे केले के वृक्ष की छाया में पद्मासन में बुद्ध बैठे हैं, समीप ही एक शिष्य बैठा उनके धर्मोपदेश को सुन रहा है। डॉ0 इम्पे ने एक अन्य चित्र का भी

विवरण दिया है जिसमें बुद्ध एक उद्यान में बैठे बतलाये गये हैं। वे एक और चित्र का उल्लेख करते हैं जिसमें दो महिलाएँ विलाप मुद्रा में थी, जिनके आगे एक बालक कनखियों से देख रहा है। फिर चार नर्तकियाँ और पुनः एक दौड़ता हुआ बालक अंकित है जो पीछे मुड़कर देख रहा है। उनके विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समय कुछ ऐसे चित्र थे जिसे धूमिल होने के कारण पहचाना नहीं जा सकता था।

गुफा संख्या 4 और 5 को जोड़ने वाले बरामदों के छतों एवं स्तम्भों को भी चित्रों से अलंकृत किया गया था। उनके चिन्ह कहीं–कहीं दिखाई पड़ते हैं। यहाँ आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण डिजाइनें हैं। पशु–पक्षियों का अंकन सजीव है। यहां के चित्रों में अनेकरूपता और विविधता का दर्शन होता है।

गुफा संख्या–5 :

इस गुफा को ''पाठशाला'' के भी नाम से जाना जाता है। इसमें अनेक चित्र थे परन्तु अब केवल बुद्ध का सुन्दर चित्र ही अवशेष मात्र रह गया है। इस गुफा का प्रयोग व्याख्यान कक्ष के रूप में होता रहा होगा।

गुफा संख्या 6, 7, 8, 9 के चित्र विशेष उल्लेखनीय नहीं है।

बाघ चित्रकला की विशेषताएँ –

बाघ की गुफाओं में की गई चित्रकारी विश्व चित्रकला की श्रेष्ठ निधि है। यहाँ के भित्ति चित्रों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा तथा व्यवस्थित इतिहास रहा है। भारतीय कला के ये दिव्य आलेखन अपने निर्माताओं के अमर चिन्ह हैं। यहाँ के चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता आलेखन शैली है। इस शैली में प्राणों को स्पंदित कर देने की अपूर्व क्षमता विद्यमान है। अजन्ता और सिगरिया के साथ–साथ बाघ की गुफाओं ने भी चित्रकारी के संसार को अमरत्व प्रदान किया।

बाघ में बौद्ध भिक्षुओं के निवास के साथ–साथ राजपरिवार के सदस्यों एवं अधिकारी वर्ग के निवास की भी समुचित व्यवस्था की गई थी। उदाहरण के लिए गुफा सं0 1 और उनका निर्माण बौद्ध भिक्षुओं के उच्च पदस्थ अधिकारियों के लिए हुआ था। गुफा सं0 5 का निर्माण अध्ययन, अध्यापन, चिंतन, मनन तथा शास्त्रार्थ के लिए हुआ था, इसलिए इसका नाम पाठशाला पड़ा। यहाँ की गुफाओं में उत्तर तथा दक्षिण भारत के शिल्प कला की विशिष्टताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। मथुरा और अमरावती की कलाओं का समन्वय यहाँ भी देखा जा सकता है। माहेश्वरी दयाल खरे ने लिखा है– "मथुरा का मूर्तिकाल एवं अमरावती का सौन्दर्य पाकर बाघ की मूर्तियाँ सजीव हो उठी।"[55]

बाघ की गुफाओं में प्रकृति का अंकन आकर्षक एवं उल्लेखनीय है। यहाँ पर पशु–पक्षी, फूल पत्ती सब कुछ आकर्षक ढंग से चित्रित किये गये हैं तथा चित्रों के अंकन में अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया गया है। जंगली कबूतरों तथा मोरों के चित्रण में यहाँ के कलाकारों ने विशेष रुचि ली है।

पशु चित्रण में बाघ के चित्रकार सिद्धहस्त थे। हाथी के सूड़ पर महीन सिकुड़न तथा गर्दन के ऊपर कोमल भाग आदि का चित्रण चित्रकार ने बड़ी कुशलता एवं सूक्ष्मता से किया है। हाथी को भारतीय साहित्य एवं कला में माँ बाल्य सूचक माना गया है जिसे बाघ के आलेखन में उचित स्थान मिला है। मुकुल डे ने लिखा है– "जहाँ तक मैं समझता हूँ हाथियों का ऐसा श्रेष्ठ चित्र विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं है।"[56] घोड़े के शरीर एवं उनकी मांसपेशियों का उत्कृष्ट चित्रण यहाँ देखने को मिलता है। अन्य पशुओं का चित्रण भी कुशलता पूर्वक किया गया है।

बाघ के चित्रकारों ने चित्रण में अनुपात और औचित्य का विशेष ध्यान दिया है। चित्र में मानव शरीर, पशु पक्षी और प्रकृति का कौन–सा अंश

कितना बड़ा तथा कितना छोटा हो, उनका परस्पर अनुपात क्या हो, इस पर उन्होंने पूरे मनोयोग से ध्यान दिया है।

यहाँ के चित्रों में जीवन में प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुओं का चित्रण बड़ी कुशलता पूर्वक किया गया है। यहाँ के वस्त्राभूषण अजन्ता की तरह भव्य नहीं है फिर भी सादे रूप में इनका चित्रण प्रभावशाली है।

बाघ के चित्रों में अश्लीलता एवं नग्नता का प्रदर्शन नहीं है। यहाँ नारी चित्रण बड़ा सहज एवं साधारण है। यहाँ की नारी को दया, वात्सल्य, प्रेम की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया गया है। उनका सौम्य रूप, उनकी गतिविधियाँ सभी को आकर्षित करती हैं परन्तु वे मन में किसी प्रकार के विकार को जन्म नहीं देती।

अजन्ता के चित्रों का विषय धार्मिक है परन्तु बाघ की गुफाओं के चित्र धार्मिक नहीं है। इन चित्रों के विषय लौकिक जीवन से लिए गये हैं। जीवन के विविध पक्षों का चित्रण यहाँ की चित्रकारी में प्राप्त होता है। नृत्यगान, अश्वारोहरण, गजारोहण, सामाजिक संवेदना आदि के अलावा स्त्रियों की विभिन्न अवस्थाओं जैसे– प्रेम, विरह आदि का चित्रण बखूबी से हुआ है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बाघ के चित्र उत्कृष्ट हैं, ये अपूर्व कौशलता के प्रमाण हैं। इनकी तुलना विश्व के महान कृतियों से की जा सकती है। यहाँ के चित्रों में अलौकिक शक्ति और स्वर्गीय आनन्द की दिव्य ज्योति है। ये चित्र प्राचीन भारत के स्वर्णिम युग की अद्वितीय देन हैं। माहेश्वरी दयाल खरे ने लिखा है– "जिज्ञासा से उत्पन्न, उत्कंठा में प्रस्फुटित, लालसा में विकसित, भौतिकता के सीढ़ी से आध्यात्मिकता के शिखर पर पहुँचने वाली भारतीय कला में बाघ का स्थान अजन्ता सिगिरिया आदि से यदि सर्वोपरि नहीं है, तो उनसे कम किसी भी अंश में नहीं है।"[57]

अजन्ता एवं बाघ के चित्रों की परस्पर तुलना –

1. अजन्ता की गुफा के चित्र अलग–अलग समय पर बनाये गये। यहाँ के चित्र 800 वर्षों के प्रक्रिया के परिणाम है। इन भित्ति चित्रों का निर्माण विभिन्न राजाओं के शासनकाल में उनके संरक्षण में अथवा दान से अलग–अलग समय में किया गया। इस कारण अजन्ता के चित्रों में समष्टि का भाव नहीं आ पाया है। इसके विपरीत बाघ की गुफाओं के चित्र एक ही समय पर बने है। इस कारण इन चित्रों में समग्रता का बोध होता है।

2. बाघ के बरामदे में चित्रों का अलंकरण हुआ है जबकि अजन्ता के बरामदे ध्वस्त अवस्था में है।

3. अजन्ता के चित्रों का मुख्य विषय धार्मिक है। यहाँ बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं तथा जातक कथाओं का चित्रण हुआ है। परन्तु बाघ के चित्र लौकिक जीवन से लिये गये हैं। बाघ के चित्रों में जीवन के विविध पक्षों का अंकन हुआ है।

4. बाघ का नारी चित्रण अजन्ता की तुलना में सहज एवं साधारण है। बाघ के चित्रों में अश्लीलता एवं नग्नता का प्रदर्शन नहीं है।

5. अजन्ता तथा बाघ दोनों गुफाओं में छतों तथा दीवारों पर पुष्प तथा पक्षियों का सुन्दर अलंकरण किया गया है।

6. रेखा, रूप, रंग संयोजन, भित्ति चित्रण प्रक्रिया, भावभिव्यक्ति सब कुछ बाघ में अजन्ता के चित्रों जैसा है।

(स) मुद्रा चित्रकला

गुप्त वंश के शासकों ने विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का निर्माण करवाकर उसे साम्राज्य के विभिन्न भागों में प्रसारित करवाया। गुप्त वंश के शासकों की अनेक मुद्राएं प्राप्त होती हैं जो सोने चाँदी तथा ताँबे की हैं। गुप्तकालीन स्वर्ण सिक्कों का सबसे अधिक ढेर राजस्थान प्रान्त के बयाना नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। एलन[58], अल्तेकर[59] आदि विद्वानों ने इन सिक्कों का विस्तृत अध्ययन किया है। ये सिक्के गुप्त वंश के इतिहास जानने का एक प्रमुख स्रोत है। इस काल में सबसे अधिक सोने के सिक्के प्राप्त होते हैं, जो चन्द्रगुप्त प्रथम से प्रारम्भ होकर अन्तिम सम्राट विष्णु गुप्त तक प्रायः सभी शासकों के मिलते हैं। गुप्त रजत मुद्राओं का प्रारम्भ चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के समय से माना जाता है। ताँबे के सिक्के सीमित मात्रा में है और ये कुछ ही गुप्त शासकों के हैं।

इन विभिन्न प्रकार की मुद्राओं पर गुप्त शासकों द्वारा विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ उत्कीर्ण करवायी गयी जो कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि की और अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावशाली हैं। वस्तुतः इन्हीं आकृतियों के आधार पर ही इन मुद्राओं का नामकरण किया गया है। विभिन्न गुप्त सम्राटों द्वारा चलाये गये सिक्कों का विवरण निम्नलिखित हैं।

चन्द्रगुप्त प्रथम (319–350 ई0) के सिक्के –

चन्द्रगुप्त प्रथम को गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। वह एक दूरदर्शी सम्राट था। उसने लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी के साथ अपना वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया और एक विशेष प्रकार का स्वर्ण सिक्का चलवाया। इस सिक्के को राजारानी प्रकार (द्रष्टव्य चित्र सं0 9/परि0 9) विवाह प्रकार या लिच्छवि प्रकार भी कहा जाता है।

इन सिक्कों के मुख भाग पर चन्द्रगुप्त तथा कुमार देवी की आकृति नाम सहित उत्कीर्ण की गई है। आकृति में चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा कुमार देवी को अंगूठी या कंगन समर्पित करते हुए प्रदर्शित किया गया है। पृष्ठ भाग पर सिंहवाहिनी देवी (दुर्गा) की आकृति तथा ब्राह्मी लिपि में मुद्रा लेख "लिच्छवयः" उत्कीर्ण है।

कांच के सिक्के –

कुछ विद्वानों का मत है कि चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसके पुत्र कांच गुप्त ने अल्प अवधि के लिए शासन किया। अपने इस मत के समर्थन में वे कांच की स्वर्ण मुद्राओं तथा प्रयाग प्रशस्ति का उल्लेख करते हैं।

कांच नाम लिखी स्वर्ण मुद्राएँ जौनपुर, टाडा और वयाना से प्राप्त हुई हैं। इस सिक्कों के मुख भाग पर एक ओर राजा को खड़ा दिखाया गया है। उसके बायें हाथ में चक्र ध्वज है और दाहिने हाथ से वेदी पर आहूति दे रहा है। पृष्ठ भाग पर देवी लक्ष्मी की प्रतिमा उत्कीर्ण है। वह साड़ी, कंचुक, कर्ण फूल आदि पहिने दिखाई गई हैं। उनके दाहिने हाथ में पुष्प तथा बाये हाथ में कार्निकोपिया है। इस ओर राजा का विरुद "सर्व राजोच्छेता" अंकित है।

समुद्रगुप्त 'परक्रमाङ' (350–375ई0) के सिक्के –

कांच का वध करके समुद्रगुप्त गुप्त साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा। गुप्त वंश के महान शासकों की श्रृंखला उसी के समय से प्रारम्भ होती है। उसकी विविध प्रकार की मुद्राएं उसके जीवन तथा कार्यों पर प्रकाश डालती हैं। उसकी कुल 6 प्रकार की स्वर्ण मुद्राएं प्राप्त होती हैं, जो इस प्रकार हैं– गरुड़ प्रकार, धनुर्धारी प्रकार, परशु प्रकार, अश्वमेघ प्रकार, व्याघ्र हनन प्रकार, वीणावादन प्रकार। गरुड़ प्रकार की मुद्राएं नागवंशी राजाओं के ऊपर उसके विजय का संकेत

देते हैं। इसके मुख भाग पर अलंकृत वेषभूषा में राजा की आकृति, गरुड़ ध्वज, उसका नाम तथा मुद्रा लेख "समरशत विततविजयोजित रिपुरजितो दिवं जयति" उत्कीर्ण मिलता है। पृष्ठ भाग पर सिंहासनासीन देवी के साथ–साथ "पराक्रमः" अंकित है। अश्वमेघ प्रकार के सिक्के (द्रष्टव्य चित्र सं0 10/परिशिष्ट 10) समुद्रगुप्त द्वारा अश्वमेघ यज्ञ किये जाने के प्रमाण है। इसके मुख भाग पर यज्ञयूप में बंधे हुए घोड़े का चित्र तथा मुद्रालेख "राजाधिराजो पृथ्वी विजित्य दिवं जयत्या गृहीतवाजिमेधः" उत्कीर्ण है। पृष्ठ भाग पर राज महिषी की आकृति के साथ–साथ "अश्वमेघ पराक्रमः" अंकित है। वीणा प्रकार की मुद्राएं उसके संगीत प्रेम की सूचना देती हैं। इस प्रकार की मुद्रा के अग्र भाग पर समुद्रगुप्त गद्देदार पर्यक पर बैठा वीणा बजा रहा है तथा मुद्रा लेख "महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तः" उत्कीर्ण है। पृष्ठ भाग पर कार्नकोपिया लिए हुए लक्ष्मी की आकृति अंकित है। इसी ओर सम्राट का नाम "समुद्रगुप्त" अंकित है।

रामगुप्त के सिक्के –

समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् रामगुप्त गुप्त वंश का शासक हुआ। प्रारम्भ में विद्वानों की यह धारणा थी कि समुद्रगुप्त के पश्चात् गुप्त वंश का शासक हुआ और रामगुप्त की ऐतिहासिक दीर्घकाल तक अंधकार में रही। परन्तु कतिपय साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से रामगुप्त की ऐतिहासिकता अब सिद्ध हो गई है और यह प्रायः स्वीकार किया जाने लगा है कि समुद्र गुप्त के पश्चात् रामगुप्त ही गुप्त वंश का शासक हुआ। उसने काच की भाँति बहुत थोड़े समय तक शासन किया।

जिन पुरातात्विक साक्ष्यों से रामगुप्त की ऐतिहासिकता प्रकाश में आई है उन्हीं में से एक उसके द्वारा जारी की गई मुद्राएं भी हैं। मध्य प्रदेश के पूर्वी मालवा में भोपाल के समीप विदिशा नामक स्थान से रामगुप्त की ताँबे की

छः मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार एरण से भी रामगुप्त की अनेक ताँबे की मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। इन मुद्राओं में से कुछ पर सिंह की आकृति व स्वरूप वही है जो ध्रुव स्वामिनी की वसाढ़ से मिली मिट्टी की मुहर पर है। मुद्राओं पर लटकते हुए लता से युक्त कलश और कुछ मुद्राओं पर लताविहीन कलश उत्कीर्ण है। ये मुद्राएँ चन्द्रगुप्त द्वितीय के कलश भाँति सिक्कों के समान है। कुछ मुद्राओं पर गरुड़ की आकृति उत्कीर्ण है। उल्लेखनीय है कि गरुड़ गुप्तों का राजचिन्ह था। अन्य गुप्त सम्राटों की मुद्राओं पर भी गरुड़ अंकित हैं। कुछ मुद्राओं के पृष्ठभाग पर सम्राट का पूरा नाम रामगुप्त उत्कीर्ण है। शेष पर उसके नाम के कुछ अक्षर "राम", "भगु", "गुत" आदि पढ़े जा सकते हैं। भार माप में भी ये मुद्राएँ चन्द्रगुप्त के ताम्र सिक्कों से मिलती जुलती है। इस आधार पर परमेश्वरी लाल गुप्त ने इन्हें रामगुप्त से सम्बन्धित किया है। इन मुद्राओं के आधार पर कृष्ण दत्त बाजपेयी ने भी यह निष्कर्ष निकाला है कि रामगुप्त कोई दूसरा नहीं अपितु चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही अग्रज था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' (375–415 ई0) के सिक्के –

रामगुप्त के पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय गुप्त वंश का शासक हुआ। उसने भी अपने विशाल साम्राज्य के लिए विभिन्न प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित करवायी तथा उस पर विभिन्न प्रकार चित्र उत्कीर्ण करवाये। उसकी कुछ मुद्राएँ पूर्णतः नवीन एवं मौलिक थी तथा ये अत्यधिक कलात्मक और आकर्षक है। उसके द्वारा जारी स्वर्ण मुद्राएँ इस प्रकार हैं– धनुर्धारी प्रकार, छत्रधारी प्रकार, पर्यङ्क प्रकार, सिंह–निहन्ता प्रकार, अश्वारोही प्रकार। इनमें सिंह–निहन्ता प्रकार के सिक्कों के अग्र भाग पर राजा को धनुष बाण अथवा कृपाण से सिंह मारते हुए दिखाया गया है। पृष्ठ भाग पर सिंह पर बैठी देवी दुर्गा की आकृति विभिन्न

मुद्राओं में खुदी है। इस प्रकार के सिक्कों पर भिन्न–भिन्न मुद्रा लेख हैं, जैसे– नरेन्द्र चन्द्र प्रथितदिव जयत्यजेयो भुवि सिंह–विक्रमः (नरेन्द्र चन्द्र, पृथ्वी का अजेय राजा सिंह विक्रम स्वर्ण को जीतता है), "देवश्री महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्तः", "महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः" इत्यादि अंकित है। इन सिक्कों से उसके द्वारा पश्चिमी भारत पर विजय की पुष्टि होती है।

उपरोक्त स्वर्ण मुद्राओं के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय ने रजत एवं ताँबे की भी मुद्राएँ ढलवायी। वह गुप्त वंश का प्रथम शासक था, जिसने रजत मुद्राएँ ढलवायी। ये मुद्राएँ उसने पश्चिमी भारत के शको को पराजित करने के पश्चात् ढलवायी थी। डॉ0 अल्तेकर का भी मत है कि ये मुद्राएँ गुजरात और सौराष्ट्र में ढलवाकर प्रसारित करवायी।[60] इन रजत मुद्राओं के मुख भाग पर सम्राट का गर्दन युक्त मस्तक, गर्दन पर लटकते हुए लम्बे बाल, यूनानी अक्षरों के अवशेष तथा सम्राट की आकृति के सामने एवं पीछे गुप्त संवत में तिथि उत्कीर्ण है। मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर अर्द्धचन्द्र और गुप्त वंश का राजकीय चिन्ह गरुड़ और भिन्न–भिन्न लेख मिलता है, जैसे– "परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य", "श्री गुप्त कुलस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्र गुप्त विक्रमांकस्य"।

चन्द्र गुप्त द्वितीय के ताँबे के भी सिक्के कई प्रकार के हैं। जैसे– चक्र मुद्रा, कलश मुद्रा, उर्ध्वकाय मुद्रा इत्यादि। इनके मुख भाग पर "श्री विक्रम" अथवा "श्री चन्द्र" तथा पृष्ठभाग पर गरुड़ की आकृति के साथ श्री चन्द्र गुप्त अथवा चन्द्र गुप्त खुदा है।

कुमार गुप्त प्रथम 'महेन्द्रादित्य' (415–455 ई0) के सिक्के –

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमार गुप्त प्रथम गुप्त साम्राज्य की गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता एवं पितामह का अनुसरण करते हुए विभिन्न

प्रकार की मुद्रायें ढलवायी। उसने कुछ मुद्राओं को, जिसे बन्द कर दिया गया था, पुनः ढलवाकर प्रसारित किया तथा कुछ नवीन प्रकार की मुद्रायें प्रसारित की। चन्द्रगुप्त प्रथम के समय राजारानी प्रकार की मुद्रा प्रसारित की गई थी जिसे बाद में बन्द कर दिया गया। कुमार गुप्त ने इसे पुनः प्रचलित करवाया। उसकी स्वयं की इस प्रकार की मुद्रा बयाना से प्राप्त हुई है। इसके भी मुख भाग पर कुमार गुप्त प्रथम द्वारा रानी को कोई वस्तु समर्पित करते दिखाया गया है। पृष्ठ भाग पर सिंह पर आसीन देवी की आकृति है।

कुमार गुप्त प्रथम ने समुद्र गुप्त के अनुकरण पर भी कुछ मुद्राओं जैसे व्याघ्र निहन्ता प्रकार, अश्वमेघ प्रकार, वीणावादन प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन करवाया। उसने चन्द्र गुप्त द्वितीय के समय में जारी विशिष्ट प्रकार की मुद्राएँ, जो अधिक लोकप्रिय एवं आकर्षक थी, को जारी रखा। इन मुद्राओं में अश्वारोही प्रकार, धर्नुधारी प्रकार, छत्रधारी प्रकार, सिंह–निहन्ता प्रकार की मुद्राएँ उल्लेखनीय है। कुमार गुप्त प्रथम ने कुछ अपनी मौलिक स्वर्ण मुद्राएँ भी जारी करवाई। ये मुद्राएँ इस प्रकार हैं– खड्गधारी प्रकार, गजारूढ़ प्रकार, गजारूढ़ सिंह–निहन्ता प्रकार, गेडा निहन्ता मुद्राएँ, कार्तिकेय प्रकार, अप्रतिघ प्रकार। कार्तिकेय प्रकार की मुद्रा उसे अधिक प्रिय थी। इस प्रकार की मुद्रा के अग्र भाग पर मयूर को खिलाते हुए राजा की आकृति तथा पृष्ठभाग पर कुमार गुप्त की उपाधि "जयति स्वगुणैर्गुणराशि महेन्द्र कुमारः" अंकित है। इसी भाग पर मयूर पर आसीन कार्तिकेय को दिखाया गया है। उल्लेखनीय है कि गुप्त काल में मयूर वाहन पर सवार कार्तिकेय देवता के रूप में अधिक पूज्यनीय माने जाते थे।

कुमारगुप्त ने चाँदी एवं ताँबे के भी सिक्के चलवाये। उसकी रजत मुद्राओं में गरुड़ के स्थान पर मयूर की आकृति उत्कीर्ण है। उसकी ताँबे की मुद्राओं को प्रसिद्ध मुद्राशास्त्री अल्तेकर ने चार भागों में विभक्त किया है, जो

इसप्रकार है– छत्र प्रकार, खड़ा राजा प्रकार, धनुर्धारी प्रकार, लक्ष्मी हवन कुंड प्रकार।[61]

स्कन्दगुप्त 'क्रमादित्य' (455–467 ई0) के सिक्के–

कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् गुप्त वंश की बागडोर उसके योग्य पुत्र स्कन्दगुप्त के हाथों आई। यद्यपि कुछ विद्वान कुमार गुप्त के बाद घटोत्कच गुप्त नामक एक गुप्त शासक का उल्लेख करते हैं लेकिन उसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है। स्कन्दगुप्त के स्वर्ण एवं रजत के सिक्के प्राप्त हुए जो निम्नलिखित है–

1. धनुर्धारी प्रकार :

इस मुद्रा के अग्र भाग पर राजा को अलंकृत वेशभूषा में एक हाथ में धनुष तथा दूसरे हाथ में बाण लिए हुए दिखाया गया है। मुद्रा लेख "स्कन्द" अंकित है। इस पर दो लेख प्राप्त होते हैं– "जयति महीतलम् सुधन्वी" तथा "पराहितकारी राजा जयति दिवं श्री क्रमादित्य"। पृष्ठ भाग पर कमल पर आसीन लक्ष्मी का चित्र उत्कीर्ण है।

2. राजारानी प्रकार :

इस प्रकार की मुद्रा के अग्र भाग पर एक ओर राजा तथा दूसरी ओर सामने स्त्री की आकृति उत्कीर्ण है। राजा धनुष लिए है तथा स्त्री उसके सामने हाथ में कुछ लिए खड़ी दिखाई गई है। डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त उसे राजारानी की मुद्रा का नाम देते हैं जिसे स्कन्द गुप्त ने चन्द्र गुप्त प्रथम की मुद्राओं के आधार पर प्रचलित किया।[62] परन्तु अल्तेकर[63] ने इसे लक्ष्मी की आकृति माना है और इसे राजा तथा लक्ष्मी प्रकार की मुद्रा का नाम दिया है। इसी मत का समर्थन ऐलन तथा डॉ0 यू0एन0 राय भी करते हैं।

3. छत्र प्रकार :

ऐसी मुद्रा के मुख भाग पर राजा आभूषण पहने हुए हवन कुंड में आहुति डालते हुए दिखाया गया है। उसके पीछे कुब्जक (बौना भृत्य) छत्र लिए खड़ा है। पृष्ठ भाग पर देवी की आकृति के साथ मुद्रा लेख "क्रमादित्य" उत्कीर्ण है।

4. अश्वारोही प्रकार :

इस प्रकार की केवल एक मुद्रा प्राप्त हुई है जो वोडेलियन संग्रहालय में है। अग्र भाग पर अश्व पर सवार राजा की आकृति दिखाई गई है। पृष्ठ भाग पर देवी की आकृति के साथ अधूरा मुद्रा लेख "क्रमादित्य" उत्कीर्ण है।

स्कन्द गुप्त ने रजत मुद्राएँ भी प्रचलित करवायी, जो उसके पूर्वजों जैसी ही है। अल्तेकर ने इस मुद्रा को तीन भागों– गरुड़ प्रकार, वृष या नन्दी प्रकार, वेदी या हवन कुंड प्रकार, में विभक्त किया है। इसके मुख भाग पर वक्ष तक राजा का चित्र तथा पृष्ठ भाग पर गरुड़ नन्दी अथवा वेदी बनी हुई है। इनके उपर स्कन्दगुप्त की उपाधियाँ "परमभागवत्" तथा "क्रमादित्य" उत्कीर्ण मिलती है।

परवर्ती गुप्त शासकों ने भी स्वर्ण तथा रजत के सिक्के चलवाये तथा उन पर विभिन्न प्रकार के चित्र एवं उपाधियाँ अंकित करवायी।

महत्व –

गुप्तकालीन मुद्राएँ कला और आकर्षण की दृष्टि से अधिक महत्व रखती है। इन पर उत्कीर्ण किये गये विभिन्न गुप्त सम्राटों के चित्र तथा पशु पक्षी जैसे व्याघ्र, हाथी, अश्व, गरुड़, मयूर का चित्र उत्कृष्ट तथा प्रभावोत्पादक है। ये मुद्राएँ गुप्तकालीन चित्रकला के विकास का प्रमाण है। गुप्त सम्राटों और विभिन्न पशु पक्षियों को अत्यन्त स्वाभाविक तरीके से मुद्राओं पर उकेरा गया है।

सम्राटों की आकृति, वेशभूषा तथा शारीरिक बनावट के अंकन में विशेष ध्यान दिया गया है। राजकीय आकृति में शक्ति एवं गति का भाव संचारित है। स्त्री आकृतियाँ सौन्दर्य एवं दर्शनीय प्रधान है। इन सिक्कों पर विविध अवसरों पर होने वाले क्रियाओं के अत्यन्त कलात्मक चित्र मिलते हैं। राज दम्पत्ति, अश्वमेघ यज्ञ के अश्व, वीणावादन तथा आखेट में सिंह–वध आदि अपनी सम्मोहक सूक्ष्मता के साथ इन सिक्कों में ढाल दिए गए हैं। ये सिक्के न सिर्फ गुप्तकलीन उत्कृष्ट चित्रकला के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, बल्कि गुप्त साम्राज्य की सीमाओं की जानकारी भी देते हैं। इनसे हमें गुप्त सम्राटों के वैभव, ऐश्वर्य, शक्ति और बहुमुखी व्यक्तित्व का पता चलता है। गुप्त सम्राटों द्वारा धारण की गई उपाधियों का ज्ञान भी इनसे हमें प्राप्त होता है। ये मुद्राएँ तत्कालीन धार्मिक परम्पराओं का बोध कराती हैं और गुप्त सम्राटों के व्यक्तिगत अभिरुचि तथा गुणों पर प्रकाश डालती है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 185

2. विशाखदत्त : मुद्राराक्षस, अंक–2

3. वात्स्यायन : कामसूत्र, पृ0 292

4. वही, पृ0 32

5. कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 6/16

6 कालिदास : मालविकाग्नि मित्र अंक–4

7. कालिदास : रघुवंश 9/92

8. कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तलम्, पृ0 209–10

9. "रूपभेदा : प्रमाणानि भावलावण्य योजनम् ।

सादृश्यं वर्णिका भंग इति चित्रं षड्ङगकम्।।, कामसूत्र, पृ0 33

10. कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तलम्, पृ0 119

11. भरतमुनि नाट्यशास्त्र, अध्याय 2/72–74

12. "विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरंङ्ग गोरचना पत्र विभक्तमस्याः।

सा चक्रवाकाङ्किकत सैकता यास्त्रि स्त्रोतसः कांतिमतीत्य तस्थौ।।

कालिदास : कुमारसम्भव 7/15

13. कालिदास : रघुवंश, 11/9

14. "प्रतोलिका नामलकृकमन : शिला हरिताल हिगुंलकरयामवर्ण कादीनां दानम" ।, वात्स्यायन : कामसूत्र, पृ0 203

15. कालिदास : कुमार सम्भव, 1/24, 47

16. कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक–6

17. कालिदास : कुमारसम्भव, 1/32

18. उद्धत : डॉ0 रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ0 58

19. उद्धत, वही : पृ0 57

20. उद्धत, वही : पृ0 57

21. टी0 वोर्टस : आन युवाड्ग च्वांड्गस ट्रेवल्स इन इण्डिया, लंदन, 1905, 2, पृ0 239–40

22. जेम्स फर्ग्युसन : ऑन द टाक टैम्पिल ऑफ इण्डिया : जर्नल ऑफ द रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ द ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंड, आठ (1846), पृ0 30–92

23. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 192

24. वही, पृ0 192

25. डॉ0 एस0बी0 अग्रवाल : भारतीय चित्रकला का इतिहास, पृ0 75

26. उद्धत : डॉ0 रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ0 79

27. याजदानी : अजन्ता 'खण्ड प्रथम', पृ0 27

28. मदनजीत सिंह : "द केव पेन्टिंग्स ऑफ अजन्ता", पृ0 172

29. उद्धत : डॉ0 रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ0 64

30. वही, पृ0 68

31. वही, पृ0 68

32. हेवेल, इण्डियन स्कल्पचर एण्ड पेंटिंग, पृ0 164–165

33. भगिनी निवेदिता : फुटफाल्स आफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 135–36

34. उद्धत : डॉ0 रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ0 82

35. आर0एस0 गुप्ता एवं वी0डी0 महाजन : अजन्ता, एलोरा और औरंगाबाद केब्जस, पृ0 44–45

36. एम0डी0 खरे : बाघ की गुफाएँ, पृ0 35

37. वही, पृ0 9–10

38. फर्ग्यूसन एण्ड वर्गेस : केव टेम्पिल्स आफ इण्डिया, पृ0 186

39. वही, पृ0 366

40. विन्सेट स्मिथ : हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन, पृ0295

41. ले0 रायकृष्ण दास : भारत की चित्रकला, पृ0 38

42. उद्धत, शुक्रदेव श्रोतीय : भारतीय चित्रकला, शोध संचय, 1997, पृ0 60

43. उद्धत, वही, पृ0 60

44. फोगेल : द बाघ केब्ज इन ग्वालियर स्टेट, लंदन, 1927, पृ062–63

45. असित कुमार हाल्दार : ललित कला की धारा, इलाहाबाद, 196, पृ075–76

46. राय कृष्णदास : भारत की चित्रकला, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, संवत् 2023, पृ0 21

47. सी0 शिवराम मूर्ति : इण्डियन पेन्टिंग, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, पृ0 31

48. असित कुमार हाल्दार : ललित कला की धारा, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960, पृ0 76–77

49. माहेश्वरी दयाल खरे : बाघ की गुफाएँ, पृ0 63

50. असित कुमार हाल्दार : ललित कला की धारा, 1960, पृ0 76–77

51. मुकुल डे : माई पिलग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ, 1950, पृ0 176

52. माहेश्वरी दयाल खरे : बाघ की गुफाएँ, 1971, पृ0 64

53. सी0 शिवराम मूर्ति : इण्डियन पेन्टिंग, 1970, पृ0 31

54. मुकुल डे : माई पिलग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ, 1950, पृ0 176

55. माहेश्वरी दयाल खरे : बाघ की गुफाएँ, पृ0 76

56. मुकुल डे : माई पिलग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ, 1950, पृ0 176

57. माहेश्वरी दयाल खरे : बाघ की गुफाएँ, पृ0 74

58. एलन : कैटलाग आफ द क्वायन्स आफ द गुप्त डायनेस्टी, 1914

59. अल्तेकर : क्वायनेज आफ द गुप्त इम्पायर, 1957

60. अल्तेकर : गुप्तकालीन मुद्राएँ, पृ0 108

61. अल्तेकर : क्वायनेज आफ द गुप्त इम्पायर, पृ0 237–38
गुप्तकालीन मुद्राएँ, पृ0 165–68

62. डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 61

63. अल्तेकर : क्वायनेज आफ द गुप्त इम्पायर, पृ0 245

तृतीय अध्याय

गुप्तकालीन मूर्ति एवं धातु कला

भारतीय कला के विकास में गुप्त शासकों का योगदान अतुलनीय है। गुप्तकाल में मूर्तिकला का भी विकास हुआ है। मूर्तिकला मूर्तन की ऐसी विधा है जिसमें शिल्पी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के साथ किसी वस्तु की तद्वत् अनुकृति प्रस्तुत करता है। इसके साथ–साथ वह उस अनुकृति में अपनी क्षमता तथा कल्पना के अनुसार सौन्दर्य तथा रस दोनों का समन्वय करता है।

चित्रकला की भाँति मूर्तिकला का उद्‌भव भी मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन के विकास के साथ माना जा सकता है, यद्यपि इस काल की मूर्तिकला के नमूने अभी प्राप्त नहीं है। भगवत शरण उपाध्याय ने लिखा है– "संसार में मूर्ति का प्रतीक जितना शक्तिशाली रहा है, उतना अन्य कोई प्रतीक नहीं। त्रास और कुतूहल से भगवान और धर्म का उदय हुआ। परन्तु मूर्ति की काया उनसे बहुत पूर्व ही सज गई थी। भगवान का उदय हो चुकने पर व्यक्तिगत सम्बन्ध के लिए एक माया चाहिए थी और मानव ने जैसे प्रेम और श्रद्धा मानव अथवा व्यक्ति के प्रति ही विकसित किये थे, उस दिशा में भी उसे कुछ अपना सा ही चाहिए था और प्रतिमा अपने ही अनुरूप उसने रच डाली। आत्मीयता मूर्त हुई। प्राथमिक चिंताकुल मानव की इस प्रकार मूर्ति पहली अभिसृष्टि थी। प्रशांतसागर से अटलांटकसागर तक फैली भूमि पर बसने वाली सारी जातियाँ मूर्ति पूजती और उससे डरती थी। मातृसत्तात्मक कुल परम्परा से भिन्न मानव की सर्वशक्तिमती रक्षिका माता ही प्रथम देवता बनी जिसकी मूर्ति कोर कर उसने पूजा। मातृ देवी की मूर्तियाँ ही, इसी कारण, पहले सर्वत्र मिली है। जननेन्द्रिय की जनन शक्ति ने फिर लिंग पूजा का सूत्रपात किया। भय जब स्थायी हो गया तब उससे मानव परचा और उसे धीरे–धीरे सुन्दरतर करने लगा, प्रिय आत्मीय जैसा ही। मूर्ति में

कला बसी, उसके लक्षणों ने फिर प्रतिमा शास्त्र रचे। मूर्ति अनपढ़ मानव ने सिरजी, शास्त्र उसके बनाये पण्डित ने। भारत के इतिहास में भी मूर्ति उतनी ही पुरानी है, जितना पुराना उसका जाना हुआ इतिहास है।''[1]

भारत में मूर्तिकला के प्राचीनतम नमूने ''सिन्धु घाटी सभ्यता'' के विभिन्न पुरास्थलों से प्राप्त होते हैं। परन्तु आश्चर्य है यह कला मूर्ति कला के प्रारम्भिक अवस्था को नहीं अपितु विकसित अवस्था को व्यक्त करती है। इस सभ्यता के पुरास्थलों से एक से बढ़कर एक प्रस्तर, धातु और मिट्टी की विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। वैदिक आर्यों का भी मूर्तियों से परिचय था, जिसका प्रमाण हमें वैदिक ऋचाओं और सूक्तों से प्राप्त होता है। किन्तु भारतीय मूर्तिकला का वास्तविक इतिहास मौर्यकाल और उसके बाद शुंग, कुषाण, गुप्तों के समय में ही प्राप्त होता है। प्राक्मौर्य युग में भी इस दिशा में प्रयास हुए होंगे जिसका प्रमाण हमें मिल जाने वाले एकाध प्रतीकों से मिलता है। ईसा पूर्व आठवीं–सातवीं शताब्दी लौरियानन्दगढ़ की मृतिका समाधि में प्राप्त नग्न नारी की स्वर्ण प्रतिमा यह प्रमाणित करती है कि प्राकमौर्य युग में भी इस क्षेत्र में सफल प्रयास होते थे।

मौर्य काल से भारतीय मूर्तिकला का एक श्रृंखलाबद्ध इतिहास प्रारम्भ होता है। मौर्य युग में कला के दो रूप प्राप्त होते हैं– राजदरबारी कला तथा दूसरा लोककला। राजदरबारी कला के अन्तर्गत अशोक के स्तम्भों को मण्डित करने वाली विभिन्न पशुओं की आकृतियों का उल्लेख किया जा सकता है। ये पशु आकृतियाँ मौर्ययुगीन मूर्तिकला के सर्वोत्तम नमूने है जो वसाढ़, लौरिया नन्दगढ़, संकिसा, रामपुरवा, साँची तथा सारनाथ के स्तम्भ शीर्ष से प्राप्त होते हैं। जहाँ तक मौर्ययुगीन लोककला का प्रश्न है– इस कला के उदाहरण उन पाषाण निर्मित यक्ष–यक्षिणी की प्रतिमाओं में देखा जा सकता है जो मथुरा, पद्मावती,

वेसनगर (विदिशा), पटना, शिशुपालगढ़ आदि स्थानों से प्राप्त हुई है।

मौर्यवंश के पश्चात् शुंगवंश की स्थापना हुई। इस काल में मूर्तिकला के क्षेत्र में एक नवीन शैली दृष्टिगोचर होती है जिसके अन्तर्गत तीन ओर से दिखने वाली मूर्तियों के स्थान पर शिला फलकों को आधार बनाकर सामने की ओर से देखी जाने वाली मूर्तियाँ उच्चित्र के रूप में (Base-Relief) उकेरी गई। इस नवीन शैली का विकास बौद्ध धर्म के प्रसार में किया गया। बौद्ध उपासना के प्रतीक यथा बोधि वृक्ष, स्तूप, उष्णीय, धर्म चक्र को पाषाण फलकों पर उकेरा गया। भरहुत, साँची के स्तूप को तोरण द्वार और वेदिका पर इस शैली को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त बुद्ध के जीवन से जुड़ी घटनाओं जैसे जन्म, सम्बोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन, महापरिनिर्वाण, श्रावस्ती में विश्व रूप प्रदर्शन तथा जातकों की कहानियाँ एवं लोकधारणाओं एवं विश्वासों में व्याप्त यक्ष–यक्षी तथा नागों का अंकन भी पाषाण फलकों पर हुआ। इस प्रकार मूर्तिकला के द्वारा धर्म की इस पार्श्व भूमि में जीवन की झलक भी व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती है।

कुषाण काल में मूर्तिकला के क्षेत्र में दो शैलियों– गान्धार तथा मथुरा– का विकास हुआ। इन दोनों शैलियों में विशाल पैमाने पर मूर्तियों का निर्माण किया गया।

गुप्तकाल में मूर्तिकला ने नई चोटी को स्पर्श किया। शिल्पियों के अद्‌भुत रचना कौशल ने ऐसी कृतियों का निर्माण किया जो भारतीय कला के क्षेत्र में "न भूतो न भविष्यति" के कथन को चरितार्थ करती है। इस युग की तक्षण कला अपनी सजीवता, स्वाभाविकता एवं विविधता के लिए प्रसिद्ध है। इस युग में मूर्तिकला नवीनता से ओतप्रोत हो गई। गुप्तयुग के कलाकारों ने ब्राह्मण और श्रमण धर्म के कितने ही देव स्वरूप और उनके चरित्र को अपनी समाधि अवस्था में साकार किया। भगवत शरण उपाध्याय के शब्दों में– "मूर्तियाँ जैसे अपने

पार्थिव धरातल से, प्रस्तरीय प्रक्रिया से ऊपर उठ गयी, उनमें जैसे मनस और मानस की प्रतिष्ठा हुई, काया में जैसे आत्मा बैठी। भारतीय कला की, उसके साहित्य की ही भांति, चरम परिणति हुई।"[2]

(अ) बौद्ध मूर्ति कला

गुप्तकालीन शिल्पियों ने अपने अपूर्व कौशल के बल पर कला के क्षेत्र में एक नवीन युग का सूत्रपात किया जिसका साक्षात् उदाहरण हमें गुप्तकालीन प्रस्तर धातु तथा मिट्टी की "बौद्ध मूर्तियों" में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इस काल में "बोधिसत्वों" की भी मूर्तियाँ निर्मित हुई।

गुप्तकालीन बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियों में कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो उसे अन्य कला शैली से अलग करती हैं। गांधार कला शैली में मूर्तियों का निर्माण भूरे और स्लेटी पत्थर से किया गया था परन्तु गुप्त युग में मूर्ति निर्माण के लिए अलग प्रकार के पाषाण का प्रयोग किया गया। मथुरा शैली में निर्मित मूर्तियों में सफेद चित्तीदार लाल पाषाण का उपयोग किया गया। सारनाथ शैली में निर्मित मूर्तियाँ "चुनार के सफेद बालूदार" पत्थर से बनी हैं। कुषाण काल में बौद्ध मूतियाँ केश विहीन हैं। दूसरे शब्दों में उनका सिर मुडित है जबकि गुप्तकाल की बुद्ध मूर्तियों में घुंघराली केशराशि बनायी गयी है। दक्षिणावर्त घुंघराले केश तथा उष्णीय गुप्तकालीन बौद्ध मूर्तियों की विशेषता है। कुषाण कालीन बुद्ध मूर्तियाँ में सादे प्रभामण्डल है परन्तु गुप्तकालीन बौद्ध मूर्तियों में अलंकृत प्रभामण्डल दिखाया गया है। अलंकरणों में कमल और उसकी पत्रलता प्रमुख है, जिसका फैलाव प्रभामण्डल के वृत्त की परिधि के भीतर है। इस काल (गुप्तकाल) में बौद्ध मूर्तियों की मुद्राओं में बहुलता दृष्टिगोचर होती है। उन्हें ध्यान मुद्रा, अभय मुद्रा, वरद मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा आदि में प्रदर्शित किया गया है। गुप्त युग से पहले जिन बौद्ध मूर्तियों का निर्माण हुआ था, उसमें

भौंहों के बीच एक प्रकार का तिलक लगाया जाता था जिसे "उर्णा" कहते थे। परन्तु गुप्तकालीन बौद्ध प्रतिमाओं में "उर्णा" नहीं दिखाई देती। भौंहों तथा वक्षस्थल में भी नवीनता दृष्टिगोचर होती है। कुषाण कालीन मूर्तियों की तुलना में गुप्तकालीन बौद्ध मूर्तियों के मुख एवं नेत्रों से आध्यात्मिकता की भावना अधिक झलकती है। सारी मूर्तियाँ धार्मिक एवं आध्यात्मिक तत्वों से प्रेरित हैं।

गुप्तकाल में मूर्ति निर्माण कला के प्रमुख केन्द्र मथुरा और सारनाथ थे। इसके अतिरिक्त पाटलिपुत्र, बोधगया, नालन्दा, श्रावस्ती आदि स्थलों पर भी मूर्तियों का निर्माण होता था।

मथुरा –

प्राचीनकाल में शूरसेन के नाम से प्रसिद्ध मथुरा कुषाणकाल में ही मूर्तिकला के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हो गया था। यहाँ मूर्तियों का निर्माण सफेद चित्तीदार लाल पत्थर से किया गया था। गुप्तयुग में चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल में मथुरा में मूर्तियाँ बनाई गई। परन्तु इस काल तक जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें कुषाणकालीन मूर्तिकला की विशेषता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के लिए इलाहाबाद जिले के मनकुवर नामक स्थान से कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल की एक बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो मथुरा से निर्यातित लगती है। इस मूर्ति पर कुमारगुप्त के शासन काल की तिथि गुप्त संवत् 129 (448 AD) अंकित है। इस मूर्ति का अनुपात, वक्ष का गठन, मुंह के भाव आदि मथुरा की कुषाणकालीन मूर्तियों से भिन्न नहीं है। एक अन्य उदाहरण जैनतीर्थकर की मूर्ति है जो मथुरा से प्राप्त हुई है और जिस पर गुप्तसंवत् 113 (432 AD) की तिथि अंकित है। यह भी कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल की है। इस मूर्ति को यदि मनकुवर से प्राप्त मूर्ति के साथ रखकर देखा जाय तो दोनों ही मूर्तियों में धड़ की गठन एक सी है। इन दोनों में वह

समानता और संतुलन नहीं है जो पांचवीं सती के बाद गुप्त मूर्तियों में पाया जाता है। इस आधार पर डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल तक मथुरा में कुषाण मूर्तन शैली ही प्रचलित रही।[3] कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल के बाद मथुरा शैली में परिवर्तन हुआ और नवीन गुप्त शैली विकसित हुई।

गुप्त युग में मथुरा केन्द्र में कुषाण कालीन कला और गुप्तकालीन मूर्तिकला के लक्षण का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। मथुरा में निर्मित बुद्ध एवं बोधिसत्वों तथा अन्य देवी देवताओं की मूर्तियाँ श्रावस्ती, कौशाम्बी आदि स्थानों तक पहुँची।

गुप्त काल में भिक्षु यशदिन्न ने बुद्ध की अनेक प्रतिमायें मथुरा और उसके पास के क्षेत्र में बनवायी और उन्हें प्रतिष्ठित किया। इनमें से एक प्रतिमा कुशीनगर में है। मथुरा केन्द्र की दो विशिष्ट प्रतिमायें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम बौद्ध मूर्ति मथुरा के जमालपुर टीले से प्राप्त हुई हैं, जो वर्तमान में मथुरा पुरातत्व संग्रहालय (हैम्पियर नगर) में विद्यमान है। यह प्रतिमा 7 फुट 2.5 इंच ऊँची है। इसके दोनों कंधों पर संघाटी, कुंचित केश, ऊँचे जटाजूट, लम्बे कान, नासाग्र दृष्टि दर्शनीय है। शरीर महीन वस्त्र से ढका है जिसमें उसके अंग प्रत्यंग दृष्टिगोचर होते हैं। मस्तक के पीछे गोल विशाल एवं अलंकृत प्रभा मण्डल अत्यन्त आकर्षण हैं। यद्यपि इस बुद्ध मूर्ति का दाहिना हाथ कोहनी के आगे टूट गया है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह अभय मुद्रा में रहा होगा।

बुद्ध की दूसरी मूर्ति मथुरा कला केन्द्र की अनुपम देन है। यह मूर्ति लगभग 6 फुट 2.5 इंच ऊँची है जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इस खड़ी मूर्ति के मुख पर शांति तथा ध्यान के भाव दर्शनीय है। उनका मुख मण्डल शांति करुणा एवं दैवीय आभा से सुशोभित है। अनेक घेरों के बीच "अलंकृत प्रभा

मण्डल'' अर्द्ध निमीलित ध्यान भरा बुद्ध सहसा दर्शकों को अपनी शांत मुद्रा से प्रभावित करते हैं। शरीर पर महीन वस्त्रों के कारण अंग–प्रत्यंग स्पष्ट झलकता है। ए0एल0 श्रीवास्तव ने लिखा है– ''यथार्थ रूप से रूपाकृति अथवा 'अंग सौष्ठव' की दृष्टि से भी अत्यन्त सुन्दर, सुकोमल एवं चारुत्व से परिपूर्ण जान पड़ती है।''[4] इस मूर्ति को देखने से ऐसा लगता है कि गुप्तकला इस समय तक विदेशी प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो चुकी थी।

मथुरा की गुप्तकालीन मूर्तियों में एक बोधिसत्व की मूर्ति है जो बोध गया से प्राप्त हुई है। इस पर महाराज त्रिकमल के 64वें साल की तिथि पड़ी है। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रतिमा महाराजा त्रिकमल के शासन काल के 64वें वर्ष में निर्मित हुई थी। कनिंघम ने इसे 383 ईस्वी का माना है। यह मूर्ति गुप्त शासन के प्रारम्भिक समय की है, जिसे मथुरा की कुषाण शैली का प्रसरण कहा जा सकता है। इस प्रतिमा में कुषाणकालीन मूर्तन की कठोरता नहीं है, गुप्त काल की नयी सहजता एवं भावाभिव्यक्ति इसमें दृष्टिगोचर होती है।

सारनाथ –

सारनाथ वाराणसी से लगभग 6.5 किमी0 की दूरी पर उत्तर में स्थित है। इसका पुराना नाम मृगदाव या ऋषिपत्तन था। महावस्तु के अनुसार यहाँ के आश्रम में 500 ऋषि रहते थे। एक जातक कथा के अनुसार यहाँ के जंगलों में हिरणों का झुंड रहता था जिन्हें काशी के राजा ने अभयदान दे रखा था। ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् बुद्ध ने सर्वप्रथम अपना प्रथम उपदेश यहीं पर पाँच भिक्षुओं को दिया था। बौद्ध साहित्य में इस घटना को ''धर्मचक्रप्रवर्तन'' कहा गया है। सारनाथ में रहते हुए बुद्ध पैदल भिक्षाटन के लिए काशी जाया करते थे। यह स्थल बौद्ध मतानुयायियों का एक प्रमुख धर्मस्थल बन गया। सम्राट अशोक ने यहाँ कई स्मारक बनवाये जिसमें सिंह स्तम्भ उल्लेखनीय हैं।

मौर्यसाम्राज्य के पतन के पश्चात् ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में शुंग वंश की स्थापना हुई। शुंगों के समय सारनाथ का महत्व घट गया। कुषाण काल में सारनाथ की एक बार पुनः उन्नति हुई। कनिष्क के शासन काल के तीसरे वर्ष में मथुरा के त्रिपिटकाचार्य भिक्षुवल ने एक विशालकाय "बोधिसत्व प्रतिमा" की स्थापना की। यह मूर्ति धर्मराजिका के समीप मिली थी। मूर्ति के ऊपर एक विशाल छत्र लगा था। मूर्ति के लेख में "छत्रय", "वनष्पर" और "महाक्षत्रय खरपल्लान" की सहायता का उल्लेख है।

सारनाथ का पूर्ण अभ्युदय गुप्त काल में हुआ। यह गुप्तयुगीन मूर्ति कला का एक प्रमुख केन्द्र था। यदि सारनाथ को उस समय की मूर्तिकला का "यन्त्रालय" कहा जाय तो यह अतिशयोक्ति न होगी। यहीं पर बुद्ध एवं बोधिसत्व की सबसे अधिक मूर्तियाँ निर्मित की गई और इन मूर्तियों में "चक्रवृत्ति" या "धर्मचक्र" प्रदर्शित किया गया। बौद्धों का तीर्थ स्थान होने के कारण, बौद्ध धर्म में आस्था रखने वाले इन कलाकारों ने सारनाथ में सर्वाधिक बौद्ध मूर्तियों का निर्माण करने का गौरव प्राप्त करके इसे प्रसिद्ध गुप्त कालीन कला के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल रहे।

गुप्तयुग में निर्मित सारनाथ की बौद्ध प्रतिमायें अपनी विशिष्ट अंकन शैली रखती हैं। इन प्रतिमाओं का निर्माण चुनार के सफेद बालूदार पत्थर से किया गया है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि गुप्तकालीन बौद्ध मूर्तियों में पाँच मुद्राएँ– ध्यान मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा, अभय मुद्रा, वरद मुद्रा तथा धर्म चक्र मुद्रा अधिकांशतः मिली है। इन मूर्तियों के शरीर पर दो प्रकार के वस्त्र हैं– अधोवस्त्र एवं संघाटी। अधोवस्त्र नीचे का वस्त्र है जबकि संघाटी ऊपर का वस्त्र है जिसमें एक अथवा दोनों कंधे ढके रहते हैं। इन बौद्ध प्रतिमाओं पर वस्त्र इतने महीन है कि शरीर के अंग–प्रत्यंग झलकते रहते हैं। मूर्तियों की भवे सीधी दिखाई गई हैं।

सारनाथ की बौद्ध प्रतिमाओं में प्रभामण्डल अलंकृत है। इसकी बनावट अत्यन्त आकर्षक है। इस शैली की निर्मित मूर्तियों में भद्रता, सौन्दर्यता और शालीनता का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। ये मूर्तियाँ धार्मिक तत्वों से प्रेरित हैं। सारनाथ शैली में निर्मित बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्ति का शारीरिक सौन्दर्य साँचे में ढलकर निखरा ही है, पर उनका अंतरंग बहिरंग के माध्यम से दिव्य ज्योति प्रकट करता है।

अभय मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति –

सारनाथ में खड़ी बुद्ध की प्रतिमायें अभय एवं वरद दोनों मुद्रा में प्राप्त होती हैं। यहाँ से प्राप्त अभय मुद्रा में प्रदर्शित मूर्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भगवान बुद्ध यहाँ अभय मुद्रा में संसार को दान दे रहे हैं। दोनों कंधों की ढकी हुई संघाटी एवं कमर से बंधा अन्तर्वासक दर्शनीय है। किसी–किसी मूर्ति में कायबन्ध (करधनी) अन्तर्वासक से नीचे बाये जंघे पर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।[5] इन मूर्तियों की एक विशेषता यह भी है कि इनके वस्त्र पारदर्शक एवं महीन हैं। लम्बे कानों में खोर एवं सिर पर कुटिल केश तथा उष्णीय प्रदर्शित की गई है। कलकत्ता संग्रहालय में "बुद्ध की खड़ी प्रस्तर मूर्ति" सुरक्षित है।[6] इसके प्रभा मण्डल पर दोनों विद्याधरों की मूर्ति तथा नीचे की ओर किसी 'परिचायक' की मूर्ति है।

वरद मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति –

सारनाथ कला शैली में अनेक खण्डित बौद्ध मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमें कुछ मूर्तियाँ "वरद मुद्रा" में भी है। दाहिने हाथ वाली मूर्तियाँ स्पष्ट रूप से वरद मुद्रा में दिखाई देती हैं क्योंकि इस मुद्रा में बायां हाथ संघाटी का छोर पकड़े हुए कंधे के बराबर दिखाया गया है।[7]

भूमिस्पर्श मुद्रा –

यह घटना बोधगया में मार विजय के उपरान्त बुद्धत्व प्राप्त करने से संदर्भित है। इस मुद्रा का अभिप्राय यह बतलाना है कि बुद्धत्व प्राप्ति के बाद बुद्ध ने मार पर जो विजय प्राप्त की थी, उसका साक्षी पृथ्वी है।[8] सारनाथ शैली में ऐसी मुद्रा को प्रदर्शित करने वाली अनेक प्रतिमाएं "सारनाथ संग्रहालय" में सुरक्षित हैं। इसमें बुद्ध पद्मासन मुद्रा में बैठे हैं। उनका एक हाथ (बायां) गोद में है तथा दूसरे (दाहिने) से आसन को स्पर्श कर रहे हैं। संघाटी उनके एक स्कन्ध को ढके हुए हैं। उसकी किनार यज्ञोपवीत जैसी लगती है। उनके सिर के चारों ओर अलंकृत प्रभामण्डल है तथा मस्तक के ऊपर बोधिवृक्ष बना है। उनका चौथा वक्षस्थल और क्षीणकटि उनकी शाक्य सिंह की उपमा को सार्थक करती प्रतीत होती हैं। आसन के नीचे "मार (कामदेव) विजय" का दृश्य अंकित है। इसमें पृथ्वी हाथ जोड़े खड़ी है जिसे बुद्ध ने साक्षी के रूप में बुलाया था। बायीं ओर एक स्त्री की आकृति भागती हुई दिखाई गई है जिसे विद्वानों ने अप्सरा बतलाया है।[9]

"मार विजय" से सम्बन्धित एक अन्य प्रतिमा भी सारनाथ में मिली है, जिसमें बुद्ध बोधिमण्डल पर आसीन भूमि स्पर्श मुद्रा में बैठे हैं। उनके मस्तक के पीछे अलंकृत प्रभा मण्डल है। मस्तक के ऊपर बोधि वृक्ष उत्कीर्ण है। आसन के नीचे मार कामदेव धनुष बाण लिए खड़े हैं। बायीं ओर उनकी पुत्रियाँ खड़ी हैं। इनमें से एक हाव–भाव प्रदर्शित करते खड़ी है।[10] बुद्ध की ऐसी मूर्तियों में कभी–कभी अलंकृत प्रभा मण्डल के ऊपरी भाग में दो–दो राक्षसों या गन्धर्वों की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण मिलती हैं। अन्य प्रतिमाओं के प्रभा मण्डल के दोनों पार्श्व में देव आकृतियों का अंकन है जो मार विजयी भगवान बुद्ध पर पुष्प वर्षा कर रहे हैं।

धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध की मूर्ति –

सारनाथ की बौद्ध प्रतिमाओं में धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में प्राप्त बुद्ध की

मूर्ति (द्रष्टव्य : चित्र सं0 11/परि0 11) सबसे सुन्दर श्रेष्ठ एवं आकर्षक हैं। इसमें पद्मासन मुद्रा में विराजमान बुद्ध को धर्म की शिक्षा देते हुए प्रदर्शित किया गया है। उनके सिर पर अलंकृत प्रभामण्डल है जिसके दोनों पार्श्व में दो देव मूर्तियाँ बनी हैं। इसमें एक पुष्पपत्र धारण किये हैं तथा दूसरे के हाथ में चंवर है। पद्मासन के मध्य में धर्मचक्र उत्कीर्ण है। इसमें दोनों तरफ दो मृगों की आकृतियाँ हैं। इस चक्र में दाहिनी ओर तीन तथा बायीं ओर दो, कुल पांच पुरुष आकृतियाँ हैं जिनकी पहचान पुरातत्वविद् "पंचभद्र वर्गीय" से करते हैं। प्रतिमा का आसन भी अत्यन्त सुन्दर तथा अलंकरण युक्त है। इस प्रतिमा में उनके कंधों से लटकता हुआ उनके शरीर पर झीना वस्त्र दिखाया गया है। दक्षिणावर्त केश तथा उष्णीय सिर को सुशोभित कर रहे हैं। कलाकार को बुद्ध के शान्त तथा निःस्पृह भाव को व्यक्त करने में अद्भुत सफलता मिली है। इस मूर्ति के माध्यम से गुप्तकालीन कलाकारों ने मूर्तिकला में सर्वप्रथम धर्मोपदेश के भाव को स्पष्टतः दर्शाने का सफल प्रयास किया है। यह मूर्ति लगभग 1.56 मी0 ऊँची है। इसे गुप्तकालीन तक्षण कला का सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण कहा जा सकता है। इस मूर्ति में इन अंगों की भाव भंगी सौन्दर्य एवं भावों की औचित्य पूर्ण व्यंजना को देखकर हैवेल ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है– "भगवान बुद्ध के दैविक तथा आध्यात्मिक भावों को लेकर प्रतिमा निर्मित की गई तथा यह गुप्तकालीन शिल्पी की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है।[11] इस मूर्ति का विवेचन करते हुए डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं– "सारनाथ में प्राप्त बुद्ध की मूर्ति की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति, सौम्य स्मित और गम्भीर विचार पूर्ण मुद्रा भारतीय कला की उच्चतम् सफलता की साक्ष्य है। अनुत्तर ज्ञान के संयुक्त और निर्लिप्त भाव में बैठे हुए बुद्ध एक दैवीय आभा विकीर्ण कर रहे हैं। उनके मुख मण्डल पर कठोर अनुशासन के साथ स्नेह, संतुलन, करुणा, आत्मविश्वास तथा निस्सीय आध्यात्मिक आनन्द के

भाव विद्यमान हैं।[12]

सारनाथ से भूमिस्पर्शमुद्रा तथा धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध की प्रस्तर मूर्ति बैठी मिली है। धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध की अन्य मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं जो खण्डित अवस्था में हैं।[13] इस शैली में निर्मित ऐसी ही अनेक प्रतिमाएँ कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है।[14] किसी–किसी मूर्ति के आसन के अधोभाग में पाँच भिक्षुओं की आकृति नहीं है, केवल मूर्ति के दानकर्त्ता और प्रतिष्ठितकर्ता की आकृति दोनों ओर बनी हुई मिलती है।[15] धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में कुछ मूर्तियाँ "यूरोपीय फैशन" में बैठी हुई प्राप्त हुई हैं। गुप्तकाल के अन्तिम चरण में सारनाथ से धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में कुछ अन्य प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इसमें बुद्ध के दोनों ओर बोधिसत्व अवलोकितेश्वर एवं मैत्रेय दिखाए गए हैं। मैत्रेय के एक हाथ में अक्षमाला तथा दूसरे में अमृत घट है। अवलोकितेश्वर के एक हाथ में कमल और दूसरा हाथ वरद् मुद्रा में है। ये मूर्तियाँ कमल पर खड़ी दिखाई गई हैं।

बोधिसत्वों की मूर्तियाँ –

सारनाथ कला केन्द्र पर गुप्तकालीन कलाकारों ने बुद्ध के साथ–साथ बोधिसत्वों की भी मूर्तियों का निर्माण किया। डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त ने लिखा है– "बुद्धत्व प्राप्त करने के प्रयास में बुद्धत्व की ओर अग्रसर होते हुए बुद्ध ने अनेकानेक जन्म धारण किये उनको बोधिसत्व की संज्ञा दी गई।[16] बुद्ध एवं बोधिसत्व में अन्तर यह है कि बुद्ध ने पूर्ण ज्ञान (सम्बोधि) प्राप्त कर ली और वे पूर्णावस्था को पहुँच गये हैं। परन्तु बोधिसत्व ने सम्बोधि प्राप्त नहीं की। वह बुद्धत्व को प्राप्त करने के मार्ग में है। वे मनुष्य की कोटि के ऊपर माने गये हैं परन्तु बुद्ध से नीचे हैं। बोधिसत्वों की संख्या अनेक हैं। बौद्ध मूर्ति कला में पाँच ध्यानी बुद्धों की मूर्तियाँ पायी जाती है जिनसे "बोधिसत्वों की उत्पत्ति" मानी गई

है।[17] प्रायः बोधिसत्व–मूर्ति के मुकुट पर बुद्ध की प्रतिमा बनी हुई मिलती है जिससे बोधिसत्वों की उत्पत्ति का पता चलता है।[18] बोधिसत्व, उनसे सम्बन्धित ध्यानी बुद्ध और उनकी मुद्रा निम्नलिखित है–

	बोधिसत्व का नाम	ध्यानी बुद्ध का नाम	मुद्रा
1.	अवलोकितेश्वर	आभिताभ	ध्यान
2.	सिद्धैकबीर	अक्षोम	भूमिस्पर्श
3.	मंजूश्री	रत्नसंभव	वरद्
4.	मैत्रेय	अमोधासिद्धि	अभय
5.	सम्बर	वैरोचन	धर्मचक्रप्रवर्तन

गुप्तकाल में बहुसंख्यक मात्रा में बोधिसत्वों की मूर्तियों का निर्माण होने लगा था। इन बोधिसत्वों में अवलोकितेश्वर, मैत्रेय और मंजूश्री की ही मूर्तियाँ बनाई गई। ये खड़ी मूर्तियाँ हैं।

अवलोकितेश्वर की मूर्ति –

सारनाथ शैली में लगभग डेढ़ मीटर ऊँची अवलोकितेश्वर की अत्यन्त सुन्दर तथा मनमोहक मूर्ति निर्मित की गई।[19] इस मूर्ति का दाहिना हाथ खंडित है और बायें हाथ में कमल शोभनीय है इसलिए अवलोकितेश्वर को "पद्मपाणि" भी कहा जाता है। इस मूर्ति का ऊपरी भाग वस्त्र विहीन है परन्तु कमर से नीचे वस्त्र से ढका है। कमर के कायबन्ध (करधनी), कानों में मंडलाकार अवतंश (कर्णभूषण) तथा गले में हार शोभनीय है। भुजा में मकराकृति–केयूर एवं रत्नजनित कंकण है। सिर पर रत्नजटित जटा मुकुट शोभनीय है। मुकुट के सामने मध्य भाग में "अभिताभ" ध्यान मुद्रा में स्थित हैं। उल्लेखनीय है कि अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की उपाधि ध्यानी बुद्ध अभिताभ से होती है। इस मूर्ति

में अवलोकितेश्वर एक विकसित कमल पर अत्यन्त शांत मुद्रा में खड़े हैं।

मैत्रेय की मूर्ति –

सारनाथ से मैत्रेय की भी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, जो वरद् मुद्रा में हैं। एक प्रतिमा सारनाथ संग्रहालय में है।[20] मूर्ति के ऊपर का वक्ष भाग वस्त्र विहीन है तथा कमर से नीचे का भाग वस्त्र से ढका है। वस्त्र की गांठ नाभि के नीचे स्पष्ट दिखाई देती है। मूर्ति में आभूषणों का सर्वथा अभाव झलकता है। लम्बे केश के कुछ भाग कंधे तक लटके हुए दिखाए गए हैं। मस्तक पर केशों की एक ग्रन्थि है और इस ग्रन्थि के सम्मुख पर्यक्ङासन मारे अभय मुद्रा में ध्यानी बुद्ध (अमोघ सिद्धि) की मूर्ति बनाई गई है। इस कारण इसकी पहचान सरलता से की जा सकती है। मैत्रेय के बाये हाथ में कमल तथा दाहिना हाथ वरद् मुद्रा में है।

मंजूश्री की मूर्ति –

जिस प्रकार हिन्दू धर्मशास्त्रों में सरस्वती को विद्या और बुद्धि की देवी माना गया है, उसी प्रकार बौद्ध साहित्य में मंजूश्री को बुद्धि का देवता माना गया है। गुप्तकालीन मूर्तिकला में मंजूश्री बुद्धि के प्रतिनिधि के रूप में दर्शाये गये हैं। मंजूश्री कमल पर खड़े दिखाये गये हैं।[21] इनका ऊपरी भाग नंगा तथा अधोभाग में वस्त्र धारण किये हैं। इनके सिर और कंधों पर बालों का समूह है। इनका दाहिना हाथ वरद् मुद्रा में है तथा बायें हाथ में नीलकमल धारण किये हैं। इनके मस्तक पर भूमि स्पर्श मुद्रा में ध्यानी बुद्ध अक्षोभ की आकृति है जो बोधिसत्व मंजूश्री के आध्यात्मिक पिता माने गये हैं। मंजूश्री के इस शरीर पर अनेक सुन्दर आभूषण हैं और मूर्ति के दोनों तरफ कमल पर खड़ी दो देवियों की मूर्ति बनी हैं। दाहिनी ओर भृकुटी तारा बाये हाथ में कमण्डल तथा दाहिने में अक्षमाला[22] लिए खड़ी है। बायी ओर मृत्युवंचन तारा दाहिना हाथ वरद् मुद्रा में लिए और बाये हाथ में उत्पल (नीलकमल) लिए खड़ी है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पद्मपाणि बोधिसत्व के अतिरिक्त विभिन्न स्वरूप में अवलोकितेश्वर की अन्य मूर्तियाँ भी सारनाथ से प्राप्त होती हैं।[23] ऐसी ही एक बोधिसत्व मूर्ति पर्यक्ङासन में बैठी मिली है। यह विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं। बोधिसत्व अपने वक्ष स्थल के सन्मुख एक पत्र दोनों हाथों से धारण किए हुए हैं। इसके दोनों पार्श्व में कन्धे पर पात्र धारण किए स्त्रियाँ खड़ी हैं। सिर पर ध्यान मुद्रा में कमलासन पर विराजमान अभिताभ की मूर्ति है। मैत्रेय की भी प्रतिमाओं का निर्माण कुछ भिन्नता लिए हुए हैं।[24]

मथुरा, सारनाथ के अतिरिक्त पाटलिपुत्र भी मूर्तिकला का एक अन्य केन्द्र था, परन्तु यहाँ पर प्रस्तर मूर्तियों की संख्या बहुत कम है। यहाँ पर धातु निर्मित मूर्तियों की बहुलता है। यहाँ की बनी मूर्तियों पर सारनाथ कला शैली का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

बुद्ध एवं बोधिसत्वों की एकांकी मूर्तन के अतिरिक्त गुप्तकालीन कलाकारों ने उच्चित्र वाली परम्परा में बुद्ध से सम्बन्धित घटनाएं प्रस्तर वृत्तफलक पर प्रस्तुत किये। किन्तु यह विधा इस काल में गौण ही रही। अनेक प्रस्तर खण्डों तथा शिला पट्टिकाओं पर बुद्ध के जीवन की विभिन्न घटनायें उत्कीर्ण की गई। सारनाथ से एक आयताकार शिलाफलक प्राप्त होता है जिस पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चार प्रमुख घटनाओं का दृश्य उत्कीर्ण है।[25] सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित यह फलक लगभग 1.5 मीटर लम्बा है। इसके प्रथम दृश्य में लुम्बिनी में बुद्ध का जन्म, दूसरे दृश्य में बुद्ध की मार विजय, तीसरे दृश्य में धर्म चक्र प्रवर्तन और चौथे दृश्य में बुद्ध का महापरिनिर्वाण दिखाया गया है। कलकत्ता संग्रहालय में भी ऐसा ही फलक है जिनमें चार प्रमुख घटनाओं का दृश्य अंकित है।[26]

सारनाथ से एक अन्य फलक प्राप्त होता है जिसमें बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित चार प्रमुख तथा चार गौण घटनाओं को उत्कीर्ण किया गया है।[27]

यह शिला चार भागों में बँटी हुई है। प्रारम्भ और अंतिम भाग में बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनायें खोदी गई हैं, जो इस प्रकार हैं– बुद्ध का जन्म, बुद्ध की मार विजय, बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन और बुद्ध का महापरिनिर्वाण। मध्य के दो भाग में चार गौण घटनायें उत्कीर्ण हैं जो इस प्रकार है– प्रथम दृश्य में संकाश्य में स्वर्ग से अरोहण, दूसरे में नीलगिरी हाथी का दमन, तीसरे में कौशाम्बी के समीप वन में वानरेन्द्र द्वारा बुद्ध को मधुकलश का श्रद्धा पूर्वक भेंट और चौथे में श्रावस्ती में बुद्ध का चमत्कार। बुद्ध से सम्बन्धित अन्य घटनायें भी पाषाण फलकों पर खुदी मिलती हैं।[28] उदाहरण के लिए एक प्रस्तर शिला फलक पर महामाया का स्वप्न उत्कीर्ण मिलता है।

सारनाथ कला शैली का प्रसार पूर्व में राजगृह, नालन्दा, विहारैल, सुल्तानगंज, तेजपुर आदि स्थानों तक हुआ। इन स्थानों से जो गुप्तकालीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उन पर सारनाथ कला शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस कला शैली का प्रचार क्षेत्र से बाहर कुमार गुप्त प्रथम के शासनकाल के प्रारम्भिक चरण से ही हो गया था और स्कन्द गुप्त के शासनकाल तक इन विभिन्न केन्द्रों पर इस शैली में मूर्तियाँ निर्मित की गई।

बौद्ध मृण्मूर्तियाँ –

गुप्तयुग में बुद्ध और उनके जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण बहुसंख्यक मात्रा में हुआ जो कलात्मक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। राजघाट से मिट्टी की कुछ ऐसी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिसमें बुद्ध को भूमिस्पर्श, अभय तथा धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में दिखाया गया है। ये मूर्तियाँ सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[29] एक अन्य मृणमूर्ति में श्रावस्ती में बुद्ध के विश्वरूप प्रदर्शन की कथा दर्शायी गयी है। इसमें बुद्ध छः तीर्थकरों को शिक्षा दे रहे हैं जिनके दाहिनी ओर एक छत्रधारी मनुष्य की आकृति तथा हाथी को

दिखलाया गया है। इस राजा की पहचान संभवतः प्रसेनजित से की गई है।[30] कसया तथा कौशाम्बी में भी बुद्ध की मूर्ति के मस्तक मिलते है, जो प्रयाग के म्युनीसीपल संग्रहालय में हैं। बुद्ध के इन मस्तकों में केश तथा उष्णीय का प्रदर्शन वस्तुतः पाषाण की बुद्ध प्रतिमाओं के मस्तक के समान प्रतीत होता है। मथुरा से भी एक मूर्ति का सिर प्राप्त हुआ है, जो लखनऊ संग्रहालय में है। इस मूर्ति का सिर पत्थर की मूर्ति के सिर के समान प्रतीत होता है।

गुप्तयुग में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित मृण्णफलक (मिट्टी के फलक) अनेक स्थानों से प्राप्त होते हैं। इन फलकों का उपयोग स्तूपों को सजाने के लिए किया जाता था। उदाहरण के लिए मीरपुरखास (पाकिस्तान) के स्तूप की दीवारों पर इन मृण्णफलकों का उपयोग किया गया। तख्ते वाही, शहरे बहलोल, जमालगढ़ी आदि स्थानों से बौद्ध धर्म के विषयों के दृश्य और मूर्तन प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग अलंकरण के लिए किया जाता था।

गुप्तकाल में बुद्ध की धातु मूर्तियों का भी निर्माण हुआ, जिसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इसी अध्याय में धातु कला के अन्तर्गत किया गया है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तकालीन बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियाँ कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि की है। गुप्तकालीन शिल्पकारों ने बुद्ध तथा बोधिसत्वों की प्रतिमाओं का निर्माण कर अपनी हस्तकला कौशल का प्रमाण दिया है। ये मूर्तियाँ गुप्तकालीन सम्राटों के धार्मिक सहिष्णुता का भी परिचय देती हैं। जैसा कि भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है– "जिस धार्मिक उदार सहिष्णुता के अशोक ने सपने देखे थे, गुप्तों का उदार जीवन उन्हें साकार कर चला। शिव के त्रिशूल पर बसी, शिव के जटा से उतरी गंगा के तीर–तीर काशी बौद्धों के धर्मचक्र प्रवर्तन की भूमि मूलगन्ध कुटी–विहार की दिशा

में मृगदाव (सारनाथ) की ओर अभिमुख हुई।[31]

(ब) जैन मूर्ति कला

जैन धर्म का विकास कब और किस रूप में हुआ, इस सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ कहना कठिन है। अनुश्रुतियों के अनुसार जैनधर्म में एक के बाद एक 24 तीर्थकर हुए, जिन्होंने समय–समय पर जैनधर्म का प्रवर्तन किया। ये तीर्थकर इस प्रकार है– 1. ऋषभ देव या आदिनाथ 2. अजितनाथ 3. सम्भवनाथ 4. अभिनन्दन नाथ 5. सुमितनाथ 6. पद्मनाथ 7. सुपार्श्रनाथ 8. चन्द्रप्रभ 9. सुविधि नाथ 10. शीतलनाथ 11. श्रेयांसनाथ 12. वासुपूज्य 13. विमलनाथ 14. अनन्तनाथ 15. धर्मनाथ 16. शान्ति नाथ 17. कुन्थुनाथ 18. अरनाथ 19. मल्लिनाथ 20. मुनिसुव्रत 21. नमिनाथ 22. नेमिनाथ 23. पार्श्वनाथ 24. महावीर

इन तीर्थकरों में ऋषभदेव का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। पार्श्वनाथ तथा महावीर को छोड़कर अन्य के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं है। तेइसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सिद्ध हो चुकी है, जो काशी के राजा अश्वसेन के पुत्र थे और उन्होंने भिक्षुओं के लिए केवल चार व्रतों– सत्य, अहिंसा, अस्तेय तथा अपरिग्रह– का विधान किया था। चौबीसवें तीर्थकर महावीर बुद्ध के समकालीन माने जाते हैं। उन्होंने भिक्षुओं के लिए पांच व्रतों का विधान किया जो इस प्रकार है– सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य।

जैन धर्म में तीर्थकरों की महत्ता है। उनकी मूर्ति बनाकर उन्हें पूजा जाता है। किन्तु इनके मूर्तियों का निर्माण कब से आरम्भ हुआ, निश्चय पूर्वक इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। पाटलिपुत्र (लोहानीपुर) से एक सिरविहीन मौर्यकालीन पुरुष मूर्ति प्राप्त हुई है। यह मूर्ति नग्न अवस्था में है। इसके जानुओं

के अगल–बगल कुछ ऐसे चिन्ह हैं जिनसे मूर्तियों के आजानुवाहु होने का अनुमान किया जा सकता है, लोग जिन (तीर्थकर) की मूर्ति अनुमान करते हैं। यदि यह अनुमान ठीक है तो उसे तीर्थकर की प्राचीनतम् मूर्ति कहा जा सकता है। किन्तु इस एकाकी मूर्ति के अतिरिक्त कुषाणकाल से पूर्व की तीर्थकरों की और कोई मूर्ति अब तक प्राप्त नहीं हुई है।[32]

कुषाणकाल में जैन तीर्थकरों की मूर्तियों का निर्माण बड़े पैमान पर हुआ। मथुरा जैनियों का प्राचीन एवं महत्वपूर्ण केन्द्र था। यहाँ जैन मूर्तियों में तीर्थकरों की मूर्तियाँ, आयागपट्ट जिन प्रतिमा, जिनो के जीवन से सम्बन्धित दृश्य व कुछ अन्य मूर्तियाँ हैं।

मथुरा के कंकाली टीले के स्तूप से बहुसंख्यक मात्रा में स्वतंत्र जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं जो पाषाण निर्मित है। ये मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर एवं कलापूर्ण है। ये मूर्तियाँ दो प्रकार की है– खड़ी मूर्तियाँ जो कायोत्सर्ग मुद्रा में है तथा बैठी मूर्तियाँ जो पद्मासन में है। तीर्थकर प्रतिमाओं के नीचे वक्ष स्थल पर ''श्रीवत्स'' का पवित्र मांगलिक चिन्ह अंकित है। इसी चौकी पर लेख भी उत्कीर्ण हैं, जिससे उनकी पहचान की जा सकती है। गुप्तोत्तर काल में प्रत्येक तीर्थकर के लिए एक–एक लांछन की कल्पना की गयी जिससे उनकी मूर्तियों को अलग–अलग तीर्थकरों के रूप में पहचाना जा सकता है। मथुरा शैली में निर्मित जैन मूर्तियों में ऋषभनाथ, संभवनाथ, मुनि सुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की मूर्तियाँ पहचानी जा सकी हैं।

गुप्तकाल में भी जैन तीर्थकरों की मूर्तियों का निर्माण हुआ। परन्तु इस काल में जैन मूर्तियाँ बौद्ध तथा हिन्दू मूर्तियों की अपेक्षा कम प्राप्त होती हैं। उत्तर भारत में मथुरा, देवरिया जिले में कहांव, सौराष्ट्र में वलभी, मध्य प्रदेश में विदिशा और बांग्लादेश में पुष्ड्रवर्धन जैनधर्म के प्रमुख केन्द्र थे। गुप्त युग की 37

तीर्थकर प्रतिमाओं का परिचय मथुरा संग्रहालय की सूची में कराया गया है। इस युग में जिन तीर्थकर प्रतिमाओं का निर्माण हुआ था उनमें वही विशेषता पाई जाती है जिनका विकास कुषाणकाल में हो चुका था परन्तु उनके परिकारों में इस समय कुछ विशिष्टता दिखलाई देती है। धर्मचक्र और उनके उपासकों का चित्रण पूर्ववत् होते हुए भी कहीं–कहीं तीर्थकर प्रतिमाओं के बगल में मृग को प्रदर्शित किया गया है। बौद्ध प्रतिमाओं में इस प्रकार मृगों का चित्रण बुद्ध भगवान के सारनाथ (मृगदाव) में प्रथम बार धर्मोपदेश का प्रतीक माना गया है। गुप्तकालीन मथुरा शैली में जैनकला अष्टग्रहों, मालाधारी गन्धर्वों तथा नेमिनाथ के साथ वासुदेव बलराम आदि की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।

इस काल की जैन तीर्थकर की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इस प्रतिमा के सिंहासन पर एक तरफ अपने कोष सहित धनपति कुबेर और दूसरी ओर एक बालक को अपनी जांघ पर बैठाये मातृदेवी (अम्बिका) की आकृति उत्कीर्ण है। ऊपर चार कमल पर बैठी प्रतिमाएं दिखाई गई हैं, जो सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि और राहु इन आठ ग्रहों का प्रतीक मानी गई हैं। इस अलंकरण के आधार पर इस प्रतिमा को गुप्तयुग के मध्य युग के बीच का स्वीकार किया जाता है क्योंकि यह शैली उस काल में अधिक विकसित हुई थी।

नवग्रह तथा अष्टप्रतिहार युक्त एवं जिन प्रतिमा मध्य प्रदेश के जबलपुर के निकट स्लीमनाबाद के जंगल में मुनिकान्ति सागर जी को प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा में अजानबाहु के हाथों का मुड़ाव स्वाभाविक है, नसिका और आँखें क्षतिग्रस्त अवस्था में हैं। मस्तक पर घुघरालें बाल है, प्रतिमा के दोनों हाथों के पास दो पार्श्वद उत्कीर्ण हैं। इन पार्श्वदों के ठीक अग्र भाग में दायें और बायें क्रमशः यक्ष और यक्षिणी हैं। आसन के बीच सिंह का चिन्ह है तथा ऊपर तीन छत्र

हैं। इन प्रतिमाओं को मुनिकान्त सागर ने दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित माना है।

मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित एक अन्य प्रतिमा का उल्लेख डॉ0 जैन ने किया है। इसमें सिंहासन पर पार्श्वस्थ सिंहों के बीच मीन युगल दिखाया गया है, जिनके मुख खुले हैं और सूत्र लटक रहा है। आगे चलकर 18वें तीर्थकर अरनाथ का चिन्ह मीन बताया गया। यह प्रतिमा संभवतः अरनाथ की ही है।

गुप्तकाल से कुछ पहले जैन तीर्थकर पार्श्वनाथ के पाषाण की एक विशाल प्रतिमा पाटलिपुत्र से प्राप्त हुई है।[33] बिहार के आटा के समीप चौसा नामक स्थान से तीर्थकर आदिनाथ की एक धातु प्रतिमा प्राप्त हुई है और पटना राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है। डॉ0 वी0पी0 सिंह ने इस प्रतिमा को बिहार से प्राप्त पालकालीन प्रतिमाओं की कोटि में रखा है। किन्तु अंगों की संरचना, केश विन्यास तथा प्रभा मण्डल की शोभा के आधार पर यह गुप्तकालीन प्रतीत होती है। इसी प्रकार अन्य तीर्थकरों की भी कांस्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो पटना संग्रहालय में हैं। इनसे यह स्पष्ट है कि बिहार में जैन धर्म प्रचलित था।

गुप्त शासक स्कन्द गुप्त का उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले से कहाव (कहौम) का लेख प्राप्त होता है। यह लेख लाल बालूदार पाषाण के स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में भद्र नामक एक जैन धर्मानुयायी का उल्लेख है। उसके प्रपितामह का नाम सोमिल, पितामह का नाम भट्टिसोम तथा पिता का नाम रुद्रसोम था। इस स्तम्भ को भद्र ने गुप्त संवत् 141 (460 AD) में स्थापित किया था। इस स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि भद्र ने पांच जैन तीर्थकर– आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर– की प्रतिमाएँ स्थापित की थी।[34] इसी स्तम्भ के समीप जैन तीर्थकर की एक खड़ी मूर्ति भी प्राप्त होती है जो कहाव ग्राम में ही एक कुटी में प्रतिष्ठित कर दी गई थी। यह स्तम्भ और प्रतिमा यह

प्रमाणित करती है कि गुप्तकाल में कहाव में एक महत्वपूर्ण जैन मंदिर रहा होगा। अभिलेख में यह भी कहा गया है कि भद्र ब्राह्मणों, गुरुओं और ऋषियों के प्रति विशेष निष्ठा रखता था।[35] यह जैन मतावलम्बियों द्वारा ब्राह्मण धर्म के प्रति सहिष्णुता का प्रमाण है।

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल की एक तीर्थकर की प्रतिमा मथुरा से प्राप्त होती है। इसे गृह मित्र पालित की पत्नी भद्रिभव की पुत्री समाहया ने गुप्त संवत् 113 (432 AD) में स्थापित किया था। कुमार गुप्त प्रथम के ही शासन काल में विदिशा के निकट उदयगिरी में गुप्त संवत् 106 (425 AD) का एक जैन अभिलेख प्राप्त होता है। इसमें शंकर नामक व्यक्ति द्वारा इस स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित किये जाने का विवरण सुरक्षित है।[36] मध्य प्रदेश के विदिशा से रामगुप्त के शासनकाल की तीन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं।[37] ये प्रतिमायें विदिशा संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इन प्रतिमाओं पर जो अभिलेख अंकित हैं, वह विदिशा में जैन धर्म का द्योतक है। बुध गुप्त के शासनकाल को एक ताम्र पत्र अभिलेख बंग्लादेश के राजशाही जिले के पहाड़पुर नामक स्थान पर उत्खनन करते समय काशी नारायण दीक्षित को महाविहार के आगन में मिला था। इस अभिलेख में कहा गया है कि जैनाचार्य गुरुनन्दि ने बट गोहली में जैन विहार स्थापित किया था। विहार में अतिथिशाला के निर्माण तथा अर्हत की पूजा के लिए ब्राह्मणनाथ शर्मा और उसकी पत्नी ने भूमि दान में दे दी थी।

उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में देवगढ़ नामक स्थान से दशावतार मंदिर के अतिरिक्त जैन मंदिर भी प्राप्त होते हैं। इसमें जैन मूर्ति कला के दर्शन होते हैं। ये मूर्तियाँ कलात्मक दृष्टि से आकर्षक एवं सुन्दर हैं। इसी प्रकार राजगृह के पर्वत पर ध्वस्त जैन मंदिरों के अवशेष मिलते हैं, जहाँ से अनेक जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ से एक फलयुक्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्राप्त होती है। इस

प्रतिमा का सिंहासन एवं मुख निर्माण गुप्तकाल के अनुरूप दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में जैन मूर्तियों का भी निर्माण हुआ जो कलात्मक दृष्टि से उल्लेखनीय है। गुप्त शासकों की धार्मिक सहिष्णुता ने इन मूर्तियों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया। यद्यपि बौद्ध तथा हिन्दू मूर्तियों की तुलना में इनकी संख्या कम है फिर भी ये कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि की हैं।

(स) हिन्दू मूर्ति कला

हिन्दू मूर्तिकला का आशय ऐसी मूर्तियों से हैं जिसमें हिन्दू धर्म से सम्बन्धित देवी–देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ। इसे "ब्राह्मण मूर्तिकला" भी कहा जा सकता है। ब्राह्मण धर्म के देवी–देवताओं की मूर्तियाँ संभवतः मौर्यकाल के पश्चात् बनी। साहित्यिक तथ्य विदेशी साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि हिन्दू देवी–देवताओं के मूर्तन की परम्परा प्रचलित रही होगी। उदाहरण के लिए महर्षि पाणिनि ने भगवान कृष्ण की पूजा का उल्लेख किया है। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज शूरसेन (मथुरा) के लोगों को हेराक्लीज का उपासक बताता है। यहाँ हेराक्लीज का तात्पर्य वासुदेव कृष्ण से हैं। इसी प्रकार सिकन्दर के समकालीन यूनानी लेखकों से ज्ञात होता है कि पोरस की सेना अपने समक्ष हेराक्लीज की मूर्ति रखकर युद्ध करती थी। महाभारत में भी नारायण (विष्णु) के पूजन का वर्णन है। इस प्रकार इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि मौर्यकाल के पहले भी भारत में हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियों के निर्माण का प्रचलन था।

मौर्योत्तर काल में हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनने लगी थी और कुषाण काल में उनका विकास हुआ। उल्लेखनीय है कि कुषाणकाल में मथुरा धार्मिक सहिष्णुता का अद्वितीय केन्द्र था, जहाँ बौद्ध, जैन मूर्तियों के अतिरिक्त हिन्दू धर्म के भी देवी–देवताओं यथा ब्रह्म, शिव लिंग, विग्रह एवं पुरुष

विग्रह, अर्द्धनारीश्वर विग्रह तथा शिव–पार्वती विग्रह, कार्तिकेय, गणपति, विष्णु, सूर्य, इन्द्र, कामदेव, बलराम, सरस्वती, दुर्गा महिष मर्दिनी, कुबेर एवं हारीति आदि मूर्तियों का निर्माण हुआ।

गुप्तकाल तक आते–आते हिन्दू देवी–देवताओं के मूर्तन की एक स्थायी और निश्चित कल्पना बन गई। प्रत्येक देवी–देवता के लिए उनके वाहन की कल्पना कुषाण काल में ही हो गई थी परन्तु गुप्तकाल में उनके आयुधों की भी कल्पना का विकास हुआ तथा इसे साकार रूप दिया गया। गुप्तकाल में पहली बार देवी–देवताओं के मूर्तन के विधान की व्यवस्थित रूपरेखा लिपिबद्ध की गई। वृहत्संहिता तथा विष्णुधर्मेत्तर पुराण में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। इन ग्रन्थों में देवताओं के स्वरूप, उनके आयुध तथा वाहन का विशद् उल्लेख मिलता है। देवी–देवताओं के अतिरिक्त आयुध तथा वाहनों की मानव रूपी कल्पना की गई और उनका मूर्तन प्रभूत होने लगा।

यहाँ यह भी उल्लेख कर देना प्रासंगिक होगा कि अधिकांश गुप्त नरेश विष्णु के उपासक थे। उनकी प्रिय उपाधि "परम भागवत्" थी। इसलिए यह सहज स्वाभाविक था कि विष्णु और उनके विभिन्न अवतारों की मूर्तियों का निर्माण अधिक संख्या में हो। किन्तु इसके साथ–साथ शिव, सूर्य, कार्तिकेय, लक्ष्मी, गणेश आदि मूर्तियों का भी निर्माण किया गया। इन मूर्तियों का विवेचन निम्नलिखित है–

ब्रह्मा –

ब्रह्मा को चतुर्भुज माना गया है। ब्रह्मा का चतुर्भुज वर्णन कला में रूपायन के अनुकूल ही हुआ है।[38] ब्रह्मा का अंकन प्रायः दाढ़ी, जटाजूट युक्त, चतुर्भुज (सम्मुखाभिमुख अंकन में केवल तीन ही मुख अंकित मिलते हैं, चौथा मुख पीछे अदृश्य समझा जाता है) और तुन्दिल के रूप में किया गया है। उनका एक

हाथ अभय मुद्रा में दर्शाया गया है तथा अन्य हाथों में अस्त्र लिए बतलाए गए हैं। गुप्तकाल में ब्रह्मा की मूर्ति बहुत सीमित मात्रा में देखने को मिलती है।

विष्णु –

गुप्त वंश के अधिकांश शासक विष्णु के उपासक थे। इसलिए इस काल में विष्णु की अनेक सुन्दर मूर्तियाँ अधिक मात्रा में बनाई गई। विष्णु की मूर्तियों का निर्माण कुषाण काल से ही आरम्भ हो गया था। गुप्तकाल तक आते–आते इनकी संख्या में वृद्धि हुई।

विष्णु को चतुर्भुज माना गया है। उनके चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म है। उनके मस्तक पर मुकुट है। वे अधोवस्त्र तथा उत्तरीय धारण किये हुए खड़े दिखाए गए हैं। उनका यही रूप इस काल में अधिक लोकप्रिय हुआ। चतुर्भुज मूर्तियों के अतिरिक्त द्विभुज तथा अष्टभुज रूप में भी विष्णु को मूर्तित किया गया। गदा और चक्रधारी दो भुजाओं वाले रूप को महाभारत में नारायण कहा गया है। इस प्रकार की प्रतिमा का अंकन राजस्थान के नाद से प्राप्त एक शिवलिंग के निचले भाग पर हुआ है। इसी प्रकार राजस्थान के भरतपुर के समीप रूपवास नामक स्थान से विष्णु को दो भुजाओं वाली मूर्ति प्राप्त होती है। इसके एक हाथ में गदा दिखलायी गयी है। एक अन्य द्विभुजी मूर्ति विदिशा से प्राप्त होती है। वर्तमान में यह ग्वालियर संग्रहालय में है। इस मूर्ति का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में ऊपर की ओर उठा है और बायां हाथ कटिविनयस्थ है। इस मूर्ति के पीछे प्रभामण्डल है। आयुध के अभाव में इस मूर्ति को पहचानना थोड़ा कठिन है। विद्वानों ने इसके पीछे जो प्रभामण्डल है उसे देखकर इस मूर्ति को सूर्य की मूर्ति बतलाया है। परन्तु इस मूर्ति में जो विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, वह गुप्तकालीन सूर्य की मूर्ति में नहीं है। यदि इस प्रभा मण्डल की तुलना एरण के शीर्ष स्तम्भ पर अंकित गरुड़ के प्रभा मण्डल से की जाए तो इन दोनों में काफी

बातों में समानता दृष्टिगोचर होती है। इस कारण इस मूर्ति को विष्णु की ही मूर्ति मानना अधिक तर्कसंगत लगता है।

विष्णुधर्मेत्तर पुराण, वृहत्संहिता, हरिवंश और ब्रह्म पुराण में विष्णु के अष्टभुजी स्वरूप का उल्लेख मिलता है। इस स्वरूप की कुछ खंडित मूर्तियाँ मथुरा से प्राप्त होती हैं।

विष्णु का एक स्वरूप शेषशायी रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार का गुप्तकालीन मूर्तन उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में स्थित बेतवा नदी के तट पर देवगढ़ के दशावतार मंदिर[39] में हुआ है। इस मंदिर में अंकित 'शेषशायी विष्णु' मूर्तिकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस वैष्णव मंदिर की तीनों दीवारों के मध्य एक चौकोर फलक में तीन पौराणिक आख्यान उत्कीर्ण हैं। इस मंदिर के दक्षिणी दिशा के फलक में 'विष्णु प्रतिमा' आदि शेष पर शयन करते हुए दिखाई गई है। इस दृश्य में विष्णु अपनी बायी भुजा का तकिया लगाकर 'अनन्तनाग' की कुण्डलियों अर्थात् शेषनाग के शरीर पर सोते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। शेषनाग के 13 फन दो पंक्तियों में बने हैं। शेषनाग ने अपने फन को विष्णु के ऊपर 'छत्र' के सदृश तान रखा है। ऊपर का अर्द्धभाग फन के साथ उठा है। विष्णु के सिर पर किरीट, मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार, केयूर, बनमाला एवं हाथ में कंकण शोभनीय है। चरण के समीप विष्णु की अर्द्धांगिनी लक्ष्मी प्रदर्शित है जो उनका पाद सेवन (पैर दबाती हुई) करती हुई बैठी हैं। उनके पार्श्व में दो आयुध पुरुष खड़े हैं। शेषशायी विष्णु की इस प्रतिमा के ऊपरी भाग में शिव, इन्द्र आदि देवताओं की मूर्तियाँ बनी हैं। नाभि से निकले कमल पर ''तीन मस्तक वाले ब्रह्म'' बायें हाथ में कमण्डल धारण किये हैं। दाहिनी ओर ऐरावत पर इन्द्र तथा मयूरवाही कार्तिकेय अंकित हैं। बायीं ओर नन्दी पर शिवपार्वती दिखाये गये हैं। यह प्रतिमा कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है। शेषशायी विष्णु की ऐसी

ही मूर्ति मध्य प्रदेश के विदिशा के समीप उदयगिरी गुहा में उत्कीर्ण हैं। इस प्रतिमा में विष्णु को विभिन्न आभूषणों से सजाया गया है। देवताओं की भी आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं परन्तु इस मूर्ति में लक्ष्मी तथा ब्रह्म का अंकन नहीं मिलता।[40]

पुराणों में विष्णु के दस अवतारों का विवरण प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है– मत्स्य, कूर्म या कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कलि। गुप्त युग में विष्णु के विभिन्न अवतारों की भी मूर्तियाँ बनने लगी थी। वराह, नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण आदि की मूर्तियों का इस संदर्भ में उदाहरण दिया जा सकता है। पुराणों से ज्ञात होता है कि विष्णु ने पृथ्वी की रक्षा के लिए वराह अवतार लिया था। गुप्त युग में वराह की प्रतिमा दो रूपों में बनाई गई। प्रथम मानव शरीर के साथ वराह का मुख बनाकर उसके दाँतों पर पृथ्वी को टिकाया गया है। इस प्रकार की मूर्ति को 'भूवराह' या 'आदि वराह' कहा गया है। दूसरे वराह को पशु रूप में बतलाया गया है और उसके दाँत पर पृथ्वी को रखा गया है। वराह अवतार के प्रथम स्वरूप का अंकन उदयगिरी गुहा में हुआ है। मालवा की मूर्ति का श्रेष्ठ विकास इस मूर्ति में दृष्टिगोचर होता है। इस मूर्ति (द्रष्टव्य : चित्र सं0 12/परि0 12) में मानव शरीर पर वराह का मुख दिखाया गया है और वराह अपने दाँतों पर प्रलयकाल में जलमग्न होती पृथ्वी का उद्धार करते हुए अंकित है। पृथ्वी को नारी रूप में दिखाया गया है। वराह के दो हाथ हैं, जिसमें से दाहिना हाथ कटि पर तथा बायां हाथ घुटनों पर अवलम्बित है। उनका दाहिना पैर आगे बढ़ा है और बाया पद शेषनाग के शरीर पर है जिसमें तेरह फन दो पंक्तियों में बने हैं। वराह अपने दाँत से भूदेवी को कंधे के ऊपर उठाये हुए हैं। इस विशालकाय प्रतिमा में वराह को विरोचित मुद्रा में दिखाया गया है। उनका मांसल शक्ति सम्पन्न शरीर, घुटनों तक लटकती "बनमाला" गले में चौड़ा

ग्रैवेयक एवं वक्ष का श्रीवत्स लाछंन दर्शनीय है। संभवतः विष्णुधर्मेत्तर पुराण में वर्णित वराह मूर्ति के सदृश भाव इसमें दर्शाये गये हैं। महावराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार किये जाने पर अनन्त नाग को उनके सन्मुख हाथ जोड़े हुए दिखाया गया है। इस विशाल मूर्ति के पीछे दीवाल पर समुद्र की लहरों का अंकन है। वराह के बायीं ओर अप्सरायें तथा दाहिनी ओर शिव ब्रह्म आदि दिखाये गये हैं। स्वर्ग के ऊपरी भाग में उड़ते हुए देव तथा पांच अप्सरायें उत्कीर्ण हैं। मध्य में अप्सरा नृत्य कर रही है। शेष मृदंग वंशी आदि बजा रही हैं। गुफा की बायी दीवार पर मकरवाहिनी गंगा तथा कूर्म वाहिनी यमुना नारी के रूप में प्रस्तुत की गई है जो वराह भगवान का अभिषेक करने के लिए जल–कलश लिए खड़ी है। वराह अवतार का यह समस्त दृश्य त्रिभुवन के एक विराट पावन पर्व का द्योतक है और इसे गुफा की भित्ति पर सीमित परिधि में सफलता पूर्वक उत्कीर्ण किया गया है। सम्पूर्ण दृश्य में लोक कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है। प्रख्यात कलाविद् वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस वराह मूर्ति की व्याख्या समकालीन राजनीतिक संदर्भ में की है। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जब पश्चिमी भारत के शकों का उन्मूलन करने के बाद उदयगिरी गया था, तब उसके सन्धि विग्रहिक सचिव वीरसेन शाव ने वहाँ तिथियुक्त (401–02 AD) अभिलेख उत्कीर्ण करवाकर वराह अवतार का गुहा भित्ति पर अर्द्धचित्रण भी करवा दिया था। इस प्रकार इस मूर्ति का निर्माण काल चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में माना जाता है। मालवा क्षेत्र में वराह अवतार तथा उनका पूजन लोकप्रिय था। के0डी0 बाजपेयी ने लिखा है– "कला के क्षेत्र में उदयगिरी की वराह प्रतिमा अपने शिल्प सौन्दर्य के कारण सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।"[41] वास्तव में महावराह प्रतिमा भारत ही नहीं अपितु विश्व की सुन्दरतम् प्रतिमाओं में स्थान रखती है। इस मूर्ति में गुप्तकालीन वैभव, शक्ति एवं सौन्दर्य का सुन्दर समावेश है। प्रसिद्ध इतिहासकार ए0एल0 बाशम के शब्दों

में– "वह गम्भीर भावना जिसने इस आकृति के निर्माण की प्रेरणा दी इसे संसार की कला में संभवतः एक मात्र पशुवत मूर्ति का स्थान प्रदान करती है, जो आधुनिक काल के मनुष्य को एक सच्चा धार्मिक संदेश देती है।[42]

वराह अवतार के दूसरे स्वरूप का अंकन पशु वराह के रूप में हुआ है। इस प्रकार की गुप्तकालीन मूर्ति ऐरण से प्राप्त होती है। इस मूर्ति में वराह के मुख के दाँत पर पृथ्वी रखी गई है। इस पर हूण शासक तोरमाण के आरम्भिक वर्ष का लेख अंकित है। इसी प्रकार एक अन्य सुन्दर मूर्ति विहार के गया जिले से अपसढ़ नामक स्थान से प्राप्त होती है। वराह के साथ–साथ वराही की भी मूर्तियाँ ऐरण से प्राप्त हुई हैं।

गुप्तयुग में मथुरा से विष्णु की कुछ अन्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो त्रिमुख हैं। मध्य का मुख मानव मुख है और उसके एक ओर वराह तथा दूसरी ओर सिंह का मुख। इस मूर्ति को "नरसिंह–वराह–विष्णु" की प्रतिमा कहा गया है। पुराणों में इसका उल्लेख महाविष्णु अथवा विश्वरूप विष्णु के नाम से हुआ है। इस मूर्ति के प्रभा मण्डल में देवगणों की पंक्तियाँ एवं बाहरी किनारा रूद्रमुखों से सजाया गया है।[43] मथुरा से एक ऐसी भी मूर्ति प्राप्त होती है, जिसमें आयुधधारी विष्णु के कंधे एवं सिर के पीछे से आकृतियाँ उद्भूत होती अंकित है। इन आकृतियों की पहचान संकर्षण, अनिरूद्ध और प्रद्युम्न के रूप में की गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विष्णु के चतुर्व्यूह का प्रतीक रूप है।[44]

गुप्तयुग में विष्णु के वाहन गरुड़ की भी मूर्ति मानुषी रूप में बनाई गई। ऐरण के स्तम्भ शीर्ष पर गरूड़ का अंकन मानवी रूप में हुआ है। इसमें गरुड़ खड़े दिखाये गये हैं तथा अपने दोनों हाथों से सर्प पकड़े होते हैं। उनके मस्तिष्क के पीछे चक्राकार प्रभामण्डल दिखाया गया है।

कृष्ण –

विष्णु का एक अवतार कृष्ण भी है। गुप्तयुग में कृष्ण की भी मूर्तियों का अंकन हुआ। बंग्लादेश के राजशाही जिले के पहाड़पुर नामक स्थान से मंदिर की दीवारों पर प्रस्तर की अनेक मूर्तियाँ पायी गयी हैं, जिसमें कृष्ण के जीवन की घटनायें जैसे कृष्ण जन्म, कृष्ण को गोकुल ले जाना, गोवर्धन धारण आदि दिखाया गया है। इस मंदिर में राधाकृष्ण की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। इन सुन्दर मूर्तियों के वेश, अलंकरण एवं मुद्रा आदि का आकर्षक शिल्पांकन किया गया है। गुप्त युग में कृष्ण का अंकन प्रायः गोवर्धनधारी रूप में ही हुआ है।[45] गोवर्धनधारी कृष्ण की एक प्रतिमा वाराणसी के भारत कला भवन में सुरक्षित है।

शिव –

गुप्तयुग में वैष्णव धर्म के साथ–साथ शैव धर्म का भी बोलबाला रहा तथा शिव की उपासना में मंदिर तथा मूर्तियाँ स्थापित की गई। इस काल में लिंग पर शिव के मुख के निर्माण की परम्परा विशेष लोकप्रिय हो गयी थी, जिसे "मुख लिंग" का नाम दिया गया। इस युग में शिव लिंग एकमुखी, द्विमुखी, चतुर्मुखी और अष्टमुखी थे। परन्तु एकमुखी लिंग की ही प्रतिमा बहुतायत मात्रा में प्राप्त होती है। इसमें लिंग पर शिव का मस्तक एवं मुख उत्कीर्ण किया जाता था। ऐसे एकमुखी लिंग खोह, भूमरा आदि स्थानों से प्राप्त होते हैं। मध्य प्रदेश के विन्ध्य क्षेत्र में नागोद के समीप खोह से शिव की एकमुख लिंग मूर्ति (द्रष्टव्यः चित्र सं0 13/परि0 13) प्राप्त हुई है। इसमें शिव का गोलाकार मुख तथा जटाजूट विशेष रूप से दर्शनीय है। उनके ध्यानावस्थित नेत्र खुले हैं तथा होठों पर मुस्कराहट है। इसमें शिव के मस्तक पर रत्नजटित मुकुट और बालों की ग्रन्थि के ऊपर अर्द्धचन्द्र है। ललाट पर तृतीय नेत्र स्पष्ट दर्शाया गया है। इसमें गले में हार तथा कानों में कुण्डल के अतिरिक्त अन्य कोई आभूषण दृष्टिगोचर

नहीं होता। इस मूर्ति में शिव की प्रकाण्ड शांति तथा विपुल ऐश्वर्य का सामंजस्य है। एकमुखी शिवलिंग का एक अन्य उदाहरण भूमरा के शिव मंदिर का लिंग है। यह लगभग 2 मीटर ऊँचा है और लिंग का ऊपरी भाग दण्डाकार है। मथुरा से गुप्तकालीन एकमुखी शिव लिंग अधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

द्विमुखी लिंग सीमित मात्रा में प्राप्त होते हैं। द्विमुखी शिवलिंग की एक प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में है। चार मुख वाले शिवलिंग के भी साक्ष्य प्राप्त होते हैं। उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के करमदण्डा नामक स्थान से प्राप्त शिवलिंग की प्रतिमा चतुर्मुखी है। इसकी स्थापना कुमारगुप्त प्रथम के मंत्री पृथ्वीसेन ने की थी। इसका निचला भाग अष्टकोणीय है, परन्तु ऊपरी भाग गोलाकार बना हुआ है। निचले भाग में लेख "भगवतो महादेवस्य पृथिवी श्वस्य इत्येव समाख्या" उत्कीर्ण है।[46] यह शिवलिंग वर्तमान में लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। पंचमुखी शिवलिंग अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। संभवतः इन मुखों से तात्पर्य सघोजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान से है (इन पंचमुखी शिवलिंगों में से अधिकांश में चारों दिशाओं के चार मुख ही देखे जाते हैं)।[47] अष्टभुजी शिवलिंग की एक विशाल प्रतिमा मंदसौर से प्राप्त हुई है। इसमें शिव के चार मुख मध्य भाग लिंग के मध्य भाग में तथा चार उसमें नीचे निम्न भाग में हैं।

गुप्तकाल में शिव की मूर्तियों का निर्माण मानव रूप में भी हुआ। अनेक मूर्तियों के शिव मस्तक प्राप्त हुए हैं। मंदसौर से गणों के साथ खड़ी शिव की एक विशाल मूर्ति प्राप्त होती है जो वर्तमान में मंदसौर के दुर्ग में सुरक्षित है। इसी प्रकार सारनाथ संग्रहालय में एक शिव शीर्ष उपलब्ध है जिसमें ललाट पर तृतीय नेत्र; लम्बे कान सुचारू रूप से संवारा हुआ जटाजूट विद्यमान है। आभूषण विहीन होने पर भी यह मूर्ति अत्यन्त आकर्षक है। शिव का मानव रूपी एक अन्य

अंकन भी प्राप्त होता है जिसे ''लकुलीश'' कहा गया है। उल्लेखनीय है कि लकुलीश को ''पाशुपत सम्प्रदाय'' का प्रवर्तक माना जाता है। यह सम्प्रदाय शैवों का सबसे प्राचीन सम्प्रदाय है। इस काल में लकुलीश की मूर्ति मथुरा के एक स्तम्भ पर प्राप्त होती है। इस पर चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल के पाँचवें वर्ष का लेख उत्कीर्ण है।

गुप्तकाल में 'हरिहर' की कल्पना की गई और इस प्रकार की मूर्ति का निर्माण किया गया। ऐसी मूर्तियों में आधा भाग विष्णु (हरि) तथा आधा भाग शिव (हर) का होता था। यद्यपि दोनों की आकृति पुरुष की है परन्तु उनके जटाजूट, मुकुट और आयुधों से उनके बीच स्पष्ट भेद किया जा सकता है। उदाहरण के लिए शिव के मस्तक पर जटाजूट है परन्तु विष्णु के मस्तक पर मुकुट दिखाया गया है। मथुरा से प्राप्त हरिहर की एक गुप्तकालीन मूर्ति 'दिल्ली संग्रहालय' में सुरक्षित है। इसमें शिव के हाथ में त्रिशूल तथा विष्णु के हाथ में चक्र है।

गुप्तकाल में शिव तथा पार्वती की मूर्ति एक साथ बनाने की परम्परा आरम्भ हो गई थी, परन्तु ऐसी दम्पत्ति मूर्ति बहुत कम प्रकाश में आई है।

गुप्तकालीन शिल्पियों ने अर्द्धनारीश्वर शिव की प्रतिमा का निर्माण किया। इसमें शिव देवता को आधा नारी तथा आधा पुरुष बतलाया गया है। पुरुष और नारी के शरीर को संयुक्त करके जो मूर्ति का निर्माण किया गया वह कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह शिल्पियों की कला चतुराई ही नहीं वरन् उनके दार्शनिकता का भी परिचायक है। अर्द्धनारीश्वर की दो सुन्दर मूर्तियाँ मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इन मूर्तियों में दाहिना भाग शिव का है तथा हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा है। मूर्ति का बाया भाग पार्वती का है और उनके हाथ में दर्पण है। शिव के पुरुष भाग में मस्तक पर जटाजूट है और पार्वती के नारी अंग में स्तन

है। चतुर्भुज अर्द्धनारीश्वर की एक अन्य गुप्तकालीन प्रतिमा सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है।

पार्वती –

गुप्तकाल में पार्वती की स्वतंत्र मूर्तियों का निर्माण देखने को मिलता है। परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। पटना संग्रहालय में पार्वती की एक मूर्ति देखने को मिलती है जिसमें वे तपस्यारत रूप में अंकित की गई है।

कार्तिकेय –

गुप्तयुग में कार्तिकेय का अंकन खड़े एवं बैठे दोनों रूप में मिलता है। उन्हें देवताओं का सेनापति माना गया है तथा वे शिव के पुत्र बताये गये हैं। इनका वाहन मयूर (मोर) माना जाता है। इनका एक अन्य नाम महासेन भी मिलता है। दो गुप्त सम्राटों– कुमारगुप्त तथा स्कंदगुप्त– का नाम कार्तिकेय के नाम से ही प्रारम्भ होता है। उल्लेखनीय है कि कुमारगुप्त प्रथम ने कार्तिकेय प्रकार की मुद्रा चलवायी थी। यह मुद्रा उसे विशेष रूप से लोकप्रिय थी। वाराणसी के भारत कला भवन में कार्तिकेय की एक मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है जो मोर पर बैठी दर्शायी गयी है। इसमें दोनों पैर मोर (कार्तिकेय का वाहन) के गले के आगे दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें सिर पर मुकुट, कंकण, कानों में कुण्डल, गले में हार तथा केयूर आदि आभूषण प्रदर्शित हैं। प्रतिमा के मुख मण्डल पर गांभीर्य और पौरुष भाव दृष्टिगोचर होता है। पीछे की ओर काक पक्षी दिखलाये गये हैं। कार्तिकेय की एक अन्य मूर्ति मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है।

गणेश –

गणेश का महत्व आज भी हिन्दू धर्म में सर्वाधिक है। प्रत्येक शुभ कार्य करने से पहले गणेश की पूजा की जाती है। उनका अंकन गजमुख द्विभुजी

अथवा चतुर्भुजी बैठे अथवा नृत्य मुद्रा में खड़े होता है। उनका वाहन मूषक (चूहा) माना गया है तथा वे शिव–पार्वती के पुत्र बतलाये गये हैं। प्रख्यात कलाविद् डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि प्रारम्भ में गणेश एक यक्ष मात्र थे। यक्ष रूप में गणेश का अंकन मथुरा एवं अमरावती की आरम्भिक मूर्तिकला में देखने को मिलता है। परन्तु संस्कृत साहित्य में गणेश का संदर्भ और उल्लेख आठवीं सती में भवभूति की रचना मालती माधव में प्राप्त होता है। परन्तु उनकी पूजा एवं प्रतिष्ठा कब हुई, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। मथुरा से प्राप्त एक शिलापट्ट, जिसे कुषाण कालीन माना जाता है, पर एक पंक्ति में पांच गजमुख गणों का अंकन है। वहीं से एक छोटी गजानन मूर्ति भी मिली है। यह मूर्ति नग्न उर्ध्वरेतस, तुन्दिल (पेट आगे निकला हुआ) तथा नाग का यज्ञोपवीत धारण किये दिखाई गई है। यह मूर्ति शिव के किसी रूप की है अथवा गणेश की, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। यदि इसे गणेश की मूर्ति मान लिया जाता है तो यह गणेश की प्राचीनतम् प्रतिमा है। कुछ विद्वानों का मत है कि गुप्तकाल में गणेश की मूर्तियों का निर्माण किया गया। भूमरा से प्राप्त एक खंडित मूर्ति को उन्होंने गणेश की मूर्ति बतलाया है। परन्तु इस मूर्ति के आधार पर निश्चित रूप से कहना कठिन है कि गणेश गुप्त युग के लोकप्रिय देवता था तथा उनकी मूर्ति का निर्माण गुप्त युग में किया जाने लगा था।

सूर्य –

गुप्तकाल में सूर्य एक लोकप्रिय देवता के रूप में प्रचलित हो चले थे। उनकी पूजा तथा उपासना के लिए मंदिर बनवाये जाने का प्रमाण मिलता है। कुमारगुप्त प्रथम के समय के मंदसौर लेख से ज्ञात होता है कि दशपुर में सूर्य मंदिर का निर्माण तथा जीर्णोद्धार किया गया। इस लेख की रचना वत्सिभट्ट ने की थी। इसमें सूर्यपूजा का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।[48] भूमरा तथा

उदयगिरी से भी सूर्य की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। सूर्य की एक गुप्तकालीन मूर्ति कौशाम्बी से प्राप्त हुई हैं जो वाराणसी के भारत कला भवन में सुरक्षित हैं। इसमें सूर्य को हार एवं आभूषण पहने हुए दिखाया गया है। उनके दोनों ओर उण तथा संध्या देवी को नारियों के माध्यम से चित्रित किया गया है। इसके साथ ही दो पुरुषों की आकृतियाँ भी मिलती हैं, जो संभवतः उनके परिचारक या सेवक प्रतीत होते हैं।

मुहरों पर भी सूर्य की स्तुति का अंकन हुआ है। वैशाली से प्राप्त एक मुहर पर "भगवतो आदितस्य"[49] उत्कीर्ण है। यह किसी मंदिर से प्राप्त हुई मुहर लगती है।

हनुमान –

गुप्तकाल की हिन्दू प्रतिमाओं में हनुमान की भी मूर्ति उल्लेखनीय है। "मथुरा संग्रहालय" में सुरक्षित एक विशालकाय हनुमान की मूर्ति से उनकी उपासना का बोध होता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 कुमारस्वामी ने लिखा है– "A colossal Hanuman from Parkham, D27 in Mathura Museum appears from the style and five modelling of the torso to be of Gupta Age."[50]

अग्नि –

गुप्तकाल में अग्नि एक उपास्य देव माने जाते थे। इस युग में अग्नि की कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिसमें उन्हें तोंद वाले, जटाजूट एवं दाढ़ी युक्त, यज्ञोपवीत धारण किये तथा दाहिने हाथ में अमृतघट लिये हुए अंकित दिखाया गया है। उनके प्रभा मण्डल का अंकन अग्नि शिखाओं के रूप में हुआ है। बिहार प्रान्त के पटना संग्रहालय में एक सुन्दर अग्नि की मूर्ति सुरक्षित है।[51]

लक्ष्मी दुर्गा –

गुप्तकाल में देवताओं की अपेक्षा देवियों की मूर्तियाँ कम है। गुप्तकालीन सिक्कों पर लक्ष्मी का अंकन हुआ है। उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में देवगढ़ के दशावतार मंदिर में लक्ष्मी को विष्णु के चरणों के समीप बैठा दिखाया गया है। इसमें लक्ष्मी को पैर दबाते हुए दिखाया गया है। गुप्तकाल में दुर्गा की पूजा का प्रचलन था परन्तु उनकी मूर्तियाँ बहुत कम प्राप्त होती हैं। मध्य प्रदेश के विदिशा के समीप उदयगिरि गुहा में दीवार पर महिषासुरमर्दिनी दुर्गा की आकृति बनी है। यह मूर्ति अष्टभुजी है।[52] इसी प्रकार एक अन्य प्रतिमा वाराणसी के भारत कला भवन में सुरक्षित है जिसे निर्माण विधा के आधार पर गुप्तकालीन माना गया है।

गंगा यमुना –

गुप्तयुग में मकर वाहिनी गंगा तथा कच्छप वाहिनी यमुना को भी देवियों का स्वरूप दिया गया। मंदिरों तथा गुफाओं के द्वारों पर इनकी प्रतिमाओं का निर्माण इनके वाहनों सहित किया गया। हिमालय से उतरती हुई जलधारा के बीच इनका सर्वप्रथम अंकन उदयगिरि में एक उच्चित्र के रूप में हुआ है। परन्तु उनकी मूर्तियों का निर्माण स्वतंत्र रूप से न होकर प्रवेश द्वारों के दोनों ओर या ऊपर–नीचे ही हुआ है।

सप्तमातृका –

गुप्तयुग में उपास्य देवताओं की शक्तियों के रूप में सात देवियों की कल्पना की गई और उन्हें सप्तमातृका के नाम से सामूहिक रूप से प्रतिष्ठित किया गया। इस समूह की देवियाँ खड़ी कम, बैठी ही अधिक प्राप्त होती हैं। इन सात देवियों के अपने अलग–अलग आयुध और वाहन माने गये हैं। आयुध और

वाहन के आधार पर इनके बीच अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। इनका विवेचन निम्नलिखित है–

देवता	मातृका	आयुध	वाहन
महेश्वर (शिव)	माहेश्वरी	त्रिशूल	वृष
विष्णु	वैष्णवी	चक्र अथवा गदा	गरुण
ब्रह्म	ब्रह्मणी	अक्ष (माला)	हंस
कुमार (कार्तिकेय)	कौमारी	शक्ति	मयूर
वराह	वराही		महिष, वराह
इन्द्र	इन्द्राणी	वज्र	हाथी
यम	यमी (चामुण्डा)		शव, उलूक

कभी–कभी इन सप्तमातृकों की मूर्तियाँ एक साथ निर्मित की जाती थी और मातृत्व के प्रतीक स्वरूप प्रत्येक मातृका की गोद में एक बालक का अंकन कर दिया जाता था। इनका एक गुप्तकालीन पूर्ण सेट सरायकेला से प्राप्त हुआ है, जो वर्तमान में पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। इनमें से प्रत्येक मातृका की गोद में एक बालक दर्शाया गया है। मातृकाओं की अलग–अलग मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए मथुरा संग्रहालय में कौमारी की खण्डित मूर्ति है। इन्द्राणी की एक प्रतिमा वाराणसी के भारत कला भवन को सुशोभित कर रही है।

पाषाण फलकों पर देवी देवताओं की गाथाएँ –

गुप्तयुगीन कलाकारों ने पाषाण फलकों तथा शिला पट्टिकाओं पर विष्णु, राम, कृष्ण, शिव आदि से सम्बन्धित दृश्य तथा पौराणिक कथाओं को उत्कीर्ण किया। उदाहरण के लिए उदयगिरि गुहा में गंगा की मकरवाहिनी मूर्ति

में मकर दिव्य क्रीड़ा का साधन प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में स्थित बेतवा नदी के किनारे देवगढ़ के दशावतार मंदिर में जगती पीठ पर राम और कृष्ण की कथा के अनेक दृश्य फलकों पर उत्कीर्ण किये गये हैं। इन फलकों पर राम की कथा के जो दृश्य पहचाने गये हैं, वे हैं– राम का वनगमन, ऋषि अगस्त्य के आश्रम में राम, लक्ष्मण तथा सीता का प्रवेश, अहिल्योद्धार, शूर्पणखा का नाकोच्छेदन, बालि–सुग्रीव संग्राम, सेतुबंध, हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी वाले पर्वत का ले जाना इत्यादि। इसके अतिरिक्त रामायण के कुछ अन्य दृश्य भी उत्कीर्ण मिले हैं। परन्तु इनकी पहचान अभी तक निश्चित रूप से नहीं हो सकी है। यहाँ पर कृष्ण कथा से सम्बन्धित जो दृश्य फलकों पर उत्कीर्ण हैं, वे हैं– कृष्णजन्म, नन्द और यशोदा द्वारा कृष्ण और बलराम का पालन–पोषण, शंकर लीला, कृष्ण तथा सुदामा आदि का अंकन। वाराणसी के भारत कला भवन में एक फलक पर यशोदा के दधि मंथन का दृश्य अंकित है। यहाँ पर विष्णु के दस अवतारों की भी मूर्तियाँ हैं तथा शिव सम्बन्धी अनेक गाथायें उत्कीर्ण हैं। जैसे शिव की कामदेव पर विजय, पार्वती के साथ भ्रमण तथा गंजासुर एवं अन्य राक्षसों से युद्ध इत्यादि। इसी मंदिर के पूर्वी दीवार के रथिका फलक में "नर–नारायण" को हिमालय में तपस्या करते हुए तथा उत्तरी दीवार के फलक पर "गरुड़ पर बैठे विष्णु" नाग की चंगुल से गज रक्षा करते हुए दिखाया गया है। नर नारायण की मूर्तियों से आध्यात्मिक शांति प्रकट होती है तथा पूरा वातावरण पवित्र हो गया है। मंदिर के प्रवेश द्वार तोरण लता–पत्रादि की आकृतियों से अलंकृत है। पार्श्व स्तम्भों पर गंगा–यमुना की मूर्तियों का अलंकरण दृष्टिगोचर होता है। शिव सम्बन्धी अनुश्रुतियों में किरातार्जुनीयम् के दृश्य विहार के मुंगेर जिले के राजौना से प्राप्त स्तम्भों पर अंकित है। ये स्तम्भ कनिंघम को प्राप्त हुए थे।[53] इसमें गंगावतरण, शिव द्वारा पार्वती को मनाने का प्रयास, गणों का नृत्य, अर्जुन द्वारा पशुपत की प्राप्ति एवं किरात रूपी शिव के साथ अर्जुन का

दृश्य आदि उत्कीर्ण किया गया है। इसी प्रकार मथुरा से एक पाषाण फलक प्राप्त होता है, जिसे गुप्तकालीन माना गया है। इस फलक में रावण द्वारा शिव सहित कैलाश को उठा लेने का दृश्य बड़ा ही रोचक है। पहाड़पुर (बांग्लादेश, राजशाही शिला) से प्राप्त मंदिर की दीवारों पर महाभारत एवं रामायण की कथाओं का दृश्य बड़ा ही रोचक है।

गुप्त युग में मूर्तियों को अधिक सुन्दर आकर्षक तथा कलात्मक बनाने के लिए विविध प्रकार के अलंकरणों जैसे व्याल, गंगा यमुना, कीर्ति मुख, गवास, पुष्प पत्रलता आदि का प्रयोग किया गया। सारनाथ से अलंकरण की अनेक वस्तुयें प्राप्त हुई हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. व्याल :

इसकी मूल कल्पना सिंह है।[54] गुप्तकाल में सिंह की आकृति ने व्याल का रूप धारण कर लिया और व्याल के सींग, पूंछ आदि दिखाये जाने लगे। सारनाथ संग्रहालय में ऐसे अनेक व्याल सुरक्षित हैं। प्रस्तर शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण में व्याल आकाश मार्ग में उड़ते दिखाये गये हैं। इन पर धोती पहने एक सवार बैठा दिखाया गया है जो व्याल की सींग पकड़े हुए है। उसके कानों में कुण्डल एवं गले में हार है। एक अन्य योद्धा तलवार से व्याल के नीचे उसके पंजों को छेद कर रहा है जिसकी कमर को व्याल ने अपनी पूंछ से बांध लिया है।[55]

2. कीर्ति मुख :

मंदिरों के दरवाजों, स्तम्भों तथा खिड़कियों की चौखट पर सिंह के मुख को अलंकरण के रूप में उत्कीर्ण किया गया। इसे कीर्ति मुख कहा गया है। भूमरा तथा देवगढ़ के मंदिरों के स्तम्भों पर ऐसे कीर्ति मुख मिलते हैं।[56]

3. गंगा यमुना :

गुप्त युग में मंदिरों के प्रवेश द्वार पर गंगा तथा यमुना की मूर्तियों को उत्कीर्ण करने का विशेष प्रचलन था।[57] इन्हें उनके वाहनों सहित दिखाया गया है। भूमरा के शिव मंदिर के प्रवेश द्वार पर अंकित ये मूर्तियाँ कलात्मक दृष्टि से उच्च कोटि की हैं।

4. गवाक्ष :

ये घोड़े के पैर के आकृति के बनते थे। गुप्तयुग में गुफा तथा मंदिरों की दीवारों एवं घरों को सजाने के लिए इनका अलंकरण किया जाता था। सारनाथ संग्रहालय में पाषाण के गवाक्षों का सुन्दर संग्रह है। कभी–कभी इन गवाक्षों के बीच में जो खाली स्थान होता था उसमें पशु–पक्षी की आकृति, चक्र या माला लिये मनुष्य की मूर्ति या किसी देवता की मूर्ति बना दी जाती थी।[58] शनैः–शनैः ये वास्तुकला में अलंकरण के अंग बन गये।[59]

5. लतापुष्प पत्रादि :

भवनों, राजप्रासाद की दीवारों, मंदिरों के भवनों एवं प्रवेश द्वारों को आकर्षक बनाने के लिए कमल के फूल पत्तियाँ, लताएँ, पुष्प तथा विभिन्न प्रकार के बेलबूटों का अलंकरण के रूप में उपयोग किया जाता था।

हिन्दू देवी देवताओं की मृण्मूर्तियाँ –

गुप्तयुग में प्रस्तर मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक हिन्दू देवी देवताओं की मृण्मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। ये मूर्तियाँ पहाड़पुर, भीटा, कौशाम्बी, श्रावस्ती, पवाया, अहिच्छत्र, मथुरा, राजघाट आदि स्थानों से प्राप्त होती है। अहिच्छत्र में वहाँ के शिव मंदिर से देवी देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, विशेष रूप से शिव–पार्वती के मस्तक। यहाँ के उत्खनन से "गंगा यमुना की काय–परिमाण

प्रतिमायें'' तथा पार्वती का सिर कला की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थि में पार्वती की पुष्पग्रंथित एवं घुंघराली अलको की छवि वाले मस्तक को देखकर कलाकारों की प्रतिभा के सम्मुख अनिवार्यतः नतमस्तक होना पड़ता है।[60] इसमें पार्वती का मुख गोल, कर्ण–कुण्डल से अलंकृत, घुंघराली लटाओं में सजे केश, चौड़ा चूड़ा अलंकृत चूड़ामणि एवं तिलक मणि से सजाया गया है। मस्तक पर विद्यमान नेत्र से इसकी पहचान पार्वती से की गई है। अहिच्छत्र में जो देवी–देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं उनके मस्तकों पर पांचवीं–छठी शती का केश विन्यास मिलता है। सारनाथ से एक देवता की प्रतिमा मिली है। इनके पैर खण्डित है, गले में माला है तथा वक्ष स्थल पर ''श्री वत्स'' अंकित है।[61] भीटा से प्राप्त मिट्टी की बनी 'शिव–पार्वती' की भव्य सुन्दर मूर्ति भी उल्लेखनीय है।

मिट्टी के फलकों पर हिन्दू देवी देवताओं का मूर्तन–

गुप्त युग में पाषाण फलकों की भाँति मिट्टी के फलकों पर भी देवी–देवताओं का मूर्तन किया गया। मंदिरों एवं स्तूपों की दीवारों को सजाने के लिए मिट्टी के फलकों पर हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनायी गयी। मृण्मूर्तियों के समान ही इन फलकों को तैयार करने के लिए साँचे के साथ–साथ हाथ और छोटे औजारों जैसे चाकू इत्यादि का उपयोग किया जाता था। रामायण, महाभारत तथा पौराणिक कथाओं के दृश्य साँचे के बड़े–बड़े चौकोर और आयताकार तथा वर्तुलाकार खानों में ढाल लिया जाता था। बाद में इनको मंदिरों या स्तूप पर लगा दिया जाता था। इस प्रकार के फलकों का व्यवहारिक उपयोग कुषाणकाल के अन्त तथा गुप्तकाल के प्रारम्भ में देखने को मिलता है। देवी–देवताओं की मूर्तियों के फलक भीतरगांव, नालन्दा, गया, कसया, मथुरा, लुम्बिनी आदि के मंदिरों एवं स्तूपों से मिलते हैं। भीतरगांव के मंदिर में मृण्णमूर्तियों के फलकों का

बाहुल्य है। इसमें अधिकांश क्षतिग्रस्त हो गये हैं और इनके विषय में कुछ भी कह सकना संभव नहीं है। कनिंघम ने पश्चिमी दीवार के बीच में वराह का और उत्तरी दीवार पर चतुर्भुजी दुर्गा तथा दक्षिणी दीवार पर चतुर्भुज गणेश का अंकित फलक देखा था। फोगेल ने पूर्वी दीवार पर तोरण के दोनों ओर गंगा और यमुना के अंकन का अनुमान किया है।[62] वर्तमान में वहाँ मकर पर खड़ी गंगा का अवशेष भाग दिखाई देता है जिनके साथ दो सेविकाएँ हैं। एक उनके आगे तथा दूसरी उनके पीछे छत्र लिए खड़ी दिखाई गई हैं। इसी मंदिर से एक अन्य फलक प्राप्त होता है जिसमें शेषशायी विष्णु का मूर्तन हुआ है। वर्तमान में यह फलक कलकत्ता के इंडियन म्यूजियम में है। इस मंदिर (भीतरगांव) के अनेक फलक लखनऊ संग्रहालय में हैं। इन मृण्णफलकों में मूर्तियों का अंकन सुडौल एवं सुन्दर है। इनमें गति है तथा ये गुप्तकालीन कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। श्रावस्ती के उत्खनन से बहुसंख्यक मात्रा में खण्डित मृण्णफलक प्राप्त होते हैं, जो गुप्तकालीन माने गये हैं। ये फलक दो समयों में निर्मित हुए जान पड़ते हैं। पहले वास्तुफलक भीतरगांव के फलकों सदृश है। दूसरे शब्दों में भीतरगांव के फलकों का उन पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बाद के मृण्णफलक आकार में भिन्न तथा मोटाई लिए हुए हैं। संभवतः ये आग में अच्छी तरह पके नहीं है। इस कारण इनका रंग काला पड़ गया है। पहले वाले फलक में शिव–पार्वती तथा अन्य देवी–देवताओं का मूर्तन है। बाद वाले में रामायण एवं महाभारत की कथाएं अंकित की गई हैं। कुछ फलकों पर कृष्ण के बाललीला की भी झलक दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार अहिच्छत्र से प्राप्त फलकों पर शिव चरित, जयद्रथ तथा युधिष्ठिर के बीच युद्ध का अंकन हुआ है। उत्तर प्रदेश में ईसापुर के निकट यमुना के तल में भी मृण्णफलक प्राप्त हुए हैं जो मथुरा संग्रहालय की शोभा बढ़ा रहे हैं। संभवतः ये कोई यमुना नदी के तट पर स्थित किसी मंदिर के फलक थे। इनमें एक फलक पर कार्तिकेय

का अंकन है जो मयूर पर आसीन दिखाये गये हैं। एक अन्य फलक में पार्वती की गोद में स्कन्द का अंकन हुआ है। यहाँ से एक और फलक प्राप्त हुआ है जिसमें एक योगी को अपना गला काटते हुए दिखाया गया है। बिहार प्रान्त के चौसा नामक स्थान से कुछ वास्तु फलक मिले हैं, जो वर्तमान में पटना संग्रहालय में सुरक्षित हैं, इसमें राम–लक्ष्मण के साथ वानरों का मूर्तन हुआ है जो रामायण का दृश्य प्रतीत होता है।

गचकारी या सुधामयी मूर्ति –

गुप्तकालीन शिल्पियों ने ईटों के चूरे तथा चूने को अच्छी तरह से मिलाकर उनकी मूर्तियाँ बनाई जिसे अंग्रेजी में स्टको कहा गया है। डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त ने इस प्रकार के मूर्ति बनाने की प्रणाली को 'गचकारी' या 'सुधामयी मूर्ति' कहा है।[63] यह विधा बिहार में देखने को मिलती है। कभी–कभी ऐसी मूर्तियों का फलक भी तैयार किया जाता था। राजगृह स्थित मणियार मठ के चारों ओर स्तम्भ अलंकृत रथिकाओं के बीच गचकारी से बने अनेक सुन्दर उच्चित्र थे जिनका समय पांचवीं शती अनुमान किया जाता है। अब ये उच्चित्र नष्ट हो गये हैं। उनका परिचय अब केवल पुरातत्व विभाग द्वारा प्रस्तुत चित्रों से ही मिलता है।[64] कला और सौन्दर्य की दृष्टि से ये उच्चकोटि के हैं। इन मूर्तियों या फलकों पर शिवलिंग का, बाणासुर का या अन्य नाग–नागियों का मूर्तन हुआ है। अफसढ़ के एक विशाल मंदिर की दीवारों पर भी ईंटों के चूरे और चूने से बनी मूर्तियाँ जिसमें रामायण की कथा अंकित जान पड़ती है, प्राप्त हुई है।

अन्य मृण्मूर्तियाँ –

गुप्तकाल में बहुसंख्यक मात्रा में ऐसी मिट्टी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो गुप्तकालीन लोककला के स्वरूप को व्यक्त करती है। मुख्य रूप से मृण्णमूर्तियाँ तीन प्रकार की होती थी। प्रथम व्रत पूजन की मूर्तियाँ, जिनका

निर्माण अधिकांशतः हाथ से ही गीली चिकनी मिट्टी से होता था और पूजा के बाद इन्हें जलाशय में प्रवाहित कर दिया जाता था। दूसरी प्रकार की मूर्तियाँ अलंकरण एवं सजावट के लिए बनाई जाती थी। तीसरी प्रकार की मूर्तियाँ, जो प्रायः रंगीन होती थी, खेलने वाली होती थी। इसमें मिट्टी के बने बैल, हाथी, घोड़े, सिंह, मोर आदि पशु–पक्षियों की आकृतियाँ होती थी। गुप्तयुग में खेलने तथा पूजा करने वाली मृण्णमूर्तियों का मूर्तन अधिक हुआ है। मथुरा, राजघाट, अहिच्छत्र, भीटा, कौशाम्बी, श्रावस्ती, पाटलिपुत्र आदि स्थानों से गुप्तयुगीन विविध प्रकार की मृण्णमूर्तियाँ प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए मार्शल को भीटा की खुदाई से एक रंगीन मृण्णमूर्ति प्राप्त हुई थी। अहिच्छत्र से प्राप्त एक नारी की मूर्ति में चोली रंगीन एवं धारीदार दिखाई गई है। कसमा से प्राप्त एक नारी की मूर्ति में रंगों के चिन्ह दिखाई देते हैं। कुशीनगर से एक बैठी हुई नारी की मृण्णमूर्ति प्राप्त होती है। यह दो बच्चों को लिए हुए है तथा भीतर से खोखली है। नारी जीवन के विभिन्न रूपों का मूर्तन छोटे मृण्णफलकों पर भी देखने को मिलता है। इस काल में खिलौने के रूप में हाथी, घोड़े, मगर, मेढ़े सिंह, सुअर, पक्षी आदि की मृण्णमूर्तियाँ असंख्य संख्या में प्राप्त हुई हैं। गुप्तकालीन साहित्य में भी मिट्टी से बने खिलौनों का उल्लेख है।

उपर्युक्त मृण्णमूर्तियों गुप्तयुगीन कुम्भकार कला का भी उल्लेख कर देना प्रासंगिक होगा। उत्खनन के फलस्वरूप गुप्तयुगीन अनेक मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं, जिनका स्वरूप एवं आकार भिन्न–भिन्न है। इन मृदभाण्डों में दैनिक व्यवहार में आने वाले विभिन्न प्रकार के छोटे एवं बड़े बर्तन थे। इन सभी मृदभाण्डों का निर्माण कुम्भकार की चाक पर किया जाता था और उन्हें आग में अच्छी प्रकार से पकाया जाता था। इनका रंग लाल होता था तथा इनका बाहरी भाग चिकना करके उस पर विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनायी जाती थी। इन

मृदभाण्डों में चमक लाने के लिए मिट्टी में चमकीली बालू या अभ्रक के महीन टुकड़े या चूरा मिला लेते थे। गुप्तयुगीन मृदभाण्डों के निखरे स्वरूप अहिच्छत्र, राजघाट आदि स्थानों से प्राप्त हुए है।

इस प्रकार गुप्तकालीन शिल्पियों ने कला में देवत्व की भावना का अंकन सफलता पूर्वक किया है। उन्होंने बाह्य सौन्दर्य और आत्मिक भावों को भाव का अनूठा संगम मूर्तिकला में प्रस्तुत किया है। गुप्तकालीन शिल्पकारों ने नये–नये उपमान निर्धारित किये। सौकुमार्य का गाम्भीर्य के साथ, रमणीयता का संयम के साथ तथा यथार्थ का आदर्श के साथ सुन्दर समन्वय गुप्तकालीन मूर्तिकला में देखने को मिलता है।

(द) धातु कला

भारत में धातु की मूर्तियाँ बनाने की कला प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। हड़प्पा सभ्यता के पुरास्थलों– मोहन जोदड़ो, चान्हूदड़ो, लोथल, कालीबंगा– से धातु की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। सैन्धव कलाकारों ने अपनी कला का उत्कृष्टतम् निर्देशन धातु में किया है। सैन्धव कलाकार विभिन्न धातुओं के संयोग से मिश्रित धातु बनाने की कला जानते थे। ताँबे में टिन मिलाकर उन्होंने कांसे का निर्माण किया। इन्हें साँचे में ढालकर बनाया जाता था। मूर्तियों के निर्माण में विभिन्न अंगों के चित्रण में आश्चर्यजनक रूप से समानुपातिक ज्ञान का उदाहरण हड़प्पा के कलाकारों ने प्रस्तुत किया। धातुनिर्मित मूर्तियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय मूर्ति मोहनजोदड़ों से प्राप्त 4.5 सेमी0 लम्बी एक नर्तकी की कांस्य मूर्ति है। इस मूर्ति के शरीर पर वस्त्र नहीं है और पैरों का निचला हिस्सा टूट गया है। बायां हाथ कलाई से लेकर कंधे तक चूड़ियों से भरा है तथा नीचे की ओर लटक रहा है। दांये हाथ में वह कंगन तथा केयूर पहने हुए है और वह कमर पर टिका है। उसके घुंघराले बाल पीछे की ओर जूड़े में बंधे हुए हैं। उसके गले में

एक छोटा हार तथा कमर में मेखला है। नर्तकी के पैर संगीत के लय में आगे की ओर उठते हुए जान पड़ते हैं। इसका चित्रांकन इतनी कुशलता के साथ किया गया है जिससे थिरकती हुई नृत्यांगना का चित्र उपस्थित हो जाता है। इसकी सहज एवं प्राकृतिक मुद्रा सभी को आश्चर्यचकित कर देती है। मोहनजोदड़ो से ही एक अन्य कांसे की नर्तकी की मूर्ति प्राप्त हुई है। परन्तु यह कलात्मक दृष्टि से उतनी अच्छी नहीं है। यहीं से तांबे की दो अन्य मानव मूर्तियाँ मिली हैं, जिसमें पहली कमर पर हाथ रखे हैं तथा दूसरी हाथ उठाये है। मोहनजोदड़ो से भैसा और भेड़े की भी कांस्य मूर्ति प्राप्त होती है। कालीबंगा से वृषभ और लोथल से कुत्ते की ताम्र मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

मौर्य युग में भी धातु मूर्तियों का निर्माण किया गया होगा, लेकिन इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। ऐतिहासिक काल में लौरिया नन्दगढ़ से सोने का एक फलक प्राप्त होता है, जिस पर नारी का अंकन है। इसका समय ईसा पूर्व तीसरी शती निर्धारित किया गया है। ईसा पूर्व की प्रारम्भिक सदियों में भी धातु मूर्तियाँ बनाई जाती थी। इसका उदाहरण हमें बम्बई के प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में सुरक्षित पार्श्वनाथ की कांस्य प्रतिमा से प्राप्त होता है। इसकी निर्माणकाल ईसा पूर्व प्रथम शती माना गया है। इसके पश्चात् धातु मूर्ति कला के सम्बन्ध में जानकारी हमें बिहार के शाहाबाद जिले में चौसा से प्राप्त मूर्तियों में होती है। ये मूर्तियाँ वर्तमान में पटना संग्रहालय में सुरक्षित हैं। ये मूर्तियाँ मिट्टी की खुदाई के समय प्राप्त हुई थी। इनमें एक धर्म चक्र, एक कल्प वृक्ष तथा 16 जैन तीर्थकरों की मूर्तियाँ हैं। कांस्य निर्मित धर्म–चक्र तथा कल्प वृक्ष का समय ईसा पूर्व दूसरी पहली शती निर्धारित किया गया है। 16 जैन तीर्थकरों की जो मूर्तियाँ हैं, उनमें 10 कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी हैं। इन्हें कुषाणकालीन माना जाता है। इनमें एक पार्श्वनाथ की मूर्ति है। उमाकांत शाह इसका निर्माण काल

ईसा पूर्व प्रथम शती मानते हैं।[65] अन्य जो शेष 6 मूर्तियाँ हैं, वे बैठी है। इनमें दो पार्श्वनाथ की तथा दो चन्द्रप्रभ की हैं। शेष दो की पहचान अभी तक नहीं की जा सकी है। इन मूर्तियों को प्रारम्भिक गुप्तकाल का माना जाता है। इन 16 धातु मूर्तियों के अतिरिक्त बड़ौदा के समीप अंकोटा नामक स्थान से धातु की 68 जैन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इनका निर्माण काल पांचवीं शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध से लेकर ग्यारहवीं शती तक ठहराया गया है। इनमें से पांच को गुप्तकालीन माना गया है। इन पांच प्रतिमाओं में दो–एक प्रथम जैन तीर्थकर ऋषभनाथ तथा दूसरी मुकुटधारी जीवन्त स्वामी (महावीर) की है। ये दोनों खड़ी मुद्रा में दिखाई गई हैं। ऋषभनाथ की मूर्ति केश तथा उष्णीय युक्त है। दोनों ही मूर्तियों को अधोवस्त्र धारण किये दिखाया गया है। वस्त्र युक्त होने के कारण इन मूर्तियों को श्वेताम्बर सम्प्रदाय का माना गया है। शेष तीन का निर्माण काल छठी शती ईस्वी निर्धारित किया गया है।[66]

गुप्तकाल में जैन मूर्तियों के अतिरिक्त धातु की बौद्ध मूर्तियों का भी निर्माण किया गया। समुद्र गुप्त के शासनकाल में सिंहल नरेश मेघ वर्ण ने बोध गया में सोने चाँदी की रत्नजड़ित बुद्ध मूर्ति स्थापित की थी।[67] दुर्भाग्यवश वहाँ से अभी कोई मूर्ति नहीं मिली है। गांधार से एक बुद्ध मूर्ति प्राप्त हुई है जिसका निर्माण काल चौथी शती ईस्वी माना गया है। इसके सदृश एक अन्य मूर्ति लन्दन के विक्टोरिया एण्ड अल्वर्ट म्यूजियम को सुशोभित कर रही है। परन्तु ये दोनों मूर्तियाँ वहाँ से प्राप्त हुई है जो गुप्त साम्राज्य की सीमा के बाहर था। गुप्तयुग में सारनाथ शैली की बनी कांस्य की दो बुद्ध प्रतिमायें उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में धनेसर खेड़ा से प्राप्त हुई है। इनका निर्माण काल चौथी–पांचवीं शती ईस्वी रखा गया है। इनमें एक प्रतिमा में बुद्ध को बैठे दिखाया गया है तथा उनके दोनों हाथ धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में प्रदर्शित है।

उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले से मिश्रित धातु का बना बुद्ध मूर्ति का केवल सिर प्राप्त हुआ है। यह वर्तमान में लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। इस पर सुनहरी परत चढ़ाये जाने का चिन्ह अभी भी विशेष सुरक्षित है। इनका निर्माण काल 400–425 ईस्वी का है। इसका रचना विधान अत्यन्त उच्च कोटि का है। उनका मुख शांतिमय समाधि में निमग्न है तथा प्राथमिक गुप्त शिल्प के श्रेष्ठ कृतित्व का परिचय देता है। डॉ0 पी0के0 अग्रवाल ने लिखा है– "निश्चय ही यह अपने शिल्प धर्मीय गौरव एवं अध्यात्म भावों में सबसे बढ़कर नमूना है तथा मथुरा एवं सारनाथ के पाषाण शिल्प में कुछ ही ऐसे आचार्यकृत निर्माण कहे जा सकते हैं जो अपने समय के किसी कलाकार–दिग्गज की इस महान धातु कृति से टक्कर ले सके।"[68]

गुप्तकालीन धातु कला का विवेचन तब तक अधूरा रहेगा, जब तक कि ताम्र निर्मित उस बुद्ध की महाप्रतिमा का उल्लेख न किया जाय जो बिहार के भागलपुर जिले के सुल्तानगंज से प्राप्त हुई है। यह मूर्ति वर्तमान में इंग्लैंड के बर्मिंघम संग्रहालय में सुरक्षित है। ताम्र की यह विशाल बुद्ध प्रतिमा (द्रष्टव्य : चित्र सं0 14/परि014) दो टन से भी अधिक भारी तथा दो मीटर से अधिक ऊँची है (लगभग साढ़े सात फुट)। इस मूर्ति में बुद्ध को खड़ा दिखाया गया है तथा उनका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में आगे बढ़ा है। उनका यह दाहिना हाथ और करतल अभय प्रदान करते हुए प्रदर्शित किया गया है। उनका बायां हाथ संघाटी का छोर पकड़े दिखाया गया है। संघाटी के दोनों स्कन्ध ढके हैं और उन पर परिधान की लहरियां दिखाई गई हैं। संघाटी पारदर्शक एवं महीन है। इसमें बुद्ध का वक्षस्थल, नाभि और कटि प्रदेश झलक रहा है। उनके केश दक्षिणावर्त और उन पर उष्णीय हैं। नेत्र ध्यानावस्था में है और कानों में लम्बा कुण्डल उनको सुशोभित कर रहा है। उनके मुख मण्डल पर अपूर्व शान्ति तथा करुणा और

दिव्यता विराज रही है। धातु को ढालकर इतनी सुन्दर मूर्ति की रचना करने वाले गुप्त शिल्पियों की अद्भुत दक्षता एवं प्रतिभा श्लाघनीय है। इस ताम्र मूर्ति की कला की प्रशंसा में सुप्रसिद्ध कलाविद् डॉ0 कुमार स्वामी ने लिखा है– "The most remarkable figure is the colossal (copper) image from Sultanganj, Bhagalpur district now in the Museum and art gallary, Birmingham, date Ca.400 AD."[69] इसी प्रकार प्रसिद्ध कलाविद् डॉ0 पी0के0 अग्रवाल ने लिखा है– ''सचमुच, सारनाथ तथा सुल्तानगंज बुद्ध मूर्तियों में मूर्ति शिल्प के जो आदर्श गुप्त शिल्पी ने प्राप्त किये, वे ही आगे सतत् प्रभावी हुए और परवर्ती युगों में कलाकारों की अनगिन पीढ़ियाँ उनसे प्रेरणा लेती रहीं।''[70]

अमेरिका के क्वीसलैण्ड संग्रहालय में एक बुद्ध की प्रतिमा सुरक्षित है, जिसका निर्माण काल 600–650 ईस्वी के बीच निर्धारित किया गया है। इस मूर्ति की स्थापना लडित ग्राम में हुई थी, जिसकी पहचान नेपाल के पाटन से की गई है। यह सारनाथ शैली में निर्मित हुई लगती है। इसी प्रकार बंग्लादेश के वोगरा जिले से प्राप्त मंजूश्री की सुवर्ण रसित कांस्य प्रतिमा भी कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह प्रतिमा लगभग 2 फुट 10 इंच ऊँची है। एक अन्य बुद्ध की कांस्य मूर्ति जोकि इस समय वोस्टन संग्रहालय में है, गुप्तकालीन शैली में निर्मित की गई लगती है।

धातु की अन्य बौद्ध प्रतिमायें बिहार के नालन्दा और कुर्किहार (जिला गया) से बड़ी संख्या में प्राप्त हुई है। इनमें कुछ को गुप्तकालीन माना जाता है। नालन्दा की 80 फीट ऊँची बुद्ध की ताम्र प्रतिमा अपनी वास्तुगत एवं कलात्मक विशिष्टता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। गुप्त युग में हिमालय प्रदेश के कांगड़ा जनपद से बुद्ध की प्रतिमा उपलब्ध हुई है। इस प्रतिमा का निर्माण

सारनाथ शैली में किया गया है। मध्य प्रदेश के पूर्व नीमाड़ जिले में फोफनार कलां से सात खड़ी बुद्ध की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।[71] इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में ताँबे पीतल और कांसे की प्रतिमाओं का निर्माण व्यापक पैमाने पर हुआ।

जैन तथा बौद्ध मूर्तियों के अतिरिक्त गुप्तकाल में हिन्दू धर्म से भी सम्बन्धित धातु मूर्तियों का निर्माण हुआ किन्तु यह सीमित मात्रा में था। इस कारण ये मूर्तियाँ कम मात्रा में प्राप्त हुई है। पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त के मीरपुर खास से ''ब्रह्म की चतुर्भुजी प्रतिमा'' गुप्तकालीन कांस्य प्रतिमाओं की सर्वोत्तम कृतियों में से एक है।[72] यह प्रतिमा लगभग 3.5 फीट से अधिक ऊँची है। यह मूर्ति पाकिस्तान के करांची संग्रहालय में सुरक्षित है। छः मुख वाले कार्तिकेय की एक कांस्य मूर्ति कश्मीर से प्राप्त होती है। इस मूर्ति को उत्तर गुप्तकाल का माना गया है। इसमें वे चतुर्भुज रूप में है और उनका आयुध शक्ति और वाहन मोर दोनों का अंकन मानुषी रूप में है।

गुप्तकाल में धातु मूर्तियों की ढलाई के लिए जिस विधि का प्रयोग किया जाता था। उसे प्राचीन साहित्य में ''मधूच्छिष्ट विधि'' के नाम से जाना जाता है। इस विधि में पहले मधुच्छिष्ट (मोम) में मूर्तियाँ हाथ से गढ़कर कोर रूपायित कर ली जाती थी, फिर उनके चारों ओर मिट्टी लपेट दी जाती थी और उसे आग पर गर्म किया जाता था, जिससे मिट्टी पककर कड़ी हो जाती थी, भीतर से मोम पिघलकर निकल जाता था और आकृति की छाप मिट्टी के भीतरी भाग पर रह जाती थी और भीतर खोखला हो जाता था। इस प्रकार जब मूर्तियों के लिए साँचा तैयार हो जाता था, तब उसमें पिघली हुई धातु डाल दी जाती थी, जो जमकर साँचे के भीतर बने आकार को ग्रहण कर लेती थी। तदन्तर साँचे को तोड़कर मूर्ति निकाल ली जाती थी और आवश्यकतानुसार छील और रेतकर उसे

निखार प्रदान किया जाता था। इस विधा में एक साँचे से केवल एक मूर्ति तैयार हो सकती थी।[73]

गुप्तकालीन धातु कला के अन्तर्गत चन्द्रगुप्त द्वितीय के मेहरौली लौह स्तम्भ का भी उल्लेख कर देना प्रासंगिक होगा। यह स्तम्भ गुप्तकालीन धातु कार्यकुशलता का उल्लेखनीय उदाहरण है इसकी ऊँचाई लगभग 23 फीट 8 इंच है। आकार में गोल यह स्तम्भ नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः पतला होता गया है। इस लौह स्तम्भ का वजन लगभग 6 टन के करीब है। इसके ऊपर एक चौकोर वैठकी है जिस पर विष्णु या गरुड़ की प्रतिमा रही होगी। इस लौह स्तम्भ पर एक लेख उत्कीर्ण है जिसमें चन्द्र नामक किसी राजा का उल्लेख है। इस चन्द्र राजा की पहचान चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ की गई है। यह स्तम्भ लगभग 1700 वर्षों की आंधी, तूफान, वर्षा, सर्दी, धूप झेलने के उपरान्त आज भी ज्यों का त्यों खड़ा है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 164
2. वही, पृ0 166
3. परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 551–552
4. ए0एल0 श्रीवास्तव : भारतीय कला, पृ0 112–113
5. साहनी : सारनाथ कैटलॉग प्लेट–21
6. एण्डरसन : हैण्ड बुक आफ स्कल्पचर इन इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता। द्रष्टव्य : बनर्जी, इम्पी0गु0 प्लेट 19, नं0 3
7. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम B(b) 23,41,8,5,57
8. परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 563
9. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, पृ067, नं0 B(b) 157, प्लेट नं0 9
10. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, पृ067
11. हेवेल : इण्डियन स्क्ल्पचर एण्ड पेन्टिग, पृ0 39
12. डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल : गुप्ता आर्ट, पृ0 17
13. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 B(b) 180
14. एण्डरसन : हैण्ड बुक आफ स्कल्पचर, इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, पृ019
15. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, पृ071, नं0 B(b) 182
16. परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 563
17. डॉ0 विनयतोष भट्टाचार्य : बुद्धिस्ट आईकोनोग्राफी, पृ0 18

18. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ0 289

19. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 B(b)

20. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 B(b) 2

21. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 B(b) 6

22. फुशे : आइकोनोग्राफी बुद्धि के, पृ0 69

23. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 B(b) 3

24. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 B(b) 196

25. डाक्टर फोगेल : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, भूमिका, पृ025

26. एण्डरसन : हैण्ड बुक आफ स्कल्पचर, इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, नं05,2,3

27. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 C(a) 3, प्लेट 19B

28. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 9(a)

29. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 H(a) 4,5,9

30. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 H(a) 2

31. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 166

32. परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 564

33. उद्धृत, वही : गुप्त साम्राज्य, पृ0 474

34. आर्कियालाजीकल सर्वे आफ इण्डिया एन्युयल रिपोर्ट, पृ0 93

इण्डियन एन्टीक्वेरी, 10, पृ0 225

फ्लीट : कार्पस इंसक्रिप्सनम् इंडिकेरम, भाग–3, पृ0 65

35. मद्रस्तस्यात्मजोडभूदद्विज – गुरू–यतिषु प्रायशः प्रीतिमान्य :

    दिनेश चन्द सरकार : सिलेक्ट इंसक्रिप्सशन्स, पृ0 309

36. फ्लीट : कार्पस इंसक्रिप्सनम् इंडिकेरम, भाग–3, पृ0 259–60

37. डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 282–83

38. कालिदासः चतुर्भूते धातारं सर्वतोमुखम्, रघुवंश, 10, 73

    कुमारसंभव 2, 3

39. डा0 ए0के0 कुमारस्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ0 85–86

40. बनर्जी : इम्पीरियल गुप्ताज, प्लेट 28

41. के0डी0 बाजपेयी : भारतीय वास्तुकला का इतिहास, पृ0 112

42. ए0एल0 बाशम : अद्भुत भारत, पृ0 309

43. ए0एल0 श्रीवास्तव : भारतीय कला, पृ0 117

44. डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 567

45. वही, पृ0 568

46. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ0 274

47. परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 569

48. स्वयशो वृद्धये सर्वमत्युदार मुदराया ।

    संस्कारित मिदं भूयः श्रेष्या भानुमतो गृहम् ।।

    श्रेष्यादेशेन भक्त्या च कारितं भवनं रवेः।

    जे0एफ0 फ्लीट : कार्पस इंसक्रिप्सनम् इंडिकेरम, भाग–3, गुप्त अभिलेख क्रमांक 18

49. आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट, पृ0 142, नं0 369, 396, प्लेट–18

50. ए0के0 कुमारस्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ086

51. डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 573

52. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ0 273

53. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया एन्युअल रिपोर्ट, 3, पृ0154–155

54. फोगेल : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, भ्पृ0 27

55. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 C(b) 1–81, और नं0 C(b)

56. मेमायर्स आफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, नं0 16

57. आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग–10, पृ0 60

58. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, नं0 D(i) 21 और नं0 D(i)16

59. बनर्जी : एज आफ द इम्पीरियल गुप्ताज, पृ0 188

60. कृष्ण दत्त बाजपेयी : भारतीय वास्तुकला का इतिहास, पृ0 119–120

61. साहनी : कैटलॉग आफ दी सारनाथ म्यूजियम, H(a) नं032

62. उद्धत, परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 581

63. वही, पृ0 582

64. वही, पृ0 582

65. उद्धत, वही, पृ0 575

66. उद्धत, वही, पृ0 576

67. उद्धत, वही, पृ0 576

68. डॉ0 पी0के0 अग्रवाल : गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, पृ0 52

69. डॉ0 कुमारस्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ0 85

70. डॉ0 पी0के0 अग्रवाल : गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, पृ0 51

71. वही, पृ0 53

72. कृष्ण दत्त बाजपेयी : भारतीय वास्तुकला का इतिहास, पृ0 120

73. परमेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 576–77

चतुर्थ अध्याय

गुप्तकालीन लोक, नृत्य एवं संगीत कला

(अ) लोक कला

लोक कला सामान्य जन–समुदाय की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। यह धार्मिक एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की प्रतीक है जो मानव हृदय की उपज है और जिसमें कृत्रिमता एवं प्राविधिक प्रयोगों का कोई भी स्थान नहीं है। लोककला में सांस्कृतिक ध्वनि है, जो संस्कृति की रीढ़ की हड्डी है।

सौन्दर्य का आकर्षण, संगीत का माधुर्य, नृत्य की लय और चित्रकला की अभिव्यक्ति मानव की सुन्दरतम् भावनाओं को सदैव अपनी ओर आकर्षित किये रहती हैं। किसी भी देश की लोक कला वहाँ के जनसामान्य की हृदय–तंत्रों को झंकृत किये बिना नहीं रह सकती। यद्यपि आज का कलाकार अपने बौद्धिक तर्क से कला को अति–जटिल एवं सर्वसाधारण की समझ की सीमा से परे की वस्तु बनाने में संलग्न है, किन्तु दूसरी ओर लोक परम्परा अपने रचनात्मक पक्ष से नैसर्गिक अभिव्यक्ति का मार्ग खोज ही निकालती है, जोकि जीवन–विस्मृति और आत्मसुख का एकमात्र साधन है। लोक कला का सम्बन्ध मानव की भावनाओं से सीधा है, जिन्हें वह परम्परागत रूढ़ियों के रूप में प्रचलित करना चाहता है।

लोक कला मानवीय भावनाओं के साथ–साथ चली आ रही है, जो अति प्राचीन है। यह कला युग–युग का इतिहास संजोये मानवीय भावनाओं के साथ–साथ चल रही है।

लोक कला का उद्भव प्रागैतिहासिक काल से ही माना जाता है। तब से लेकर आज तक लोक कला धार्मिक परम्पराओं के रूप में विद्यमान रही है, किन्तु लोक कला का एक स्वरूप मनोरंजक भावनाओं पर भी आधारित है। हड़प्पा सभ्यता के लोग आमोद–प्रमोद में रुचि लेते थे। वैदिक काल में आर्यों का

जीवन के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण था। पुत्र जन्म, मरण, नामकरण, संस्कार, शादी व्याह आदि अवसरों पर मनोवांछित देवात्माओं को विभिन्न आकारों में लोकला के रूप में प्रदर्शित किया जाता था। मौर्यकाल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र से तत्कालीन समय में प्रचलित लोक कला की जानकारी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त मौर्यकालीन लोक कला का रूप उन विशालकाय यक्ष–यक्षिणी की प्रतिमाओं में भी देखने को मिलता है, जो पटना, बेसनगर, मथुरा आदि स्थानों से प्राप्त हुई है। मौर्योत्तर काल में भी धार्मिक तथा मनोरंजक भावनाओं पर आधारित ये लोक कलाएं प्रचलित रही।

गुप्तकालीन लोक कला का विवरण तत्कालीन साहित्यिक एवं पुरातात्विक दोनों साक्ष्यों से मिलता है। गुप्तकाल में धार्मिक तथा मनोरंजक भावनाओं पर आधारित लोक कला के स्वरूप के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। गुप्तकालीन धार्मिक लोक कला के स्वरूप को व्यक्त करने वाली वे मृण्मूर्तियाँ हैं, जिनका निर्माण व्रत पूजा के लिए किया जाता था। पूजा के उपरांत इन्हें जलाशय में प्रवाहित कर दिया जाता था। गुप्तकाल में खेलने वाली भी मूण्मूर्तियों का निर्माण किया गया। गुप्तयुगीन साहित्य में मिट्टी के बने रंगीन पक्षी (खिलौने) का उल्लेख मिलता है। कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल के सातवें अंक में भरत के मिट्टी के मयूर के साथ खेलने का उल्लेख है। घरों की नारियाँ एवं बालिकाएँ अपनी भावनाओं को रेखाचित्र के रूप में प्रदर्शित करती थी। वे फर्श अथवा दीवार को गोबर से लीपकर, गेरू और चावल के लेप से सीक में रुई लगाकर, उसको रेखाचित्रों में प्रस्तुत करती थी। वात्स्यायन के कामसूत्र से ज्ञात होता है कि छोटी लड़कियों को गुड़ियों से खेलना बहुत प्रिय था। मालाएं गूथने, खिलौने तथा गुड़िया बनाने और लुका–छिपी के खेलों में उन्हें बहुत आनन्द आता था। मथुरा क्षेत्र से उपलब्ध मूर्तियों में स्त्रियों की अनेक क्रीड़ाओं का आमोद–प्रमोद

के साधनों का प्रदर्शन किया गया है जिसमें जल विहार, शरीर को सजाना, संगीत एवं नृत्य उल्लेखनीय है। मथुरा क्षेत्र से बहुत सी ऐसी मूर्तियाँ मिली है, जिसमें स्त्रियों को कन्दुक क्रीड़ा (गेंद का खेल) करते हुए प्रदर्शित किया गया है। अजन्ता एवं बाघ के चित्रों में भी लोक कला की झलक दृष्टिगोचर होती है। सामूहिक मनोरंजन के लिए नर्तकों एवं नर्तकियों की मंडलियाँ दर्शकों के सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन करती थी। विविध अवसरों पर विवाह एवं मंगल कार्यों के समय, खेतों और खलिहानों में, नदी एवं पोखरों में स्नान के समय लोकगीतों को गाये जाने की प्रथा का प्रचलन इस युग का था।

(ब) गायन व वादन कला

संगीत का जीवन में अत्यधिक महत्व है। संगीत एक साधना है। यह मात्र सांसारिक मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु ईश्वर की पूजा एवं आराधना के लिए भी आवश्यक माना गया है। वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ कामसूत्र में 64 कलाओं की जो सूची प्रस्तुत की है उनमें गायन, वादन और नर्तन को पहले ही रखा है। गायन, वादन और नर्तन संगीत के तीन मुख्य अंग हैं और इनके बीच पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है, विशेष रूप से गायन और वादन का।

भारत में प्राचीनकाल से ही संगीत की परम्परा का प्रचलन रहा है, जिसकी पुष्टि हड़प्पा सभ्यता के पुरातात्विक साक्ष्यों तथा वैदिक संहिताओं से होती है। गुप्तकालीन साहित्य में जहाँ कहीं भी आमोद–प्रमोद की चर्चा हुई है, वहाँ संगीत के इन सभी रूपों का उन्मुक्त रूप से उल्लेख है। गुप्तयुगीन साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय के नागरिक संगीत में विशेष रुचि प्रदर्शित करते थे। यह चरम सुख का प्रतीक था और लोकरंजन का साधन भी।

गुप्तकाल के साहित्यिक ग्रन्थों में सगीत के अनेक संदर्भ मिलते हैं। भरत मुनि के नाट्य शास्त्र तथा वात्स्यायन के कामसूत्र से ज्ञात होता है कि संगीत के अपने सिद्धान्त थे, जिनके आधार पर संगीताचार्य मार्गदर्शन करते थे। गुप्त युग में नर–नारी संगीत के प्रेमी थे। धन सम्पन्न परिवारों तथा राजप्रासादों में संगीत होता रहता था। वात्स्यायन ने संगीत के महत्व की ओर संकेत करते हुए कहा है कि नागरिकों को स्वयं संगीत का ज्ञान होता था और उनके पुत्र गन्धर्व शाला में संगीत शिक्षा के लिए भेजे जाते थे। मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने हरदत्त नामक संगीताचार्य का उल्लेख किया है जो संगीत की शिक्षा देते थे। संगीतशालाओं की संगीत ध्वनि से नगर गूंजता रहता था।[1] राजघरानों में राजकुमारियों को संगीत एवं नृत्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी। शूद्रक ने अपने ग्रन्थ मृच्छकटिक में आचार्य चारूदत्त की बड़ी प्रशंसा की है, जो संगीत का बहुत बड़ा भक्त था।

गुप्तकालीन मूर्तिकला में भी संगीत के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। भूमरा के शिव मंदिर में फलकों पर शिव के गण वाद्य बजाते और नृत्य करते हुए उत्कीर्ण है। सारनाथ से प्राप्त एक फलक पर भी संगीत का दृश्य उत्कीर्ण है। अजन्ता की सत्रहवीं तथा बाघ की चौथी गुफाओं में भी संगीत के दृश्य उत्कीर्ण हैं।

राज्य का संरक्षण –

गुप्तकाल में सगीत को राज्य का संरक्षण प्राप्त था। इस युग के सम्राट स्वयं संगीत में प्रवीण थे और उदार संरक्षक भी। महान गुप्त शासक समुद्रगुप्त स्वयं एक कुशल वीणावादक था जिसकी पुष्टि उसके वीणा प्रकार के मुद्राओं से होती थी। कहा जाता है कि वीणा वादन में तुम्बरू तथा नारद को भी लज्जित कर देता था। इसी प्रकार कुमारगुप्त प्रथम के सिक्के पर भी वीणा का

अंकन है। कालिदास के मालविकाग्निमित्र से ज्ञात होता है कि राजा अग्निमित्र को संगीत में अत्यधिक रुचि थी। यहाँ तक कि उसकी रानी उससे संगीत कार्य से ध्यान हटाकर राजकाज में ध्यान लगाने का आग्रह करती थी। रघुवंश से ज्ञात होता है कि राजा अज एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ था, जिसने अपनी रानी इन्दुमती को संगीत की शिक्षा प्रदान की थी और इन्दुमती के निधन हो जाने पर अज ने इन्दुमती को 'ललित कलाओं' में 'प्रिय शिष्या' कहकर विलाप किया।[2]

गायन –

गुप्तकाल में गायन के एक व्यवस्थित सिद्धान्त का रूप धारण कर लिया था जिसकी पुष्टि कालिदास के ग्रन्थों से होती है। संगीत के शिक्षक अपने गायन में सिद्धान्तों का अनुसरण करते थे। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में ताल, लय, स्वर, उपगान, मूर्च्छता आदि का उल्लेख किया है। कई स्थानों पर राग की चर्चा है और संगीत के प्रसंग में उन्होंने सारंग, ललित आदि रागों के नाम भी दिये हैं। यही नहीं उन्होंने बेसुरे राग को ताड़न के समान बताया है।[3] मेघदूत में 'मूर्च्छना' शब्द का उल्लेख है। जब पति के वियोग में व्याकुल यक्षिणी गीत गाने और वीणा बजाने लगती है और उसके आँसुओं से वीणा के तार गीले हो जाते हैं और उसे मूर्च्छना ही सहसा विस्मृत हो जाती है। 'मूर्च्छना' शास्त्रीय संगीत में बार–बार किये जाने वाले 'रयाज' को कहते थे। प्राविधिक संगीत की एक विद्या को 'काकलिगीत' कहा जाता था।[4] कालिदास ने जहाँ गीतों का उल्लेख किया है, वहाँ सभी गीत प्राकृत में है।[5] इससे यह अनुमान व्यक्त किया गया है कि प्राविधिक संगीत के साथ–साथ लोक संगीत का भी व्यापक प्रचार था। गायन के साथ–साथ वादन का प्रयोग होता था और नृत्य की परम्परा प्रचलित थी।

वादन –

गुप्तकालीन साहित्य में गायन के साथ–साथ वादन का भी उल्लेख

प्राप्त होता है। गुप्तकालीन साहित्य में अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों का उल्लेख है। तार वाले वाद्य यंत्रों में वीणा प्रमुख थी। कालिदास की रचनाओं में वीणा का उल्लेख अनेक स्थानों पर है।[6] शूद्रक ने मृच्छकटिक में वीणा बजाने का उल्लेख किया है।[7] समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथम के सिक्कों पर उनका अंकन वीणा वादक के रूप में हुआ है। वीणा के अतिरिक्त वल्लकी, परिवादिनी, तन्त्री आदि भी तार वाले वाद्य यंत्र थे, जो संभवतः वीणा के ही रूप थे। इनका उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलता है। तत्कालीन साहित्य में वंशी, बांसुरी, कीचक, शंख और तूर्य आदि मुँह से बजाये जाने वाले वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है। बीन होठों पर रखकर बजायी जाती थी। यह वाद्य यंत्र विशेष रूप से साँपों को रिझाने के लिए बजाया जाता था। तूर्य (तुराही) और शंख भी मुँह से बजाये जाते थे। ये मांगलिक अवसरों पर, विवाह के अवसर पर, युद्ध प्रारम्भ करने अथवा विजय घोषित करने के लिए बजाये जाते थे। वेणु का उपयोग लोक मनोरंजन के लिए अधिक होता था। वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ कामसूत्र में लिखा है कि वेणु प्रियतमा को आकर्षित करने का मूलमंत्र है।[8] पूजा के अवसर पर घंटा और पटह बजा करते थे। चर्म वाद्य यंत्रों में मुरज, पुष्कर, मृदंग, दुदुम्भि, मर्दल आदि का उल्लेख है। यह बहुत सम्भव है कि इनमें कुछ ढोल के समान रहे हो और कंधे पर लटकाये जाते रहे हो। मृच्छकटिक में मृदंग का उल्लेख मिलता है।[9] कालिदास की रचना से ज्ञात होता है कि अलका के महल मृदंगों से गूँजते थे।[10] उज्जैन के महाकाल मंदिर में पटह बजता था जिसकी पुष्टि कालिदास के ग्रन्थ से होती है। पूजा के समय पटह बजाने की परम्परा आज भी उज्जैन के महाकाल मंदिर में देखने को मिलती है। भूमरा के शिव मंदिर में एक फलक पर शिव के गण अनेक प्रकार के वाद्य बजाते हुए अंकित किये गये हैं। अजन्ता की सत्रहवीं और बाघ की चौथी गुफा में भी अनेक वाद्य यंत्रों का अंकन है, जिससे तत्कालीन

वाद्य यंत्रों के स्वरूप का अनुमान व्यक्त किया जा सकता है। गुप्तकाल में संगीत शालाओं में विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों को बजाने का अभ्यास किया जाता था। शूद्रक के मृच्छकटिक में वसन्तसेना के भवन की संगीतशाला का उल्लेख है जिसमें कहा गया है कि वहाँ युवतियों के कोमल करो से बजाये हुए मृदंग मेघ के समान गम्भीर शब्द कह रहे थे।

(स) नृत्य कला

प्राचीन काल से ही भारत में नृत्य की परम्परा देखने को मिलती है। हड़प्पा सभ्यता के मोहनजोदड़ो से एक नृत्य करती हुई कांस्य की मूर्ति प्राप्त हुई है। ऋग्वेद में भी नृत्य कला के अनेक प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक काल में स्त्री एवं पुरुष दोनों झांझ मजीरों के बाजों के साथ नृत्य करते थे। मौर्यकाल में भी नर्तक लोगों का मनोरंजन किया करते थे। प्राकगुप्तकालीन साहित्यों में भी नृत्य के अनेक संदर्भ मिलते हैं। यह कला नारी प्रधान अधिक थी।

गुप्तकाल में नृत्यकला ने काफी लोकप्रियता प्राप्त कर ली। इस काल में परिवार में कन्यायें नृत्य की शिक्षा ग्रहण करती थी, घर के बाहर भी वे नृत्य किया करती थी। नृत्य का इस युग में व्यापक प्रसार था। नृत्य देवालयों, मंदिरों, राजसभाओं तथा समारोहों में हुआ करते थे। इस कालखण्ड में नृत्य ने एक पेशे का रूप धारण कर लिया था और लोगों के बीच नर्तकियों का बड़ा सम्मान था। तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों से नृत्य के विभिन्न रूपों पर प्रकाश पड़ता है। मेघदूत में नर्तकियों द्वारा चामर नृत्य किये जाने का उल्लेख मिलता है।[11] मालविकाग्निमित्र में एक अन्य नृत्य 'छलिक' या 'चलिक' का उल्लेख है। संभवतः यह नृत्य चतुष्पद पर अवलम्बित था। इसमें नर्तक अभिनय दूसरे का करता था, परन्तु भाव प्रदर्शन स्वयं अपना करता था। इस काल में नगरों में नृत्य की शिक्षा देने वाले आचार्य होते थे। कालिदास के मालविकाग्निमित्र में गणदास

नामक एक नाट्याचार्य का उल्लेख है। इस युग में नाट्याचार्यों की प्रतियोगिताएँ भी होती थी। मालविकाग्निमित्र में गणदास एवं हरदास नामक नाट्याचार्यों के प्रतियोगिता का उल्लेख है। नर्तक एवं नर्तकियों की मंडलियाँ सामूहिक मनोरंजन के लिए दर्शकों के समक्ष अपनी कला का प्रदर्शन करती थी।

गुप्तकालीन चित्रकला एवं मूर्तिकला में भी नृत्य के साक्ष्य दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरण के लिए अजन्ता की 17वीं गुफा में एक चित्र है जिसमें एक स्त्री नृत्य कर रही है और उसके साथ चार स्त्रियाँ मजीरे और एक पुरुष मृदंग बजा रहा है। इसी प्रकार बाघ की चौथी गुफा में दो नृत्य समूहों का चित्रण है। भूमरा के शिव मंदिर के फलक पर शिव के गणों को नृत्यरत मुद्रा में दिखाया गया है। सारनाथ से एक शिला फलक प्राप्त हुआ है, जिसमें क्षान्तिवादी जातक की कथा का दृश्य उत्कीर्ण है। इस शिला फलक पर एक स्त्री वेणु, भेरी, झाल और मृदंग बजाती स्त्रियों के बीच नृत्य कर रही हैं।

रंगमंच और अभिनय –

गुप्तयुग में संगीत और नृत्य के साथ–साथ नाटकों का भी प्रचलन था जिसकी पुष्टि तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों से होती है। इस काल में नाटकों का महत्व उनके अभिनय में ही अधिक समझा जाता था। इस कालखण्ड में अनेक नाटकों की रचना हुई जिसमें कालिदास द्वारा रचित मालविकाग्निमित्र, विक्रमोवर्शीय, अभिज्ञानशाकुन्तल और शूद्रक द्वारा रचित मृच्छकटिक उल्लेखनीय है। इन ग्रन्थों से यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि उन दिनों नाटकों में विशेष रुचि लेते थे। वे राजसभाओं में तो अभिनीत होते ही थे, बसंत के आगमन, विवाह के अवसर और सामाजिक उत्सवों पर भी अभिनीत किये जाते थे। नाटकों में स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से भाग लेते थे और अभिनय में अपनी दक्षता प्राप्त करते थे। अभिनय का कार्य नगर की नाट्यशालाओं में होता

था, जिसे 'प्रेक्षागृह' या 'रंगशाला' कहते थे। लोग शान्ति पूर्वक बैठकर नाटक का आनन्द लिया करते थे। नाटक में काम करने वाले नट को 'कुशीलव' कहा जाता था।

गुप्तकालीन अभिनय शाला का कोई प्राचीनतम रूप उपलब्ध नहीं है। विद्वानों ने यह अनुमान व्यक्त किया है कि भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित रंगमंच के समान ही गुप्तकालीन रंगमंच रहे होंगे। उल्लेखनीय है कि नाट्यशास्त्र 'गुप्तयुग' से कुछ पहले की रचना है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार रंगशाला की व्यवस्था इस प्रकार की जाती थी कि संलाप, गायन और श्रवण ठीक प्रकार से हो सके। रंगमंच के सामने दर्शकों के बैठने के लिए मंचवत या सीढ़ीनुमा गैलरी होती थी।[12] कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती के स्वयंवर की चर्चा करते हुए इसी प्रकार के दर्शक कक्ष का उल्लेख किया है। अभिनय भूमि के सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र में यह वर्णित है कि उसे न तो कछुए की पीठ की भाँति होना चाहिए, न मछली के पीठ की तरह, बल्कि दर्पण की तरह स्वच्छ एवं बराबर होना चाहिए।[13]

रंगमंच के दो भाग होते थे। प्रथम आगे का भाग, जहाँ अभिनेता अभिनय प्रस्तुत करता था। इसे 'प्रेक्षागृह' कहा जाता था। इसके पीछे का भाग नेपथ्य कहलाता था। इसमें अभिनेता या अभिनेत्रियां रूप सज्जा करते थे। यहाँ उनको वेश बदलने की सुविधाएँ होती थी। यह भाग आजकल के रंगमंच में ग्रीन रूम का कार्य करता था। अभिनेताओं के परिधान उनके पात्र के अनुसार हुआ करते थे जिन्हें धारण करने पर उन्हें सरलता से पहचाना जा सकता था। रंगमंच के लिए पर्दों का उपयोग होता था। इस प्रसंग में ''तिरस्करिणी'' और ''यवनिका'' शब्द का प्रयोग नाटकों में हुआ है। विद्वानों की धारणा है कि इसका तात्पर्य पर्दे से है जो आजकल के समान प्रेक्षागृह में दृश्य की पीठिका प्रस्तुत करते थे।

यवनिका रंगमंच के सामने का पर्दा होता था, जिसे आजकल "ड्रापसीन" कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीयों ने यह शब्द यूनानियों से लिया।

नाटकों के प्रदर्शन के पूर्व अभ्यास (रिहर्सल) होता था, जिसे "प्रथमोपदेश दर्शन" भी कहा जाता था। मांगलिक उद्घाटन के निमित्त ब्राह्मणों की पूजा की जाती थी और उन्हें भोजन कराकर दान दक्षिणा प्रदान की जाती थी।[14] नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार अन्य अभिनेता से वार्तालाप करके यह प्रकट करता था कि उस समय कौन सा नाटक अभिनीत होगा और फिर उससे तैयारी करने को कहता था। तत्पश्चात् सूत्रधार दर्शकों से सहानुभूति पूर्वक नाटक देखने का आग्रह करता था। इसके बाद नेपथ्य से किसी अभिनेता की आवाज सुनाई पड़ती और अभिनेता रंगमंच पर उपस्थित होते थे और इस प्रकार नाटक का प्रारम्भ होता था।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में नृत्य और अभिनय कला ने ऊँचाईयों को छू लिया था। भगवत शरण उपाध्याय ने लिखा है– "गीत, वाद्य और नृत्य से, उनकी प्रतीक मुद्राओं के संयोग से नाटकीय अभिनय ऋद्ध होता होगा। गुप्त युग जैसे भावों के निरूपण में निष्णात था, अभिनय की आठयता में अनुपम था, वैसे ही नाटकों के असामान्य प्रणयन में भी असाधारण था।"[15]

संदर्भ–ग्रन्थ

1. कालिदास : रघुवंश, 19/5, 19/14
2. उद्धत, भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 146
3. कालिदास : कुमारसम्भव, 1/45
4. उद्धत, भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 144
5. कालिदास : अभिज्ञान शकुन्तल, 1/4, 3/14
6. कालिदास : रघुवंश, 8/33, 19/35, मेघदूत, 1/26, 49
7. शूद्रक : मृच्छकटिक, अंक 4, पृ0 139
8. वात्स्यायन : कामसूत्र, पृ0 379, सूत्र 43
9. शूद्रक : मृच्छकटिक, अंक 4, पृ0 139
10. उद्धत, भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 145
11. कालिदास : मेघदूत, 1/39
12. भरतमुनि : नाट्यशास्त्र, 2, 97
13. उद्धत, भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 147
14. कालिदास : मालविकाग्निमित्र, अंक 2
15. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 147

पंचम अध्याय

गुप्तकालीन स्थापत्य कला

(अ) राजप्रासाद

दुर्ग –

राज प्रासाद के विवेचन के पूर्व यहाँ दुर्ग का भी उल्लेख कर देना प्रासांगिक होगा।

भारत में दुर्ग निर्माण की परम्परा प्राचीनकाल से हो रही है। दुर्गों का निर्माण राजप्रासादों, सैनिक छावनियों तथा नगरों की सुरक्षा के लिए किया जाता था। हड़प्पा सभ्यता के अनेक पुरास्थलों से पश्चिमी टीले पर दुर्ग के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। हड़प्पा की खुदाई से ज्ञात होता है कि नगर की रक्षा के लिए पश्चिमी टीले पर एक दुर्ग का निर्माण किया गया था। उत्तर से दक्षिण की ओर यह 460 गज लम्बा तथा पूर्व से पश्चिम की ओर 215 गज चौड़ा था। दुर्ग के चारों ओर एक सुरक्षा दीवार बनी थी, ज़ो अपने आधार पर 45 फीट चौड़ी थी। इनमें स्थान–स्थान पर प्रवेश द्वार तथा समीप ही रक्षक गृह बने हुए थे। मोहन जोदड़ों के दुर्ग टीले की खुदाई से अनेक महत्वपूर्ण भवन प्रकाश में आये हैं। जैसे– विशाल स्नानागार, अन्नागार, सभाभवन, पुरोहित आवास इत्यादि। काली बंगा का भी दुर्ग टीला रक्षा प्राचीर से युक्त था जिसमें चारों ओर चार प्रवेश द्वार बने थे। यहाँ के दुर्ग टीले से अग्निकुण्ड का साक्ष्य प्राप्त होता था जिसका प्रयोग धार्मिक कार्यों के लिए होता था। हड़प्पा सभ्यता के दुर्गों की पुष्टि ऋग्वेद से भी होती है। ऋग्वेद में इन्द्र द्वारा जिन दुर्गों को नष्ट किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है, उनमें एक का नाम हरियुपिय था। विद्वानों ने इसकी पहचान हड़प्पा से की है।

वैदिक काल में किसी दुर्ग के अवशेष नहीं मिलते परन्तु इतना अवश्य है कि आर्यों का दुर्गों से परिचय था। ऋग्वेद में एक स्थान पर राजा को

पुराभेत्ता (दुर्गों का भेदन करने वाला) कहा गया है। ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में ज्ञात होता है कि मगध के शासक अजातशत्रु ने वज्जियों के आक्रमण से बचने के लिए अपने राज्य की सुरक्षा हेतु पाटलिपुत्र में एक विशाल दुर्ग का निर्माण करवाया था। इसी प्रकार उसने अवन्तिराज प्रद्योत के आक्रमण से अपनी राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए उसका दुर्गीकरण करवाया।[1] चौथी शती ई०पू० में सिकन्दर के यूनानी इतिहासकारों ने भारत में मस्सग, संगल आदि के दुर्गों का वर्णन किया है।[2] मौर्यकाल में भी दुर्गों का निर्माण किया गया था जिसकी पुष्टि साहित्यिक एवं पुरातात्विक दोनों साक्ष्यों से होती है। कौटिल्य ने अपनी रचना में अर्थशास्त्र में दुर्ग विधान के अन्तर्गत वास्तुकला के जिन लक्षणों की चर्चा की है, उसके अनुसार नगर के चातुर्दिक गहरी परिखा (खाई) ऊँचे बप्र (चबूतरा) पर बना हुआ प्राकार और प्राकार में यथास्थान द्वार, कोष्ठ तथा अट्टालक (बुर्ज) बने होने चाहिए।[3] शुंग एवं कुषाल काल में भी दुर्गों का निर्माण किया गया होगा।

ऐतिहासिक काल के दुर्ग का प्राचीनतम् अवशेष राजगृह में पत्थरों से बने प्राचीर के रूप में प्राप्त हुए हैं। पाटलिपुत्र से भी दुर्ग प्राचीर के अवशेष मिले हैं जिनके निर्माण में लकड़ी का प्रयोग किया गया था। कौशाम्बी तथा राजगृह के उत्खनन से भी दुर्गों के अवशेष प्राप्त होते हैं।[4]

गुप्तकाल में भी दुर्गों का निर्माण किया गया होगा। गुप्तकालीन साहित्यों में दुर्गों की चर्चा की गई है परन्तु किसी गुप्त शासक द्वारा दुर्ग बनवाये जाने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। कालिदास ने अपने ग्रन्थ में जो दुर्गों की चर्चा की है उसका निर्माण नगरों की रक्षा के लिए किया गया था। विष्णु शर्मा के "पंचतंत्र" नामक ग्रन्थ में दुर्गों के विशेष गुणों का वर्णन मिलता है। कनिंघम को एरण जो कि एक गुप्तकालीन नगर था, से दुर्ग के अवशेष प्राप्त हुए थे।[5] यह नगर वीणा नदी के तट पर बसाया गया था। यह नगर इस प्रकार बसा हुआ था

कि नदियाँ ही खाई का कार्य करती थी। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में भी दुर्गों का निर्माण हुआ होगा। ये दुर्ग राजप्रासाद, नगरों की सुरक्षा हेतु बने थे। इनका निर्माण मिट्टी तथा ईंटों की दीवारों से किया गया था। इन दीवारों में स्थान–स्थान पर बुर्ज बने हुए थे। दुर्ग की प्राचीर के बाहर एक चौड़ी खाई होती थी। यह खाई पानी से भरी होती थी। नदी तट पर बने दुर्गों में ऐसा होता था। साधारणतः नगर दुर्ग में ही स्थित होते थे।

राजप्रासाद –

राजप्रासाद का अर्थ राजा के महल से है। हड़प्पा सभ्यता के अनेक पुरास्थलों से दुर्ग के साक्ष्य प्राप्त होते हैं, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। यद्यपि हड़प्पा सभ्यता की प्रशासनिक व्यवस्था अज्ञात है, परन्तु यह अनुमान व्यक्त किया गया है कि इनके दुर्गों के अन्दर राजप्रासाद रहे होंगे। वैदिक संस्कृति एक कबायली संस्कृति थी। अतः इस संस्कृति से राजप्रासाद के कोई प्रमाण आज तक उपलब्ध नहीं है। बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के समय भी राजप्रासाद रहे होंगे, ऐसा अनुमान किया गया है। राजप्रासाद का ऐतिहासिक प्रमाण हमें मौर्यकाल में मिलता है, जिसकी पुष्टि कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं यूनानी रोमन लेखकों से होती है। यूनानी रोमन लेखकों के विवरण से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी पाटलिपुत्र में उसका विशाल राजप्रासाद स्थित था, जिसमें अनेक बड़े–बड़े कमरे बने हुए थे। इस राजप्रासाद के स्तम्भों में सोने की लतापत्रावलियाँ तथा चाँदी की चिड़िया बनी हुई थी। यह राजप्रासाद एक विशाल पार्क के बीच स्थित था। इस पार्क में अनेक हरे–भरे वृक्ष लगे हुए थे। इसके निकट एक सरोवर था, जहाँ विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पाली गयी थी। चन्द्रगुप्त के विशाल राजप्रासाद की पुष्टि पुरातात्विक उत्खनन से भी होती है। पाटलिपुत्र के निकट कुम्रहार की खुदाई से इस विशाल राजप्रासाद का अवशेष प्राप्त हुआ है,

जिसको प्रकाश में लाने का श्रेय स्पूनर को है। इस राजप्रासाद के अवशेष से ज्ञात होता है कि यह एक विशाल भवन समूह था। एक भवन के अवशेष में पत्थर के विशाल स्तम्भ खड़े थे। यह किसी विशाल स्तम्भ मण्डप की छत का आधार रहा होगा। अनुमान है कि यह चन्द्रगुप्त का विशाल सभा भवन था। मण्डप में एक ओर काष्ठ मंच प्राप्त हुआ है जो काष्ठ शिल्प का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह राज प्रासाद चौथी शताब्दी ईस्वी में ज्यों–का–त्यों विद्यमान था। चीनी यात्री फाहियान ने इसे स्वयं देखा था और कहा था– ''यह मनुष्य नहीं बल्कि देवों द्वारा निर्मित है।'' इलियन के अनुसार सूसा तथा एकबतना के राजमहल भी भव्यता में इसकी बराबरी नहीं कर सकते थे। कुछ विद्वानों ने इस राजप्रासाद की तुलना सौ स्तम्भों वाले हखामनी प्रासाद से की है जो पोसिपोलिस से प्राप्त हुआ है।[6] शुंग, सातवाहन तथा कुषाण काल में भी राजप्रासादों का निर्माण किया गया होगा।

यद्यपि गुप्तकाल के राजप्रासादों के अवशेष प्राप्त नहीं होते परन्तु इसकी चर्चा तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों में मिलती है, जिसके आधार पर उनके स्वरूप का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है। कालिदास के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि गुप्तकालीन राज प्रासाद कई मंजिलों वाले, ऊँचे तथा विशाल आकार के होते थे।[7] इनके नाम 'विमान प्रतिच्छेद', 'मेघ प्रतिच्छेद', 'मणिहर्म्य', 'देवच्छन्दक' आदि होते थे। कालिदास ने उज्जैनी के प्रासादों का उल्लेख सौध एवं हर्म्य के नाम से किया है। ये नाम राजप्रासादों विविध रूपों के बोधक जान पड़ते हैं। कालिदास ने ऊँचे प्रासादों का उल्लेख सौध एवं हर्म्य के नाम से किया है। मानसार जो कि स्थापत्य कला से सम्बन्धित एक ग्रन्थ है, में हर्म्य को सात मंजिलों वाला भवन कहा गया है। मणिहर्म्य का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि चूना से पलस्तर किये हुए भवन को

सौध कहते थे। विमानप्रतिच्छेद आठ मंजिलों वाला अनेक बुर्जो से युक्त 34 हाथ चौड़ा प्रासाद होता था।[8] मेघप्रतिच्छेद दस मंजिलों वाला राजप्रासाद था जिसका उल्लेख मानसार में 'मेघकान्त' के नाम से है। मणिहर्म्य संगमरमर का होता था। इसकी छत पर पहुँचने के लिए चाँदनी में गंगा की लहरों सा चमकता हुआ सोपान मार्ग होता था। देवच्छन्दक भी ऐसे कई मंजिलों वाला राजप्रासाद रहा होगा। इन राजप्रासादों की सबसे ऊपर की मंजिल की छत खुली होती थी जिसे विमानाग्रभूमि, पृष्ठ तल आदि कहा जाता था। इस खुले भाग से चन्द्रमा की शोभा अच्छी तरह से देखी जा सकती थी।[9] ग्रीष्म काल में प्रासाद की खुली छत पर सोया जाता था।[10]

गुप्तकाल के साहित्य में एक विशेष प्रकार के राजप्रासाद का उल्लेख "समुद्र गृह" के नाम से हुआ है। इसका उल्लेख मत्स्य पुराण, भविष्य पुराण, वृहत्संहिता तथा अन्य साहित्यिक ग्रन्थों से मिलता है। इस प्रासाद का निर्माण ग्रीष्मकाल के निवास के लिए था। यह भवन दो मंजिला और सोलह पहल वाला होता था।[11] इसमें चारों ओर फब्बारे चलते रहते थे, जिससे इसका वातावरण शीतल हो जाता था। कामदग्ध व्यक्तियों को इसी भवन में जाने की बात कही गई है।[12]

राजप्रासादों के द्वार तोरणों से मंडित हुआ करते थे। इन प्रासादों के खिड़कियों के लिए वातायन, आलोक मार्ग, जल मार्ग, गवाक्ष आदि नाम मिलते हैं। वातायन साधारण खिड़की का नाम था, जिससे वायु खिड़की से प्रवेश करती थी। कुछ विद्वानों ने इसे बड़ी खिड़की माना है। आलोक मार्ग ऐसी खिड़की थी, जहाँ लोग बैठकर बाहर का दृश्य देखते थे। यह झरोखा प्रकार का था। जल मार्ग वह खिड़की थी, जिसमें कटावदार जालियाँ थी। गवाक्ष नाम की खिड़की गाय या बैल के नेत्र के समान होती थी।

गुप्तकालीन राजप्रासादों में चित्रशाला, अग्निशाला, संगीतशाला, नाट्यमंडप, सभा गृह, न्याय गृह, आँगन इत्यादि होते थे। राजप्रासादों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है– अंतःपुर तथा बहिर्भाग। अंतःपुर में राज रानियाँ रहती थी और शयनगार होता था। बहिर्भाग में सन्यासियों से मिलने के लिए, विचार–विमर्श के लिए सभा गृह या मंत्रणा गृह, न्यायशाला, चित्रशाला, संगीतशाला, यज्ञशाला, अभिषेक गृह इत्यादि स्थित होता था। अभिषेक गृह में राजा और युवराज के अभिषेक हुआ करते थे। विवाहमंडप एक प्रकार का चतुष्क था। इसके चार पहल और चार द्वार थे। यज्ञशाला में अन्य प्रकार के यज्ञों के अतिरिक्त अश्वमेघ यज्ञ होता था। भवन के भीतर ही एक कमरे में कुल देवता का निवास होता था, जिसे प्रतिमा गृह कहते थे। राजप्रासाद के बाहर स्वयंवर भूमि और स्वयंवर में भाग लेने वाले राजाओं और राजकुमारों के लिए पट मंडपों, तंबुओं के स्कन्धवार बनते थे। स्वयंवर भूमि मंचों के ऊपर मंच बनाकर गैलरी खड़ी की जाती थी, जिसके बीच की वीथियों पर 'शिबिका' पर चढ़ी राजकुमारी स्वयंवरा पति–वरण के लिए घूमती थी।[13]

राजप्रासाद के चारों ओर या मुख्य प्रवेश द्वार के समीप या पीछे उद्यान होता था। इसे प्रमदवन कहा जाता था। यहाँ राजा इच्छानुसार मनोरंजन करता था।[14] यहाँ पक्षियों के पालने की व्यवस्था थी। इस प्रमदवन में विभिन्न प्रकार के पुष्प, लता कुंडा, वृक्ष आदि होते थे। यहाँ बैठने के लिए शिला पट्टिकायें होती थी। इसमें सरोवरों एवं फौब्बारों की भी व्यवस्था होती थी। प्रमदवन में आने का मार्ग राजप्रासाद से लगा हुआ था।

अमरावती तथा नागार्जुनी कोण्डा से गुप्तकाल के पूर्व के कुछ उच्चित्र प्राप्त हुए हैं, जिन पर राजप्रासादों का अंकन देखने को मिलता है। इन उच्चित्रों से अनेक मंजिल वाले राजप्रासाद होने के प्रमाण मिले हैं और उनकी

भव्यता परिलक्षित होती है। परन्तु अजन्ता के चित्रों में, जोकि गुप्तकालीन माने जाते हैं, उनमें इस प्रकार का कोई अंकन नहीं मिलता।[15]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तकालीन राज प्रासाद कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर एवं भव्य रहे होंगे। यद्यपि इनके अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं लेकिन समकालीन साहित्य में इनकी जो चर्चा हुई है, उससे ज्ञात होता है कि ये पूर्व के राजप्रासादों की भाँति सभी लक्षणों से युक्त रहे होंगे।

(ब) नागरिक शालाएँ

नगर –

गुप्तकाल में अनेक नगर विद्यमान थे। कालिदास के ग्रन्थों में नगरों और सड़कों का उल्लेख मिलता है। कालिदास ने सड़कों का उल्लेख राजपथ, राजवीथी, वणिक पथ, पण्यवीथी आदि नामों से किया है। राजपथ और राजवीथी नगर की प्रमुख सड़क अथवा राजप्रासाद की ओर जाने वाली सड़क को कहा जाता था। वणिक पथ और पण्यवीथी बाजार की सड़कों को कहते थे। यहाँ हाट, बाजार और दुकानें लगती थी। नगरों में वर्ण और पेड़ों के अनुसार लोगों के अपने मुहल्ले होते थे। नगर की सड़कें समानान्तर और एक–दूसरी को काटती चली जाती थी जिनके दोनों ओर अटारियाँ बनती चली गई होती थी।[16]

सार्वजनिक एवं साधारण आवास –

राज्य की ओर से बनने वाले भवनों के विभाग को वार्ता–सेतुबंध कहते थे। 'मानसार' में ग्राम निर्माण योजना में धर्मशाला गांव के दक्षिण–पूर्व भाग में प्रवेश द्वार के पास ही बनवाने का विधान है।[17] गुप्तकाल में भवनों के निर्माण के लिए ईंट, पत्थर तथा लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। उत्तर भारत में जिन प्राचीन नगरों का उत्खनन हुआ है, उनमें गुप्तकाल के स्तरों से जो साक्ष्य प्राप्त

होते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि आवासीय भवनों के निर्माण हेतु ईंटों के टुकड़े तथा टूटी–फूटी ईंटों का प्रयोग किया गया था। परन्तु कुषाण युग में भवन निर्माण हेतु पूर्ण ईंटों का प्रयोग देखने को मिलता है। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि कुषाण काल की तुलना में गुप्तकाल की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इस प्रकार आवासीय भवनों के निर्माण में उस प्रकार की समृद्धि का परिचय नहीं मिलता, जिस तरह की समृद्धि का वर्णन तत्कालीन साहित्य में है।[18]

गुप्तकाल के आवासगृह लोगों की आर्थिक स्थिति के अनुसार हुआ करते थे। साधारण भवन या निवास गृह चौकोर आकृति का हुआ करता था। उनके अन्दर एक आँगन, आँगन के चारों ओर बरामदा और बरामदों के बाद कक्ष होता था। कक्ष का प्रवेश द्वार, कमरे आवश्यकता एवं सुविधा के अनुसार बनाये जाते थे। कमरों में तोरण युक्त द्वार तथा खिड़कियाँ होती थी। मकान का मुख्य द्वार सड़क या गली की तरफ खुलता है। उल्लेखनीय है कि हड़प्पा सभ्यता में भी निर्मित भवनों का मुख्य प्रवेश द्वार गलियों की ही तरफ खुलता था। ऐसा सुरक्षा के लिए किया गया था। सामान्यतः भवन की दीवारों पर चित्रांकन किया गया था। भवन के मुख्य प्रवेश द्वार के दोनों ओर शंख, पद्म, इन्द्र धनुष आदि शुभ चिन्ह अंकित किया जाता था।[19] इसका उल्लेख कालिदास की रचनाओं में है। नगरों में गरीब लोगों की झोपड़ियाँ होती थी। इसे ''उटज'' या ''पर्णशाला'' कहते थे। ये झोपड़ियाँ अधिकतर तृण की बनी होती थी। धनिक वर्ग की अट्टालिकायें नगरों में होती थी। शूद्रक ने अपने ग्रन्थ मृच्छकटिक तथा कालिदास ने अपने ग्रन्थों में उज्जैन के ऊँचे–ऊँचे भवनों का उल्लेख किया है। ये भवन कई मंजिला होते थे। इनका प्रवेश द्वार सुन्दर तोरणों से मंडित किया गया था। धनी लोगों के मकानों में एक विशेष प्रकार का स्नानघर होता था, जिसमें स्फटिक

संगमरमर का फर्श होता था। इसमें यंत्र या नलों के माध्यम से पानी आता था। इनको 'धारागृह' कहा गया है। कालिदास के रघुवंश में ऐसे धारागृहों का उल्लेख किया गया है।[20]

गुप्त युग में बड़े भवनों एवं मन्दिरों के निर्माण हेतु ईटों का प्रयोग किया गया था, जो अच्छी तरह से पकाई गई मिट्टी की बनी थी। गुप्तकालीन ईंटे 14 इंच लम्बी 8 इंच चौड़ी 2.5 इंच मोटी होती थी। ये ईंटे अलंकरण युक्त थी। उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में भितरगांव से अनेक गुप्तकालीन ईंटे प्राप्त हुई हैं जिस पर कुमारगुप्त प्रथम का नाम उत्कीर्ण है।[21] गुप्तकालीन एक ईंट लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित है।

वापी, तड़ाग, कूप –

गुप्तकाल के अभिलेखों में वापी, तड़ाग, कूप आदि खुदवाने का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक पुण्य कार्य माना जाता था। राज्य के अतिरिक्त सक्षम व्यक्ति भी इसका निर्माण करवाते थे। खेतों में सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण किया गया था। यह कार्य वार्ता–सेतुबंध विभाग के अधीन था। स्कन्द गुप्त के जूनागढ़ लेख से ज्ञात होता है कि उसके समय ऐतिहासिक सुदर्शन झील का बाँध अत्यधिक वर्षा के कारण टूट गया था। इसका जीर्णोद्धार सौराष्ट्र के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने करवाया। उल्लेखनीय है कि इस ऐतिहासिक झील का निर्माण मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समय पुष्यगुप्त वैश्य ने करवाया था। अशोक के राज्यपाल तुपाष्य ने इसे पूरा करवाया। शक शासक रूद्रदामन के समय भी इस झील का बाँध टूट गया था, जिसे उसने अपने मंत्री सुविशाख की सहायता से ठीक कराया था।

उद्यान और दीर्घिका –

गुप्तकाल में जनसाधारण के लिए भी उद्यानों का निर्माण किया गया था। ये उद्यान नगर से बाहर होते थे और दूर–दूर तक फैले होते थे। इन उद्यानों में वापी, कूप, दीर्घिका आदि लगे होते थे। दीर्घिका लम्बा पतला जलाशय होता था। इसमें सीढ़ियाँ लगी होती थी। दीर्घिकाओं में जल से लगी और जल से भीतर उठती ढाल पर कमरा होता था। इसमें राजा और धनी वर्ग के लोग जल क्रीड़ा का आनन्द लिया करते थे। गुप्तकाल के साहित्य से ज्ञात होता है उद्यानों में क्रीड़ा शैल (नकली पर्वत) भी होता था। मेघदूत में ऐसे क्रीड़ा शैल का उल्लेख है। इसमें पत्थर पर पत्थर रखकर क्रीड़ा शैल बना लिया जाता था जिसमें दूब एवं घास लगाई जाती थी। उद्यानों में फौव्वारों की भी व्यवस्था होती थी, जिससे गिरता जल नालियों के माध्यम से बाहर जाता था। इस जल से उद्यानों में लगे फूल, पौधों एवं लताओं को सींचा जाता था। चीनी यात्री फाह्यिान जोकि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय भारत आया था, मथुरा के मार्ग से जाते हुए ऐसे अनेक उद्यानों तथा भवनों को देखा था। वैशाली में उसने नगर के दक्षिण, सड़क से पश्चिम उद्यान देखे थे।[22]

यद्यपि गुप्तकालीन सम्राटों के अभिलेखों में गुप्तकालीन नगरों के स्वरूप की चर्चा नहीं हैं लेकिन मध्य प्रदेश के समकालीन नरेशों के कुछ अभिलेखों में इसका थोड़ा उल्लेख है। गंगधर लेख जोकि विश्ववर्मन का है, में कहा गया है कि गर्गर नदी के तट पर स्थित नगर सिंचाई के कुँओं, तालाबों, मन्दिरों, वापी और उद्यानों एवं दीर्घिकाओं से अलंकृत था। कुमारगुप्त प्रथम और बन्धुवर्मन के मन्दसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि दशपुर कदली वनों से अलंकृत था।[23]

आक्रमणों अथवा राजा एवं निवासियों द्वारा नगर छोड़ दिये जाने के कारण नगरों की अटारियाँ गिर जाती थीं। सड़कों पर वीरानी छा जाती थी। नगर के जीर्णोद्धार, पुनर्निर्माण या निर्माण के लिए राजा शिल्पियों का आवाहन करता जो वास्तुशास्त्र के अनुसार उसका निर्माण और तब नगर प्राकारों, प्रासादों, अट्टालिकाओं और उद्यानों से सज उठता था।[24]

(स) स्तूप

स्तूप शब्द का शाब्दिक अर्थ है ढेर या थूहा। चूँकि यह चिता के स्थान पर बनाया जाता था इसलिए इसका एक अन्य नाम चैत्य भी हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने मौलिक रूप में स्तूप का सम्बन्ध मृतक संस्कार से था। शवदाह के पश्चात् बची हुई अस्थियों को किसी पात्र में रखकर मिट्टी से ढक देने की प्रथा से स्तूप का जन्म हुआ।

स्तूप का सम्बन्ध प्रायः बौद्ध धर्म से माना जाता है। परन्तु यह शब्द कहीं इससे अधिक प्राचीन है। स्तूप शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है, जिसमें अग्नि की उठती हुई ज्वालाओं को स्तूप कहा गया है।[25] इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर अंगिरिस के एक पुत्र का नाम हिरण्यस्तूप बताया गया है। स्तूप के निर्माण की प्रथा बुद्धकाल से पूर्व की है। भगवान बुद्ध की मृत्यु के पूर्व भी उनका निर्माण विशिष्ट व्यक्तियों और राजाओं की समाधियों के ऊपर किया जाता था। विनयपिटक के महापरिनिब्बात सुत्त में जो परम्परा सुरक्षित है, उसके अनुसार आनन्द ने बुद्ध से पूछा कि उनकी मृत्यु के पश्चात किस प्रकार का स्मारक बनवाया जाय? इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा था कि शव को जलाने के बाद बचे हुए अस्थि अवशेषों पर चौराहों (चतुष्पथो) में उसी प्रकार स्तूप बनवाये जाएं, जिस प्रकार के स्तूप चक्रवर्ती शासकों के बनते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मृतकों के अस्थि अवशेषों पर स्तूप बनाने की प्रथा बुद्ध से पहले भी इस

देश में थी। प्रारम्भ में स्तूप निर्माण की परम्परा का प्रचलन जैन धर्म के अनुयायियों में भी था।[26] कालान्तर में बौद्धों ने इसे अपनी संघ पद्धति में अपना लिया और यह प्रथा विशेष लोकप्रिय हो गयी। इन स्तूपों में बुद्ध तथा उनके प्रमुख शिष्यों की धातु रखी जाती थी। अतः ये बौद्धों की श्रद्धा और उपासना के प्रमुख केन्द्र बन गये।

बौद्ध अनुश्रुतियों से ज्ञात होता है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनके शरीर धातु के आठ भाग किये गये तथा प्रत्येक भाग पर एक–एक स्तूप का निर्माण किया गया। विनयपिटक के महापरिनिब्बात सुत्त में बुद्ध के शरीर धातु के दावेदारों के नाम इस प्रकार मिलते हैं– पावा के मल्ल, कुशीनारा के मल्ल, कपिलवस्तु के शाक्य, वैशाली के लिच्छवि, अलकप्प के बुलिय, रामगाम के कोलिय, वेठदीप का एक ब्राह्मण तथा मगध नरेश अजातशत्रु। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि पिप्पलिवन के मोरिय कुशीनारा तब पहुँचे जब बुद्ध के शरीर धातु का बँटवारा हो चुका था। इसलिए उन्हें चिता के चारों ओर बिखरे अंगारों से ही संतोष करना पड़ा जिस पर उन्होंने अंगार स्तूप का निर्माण करवाया। द्रोण नामक वह ब्राह्मण जिसने कि आठ दावेदारों के आपसी संघर्ष को टालकर प्रत्येक को एक–एक भाग लेने के लिए राजी किया था, उसने उस अस्थि कलश के ऊपर एक स्तूप का निर्माण स्वयं करवाया। ये स्तूप बुद्ध की मृत्यु के बार तुरन्त ही अस्तित्व में आ गए।[27]

बौद्ध धर्म की लोकप्रियता बढ़ने के साथ ही उसके अनुयायियों की संख्या भी बढ़ने लगी। इसके परिणामस्वरूप बुद्ध के शरीर धातु के अतिरिक्त उनके द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं जैसे भिक्षा पात्र एवं वस्त्र आदि को रखने के लिए भी स्तूपों का निर्माण किया जाने लगा। धीरे–धीरे बुद्ध की जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित स्थानों पर भी स्तूपों का निर्माण किया गया। कालान्तर में कुछ ऐसे

स्तूप भी निर्मित किये गये जिन्हें सिर्फ गौतम बुद्ध का प्रतीक मानकर पूजा गया। इस प्रकार स्तूपों के चार प्रकार थे, जो निम्नलिखित हैं–

1. शारीरिक –

ऐसे स्तूपों में बुद्ध तथा उनके प्रमुख शिष्यों की अस्थियां तथा उनके शरीर के विविध अंग (दन्त, नख, केश) आदि रखे जाते थे। उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थ नगर जिले में स्थित पिपरहवा का स्तूप इसी प्रकार का स्तूप है।

2. पारिभौगिक –

ऐसे स्तूपों में बुद्ध द्वारा प्रयोग में लायी गयी वस्तुओं जैसे भिक्षा पात्र, चरण पादुका, आसन आदि को रखा जाता था। चीनी यात्री ह्वेगसांग जो कि सातवीं शताब्दी ईस्वी में सम्राट हर्षवर्धन के काल में भारत आया था, इस प्रकार के अनेक स्तूपों का उल्लेख किया है।

3. उद्देशिक –

इस श्रेणी में वे स्तूप आते हैं जिनका निर्माण बुद्ध के जीवन की घटनाओं से जुड़े स्थानों तथा उनकी यात्रा से पवित्र हुए स्थानों पर किया गया था। बुद्ध के जीवन की घटनाओं से जुड़े अनेक स्थान जैसे लुम्बिनी, बोध गया, सारनाथ, कुशीनगर में बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने स्तूपों का निर्माण करवाया। ये स्थान आज भी विश्व भर में बौद्ध मतानुयायियों के पवित्र तीर्थस्थान माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य चार स्थान संकिसा, श्रावस्ती, राजगृह तथा वैशाली भी महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं, जहाँ उद्देशिक स्तूपों का निर्माण किया गया। इन आठों स्थानों को सम्मिलित रूप से 'अष्टमहास्थानानि' के नाम से जाना जाता है।

4. संकल्पित –

ये छोटे आकार के स्तूप होते थे। इन्हें बौद्ध तीर्थस्थलों पर श्रद्धालुओं द्वारा स्थापित किया गया था। इस कार्य को बौद्ध धर्म में पुण्य का कार्य बताया गया है। इस प्रकार के स्तूपों का निर्माण कार्य बौद्ध भिक्षुओं तथा उपासक दोनों में लोकप्रिय था।

स्तूप के प्रमुख अंग –

स्तूप का प्रारम्भिक रूप अर्द्धगोलाकार मिलता है। इसमें एक चबूतरे (मेधि) के ऊपर कटोरे की आकृति का एक थूहा बनाया जाता था, जिसे 'अंड' कहते थे। इसका निर्माण ईटा या पत्थरों से किया जाता था। इसकी चोटी सिरे पर चपटी होती थी, जिसके ऊपर धातु पात्र रखा जाता था। इसे 'हार्मिका' कहते थे। यह स्तूप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता था। हार्मिका का अर्थ देवसदन अथवा देवताओं का निवास स्थान होता है। हार्मिका के ऊपर 'यष्टि' एवं 'छत्र' बनाये जाते थे। यह 'छत्र' धार्मिक चिन्ह (प्रतीक) था। छत्र को सहारा देने के लिए पत्थर का पतला एवं लम्बा स्तम्भ खड़ा किया जाता था जिसे 'यष्टि' कहते थे। सामान्यतः एक ही यष्टि का निर्माण किया जाता था किन्तु कभी–कभी एक से अधिक यष्टियों का भी निर्माण किया जाता था। छत्र की संख्या जब एक से अधिक होती थी, तो उसे 'छत्रावली' कहते थे। यह छत्र स्तूप के ऊपर बनी हार्मिका के ऊपर लगा रहता था। स्तूप के ऊपर चढ़ने उतरने के लिए जो सीढ़ियाँ बनायी जाती थी, उनको सोपान कहते थे। स्तूप को चारों ओर बाड़ अथवा दीवाल से घेर दिया जाता था जिसे 'वेदिका' कहते थे। प्रारम्भ में यह वेदिका काष्ठ निर्मित थी किन्तु बाद में इसका निर्माण पत्थरों से किया गया। प्रारम्भिक बौद्ध स्तूपों में वेदिका अनिवार्य अंग थी। सारनाथ स्थित मूलगन्ध कुटी में निर्मित वेदिका एक ही प्रस्तर शिला की थी जिस पर चमकदार पॉलिश देखने

को मिलती है। शुंग–सातवाहन युग और उसके पश्चात् बने स्तूपों में जो वेदिकायें बनायी गयी, उनमें थोड़े–थोड़े अन्तर पर स्तम्भ खड़े किये जाते थे। दो खड़े स्तम्भों में तीन पड़ी सूचियाँ चूल काटकर बनायी जाती थी। इन स्तम्भों के ऊपर जो गोल पत्थर लगता था, उसे 'उष्णीष' कहा जाता था। स्तूप तथा वेदिका के बीच परिक्रमा करने के लिए खाली स्थान होता था। इसे 'प्रदक्षिणापथ' कहते थे। कालान्तर में वेदिका के चारों दिशाओं में दर्शनार्थ आने के लिए प्रवेश द्वारों का निर्माण किया गया, जिन्हें तोरण द्वार कहा गया। प्रत्येक तोरण में दो विशाल स्तम्भ होता था। इसके ऊपर तीन बड़ेरियों को एक के ऊपर एक समानान्तर दूरी पर क्षैतिजाकार रखा जाता था। बौद्ध जातक कथाओं का इन बड़ेरियों पर अलंकरण किया गया था। इस प्रकार स्तूप वास्तु के प्रमुख अंग मेधि, वेदिका, अण्ड, हार्मिका, यष्टि, छत्र, प्रदक्षिणापथ, तोरण आदि होता था। साँची महास्तूप में स्तूप वास्तु की ये सभी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है।

प्रसिद्ध कलाविद् डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि– "चार तोरण द्वार तथा वेदिका के चार तुरीय भागों की वास्तु रचना के मूल में एक दार्शनिक मान्यता थी। उसके अनुसार विश्व की रचना एक बड़े स्वास्तिक के रूप में हुई है। चार दिशायें ही स्वास्तिक की चार भुजायें हैं, उसे दिक् स्वास्तिक कहते हैं। पुराणों में इसकी कल्पना यह है कि विश्व का मध्य बिन्दु सुमेरू है। उसकी चारों ओर यह विश्व चार दिशाओं के रूप में फैला हुआ है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर–मेरू के चार तटान्त है जिनके अपने–अपने सरोवर, नदी, देव, वृक्ष आदि हैं। इस प्रकार की धार्मिक मान्यता वैदिक काल से ही लोक में व्याप्त थी। उसे दिशामह तथा उसके मानने वालों को दिशा व्रतिक कहते थे। इसी के अनुसार चार दिशाओं के अधिपति चार लोकपाल थे। उनकी संज्ञा चातुर्महाराजिक देव थी। स्तूप के चार तोरणों के वे अधिपति या रक्षक थे और भरहुत–साँची के स्तूप

में उनका वहाँ निवास बनाया गया है, जो इस प्रकार है– उत्तर में यक्षों के राजा वैश्रवण कुबेर, पूर्व में गन्धर्वों के राजा धृतराष्ट्र, दक्षिण में नागों के राजा विरूढक और पश्चिम में कुम्भाण्डों के राजा विरूपाक्ष। इस प्रकार 'चतुष्टय वा इदं सर्वम्', अर्थात् सारा विश्व चतुर्धा में विभक्त है– इस मूल सिद्धान्त के अनुसार स्तूप के गर्भ सूत्रानुसारी वास्तु विधान की कल्पना की गई। तोरण और वेदिका उसी के रूप है।[28]

भगवान बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् बौद्ध स्तूपों का क्रमशः विकास होता चला गया। मौर्य सम्राट अशोक ने अनेक स्तूपों का निर्माण करवाया। बौद्ध अनुश्रुतियाँ उसे 84 हजार स्तूपों के निर्माण का श्रेय देती है। साँची, भरहुत, तक्षशिला के धर्मराजिका स्तूप का निर्माण मूलरूप से उसी के समय में हुआ। चीनी यात्री ह्वेगसांग श्रीनगर, थानेश्वर, मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, कौशाम्बी, श्रावस्ती, वाराणसी, सारनाथ, वैशाली, गया, कपिलवस्तु आदि स्थानों पर अशोक द्वारा निर्मित स्तूप देखे थे। अशोक कालीन स्तूप मुख्यतः ईंटों द्वारा निर्मित थे। दुर्भाग्य से ये सभी आज नष्ट हो चुके हैं।

स्तूप निर्माण की दृष्टि से शुंग–सातवाहन काल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस काल निर्मित प्रमुख स्तूप साँची, भरहुत, अमरावती, नागार्जुनी कोण्डा आदि के स्तूप हैं, जिनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के अध्याय–1 में किया जा चुका है। इसी प्रकार कुषाणकाल में भी निर्मित स्तूपों का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्धक अध्याय–1 ही में किया गया है।

गुप्तकालीन स्तूप –

गुप्तकाल में भी अनेक स्तूपों का निर्माण हुआ, जिनमें अब बहुत से नष्ट हो चुके हैं। इस काल के प्रमुख स्तूपों में सारनाथ का धमेख स्तूप, राजगृह के जरासंघ की बैठक, नालन्दा का मुख्य स्तूप तथा पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त में

स्थित मीरपुरखास का स्तूप उल्लेखनीय है। इनका विवेचन निम्नलिखित है–

सारनाथ का धमेख स्तूप :

भगवान शंकर की नगरी काशी (वाराणसी) से लगभग 5 किमी0 की दूरी पर उत्तर–पूर्व के कोने पर सारनाथ स्थित है। इस स्थान पर बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। बौद्ध ग्रन्थों में इस घटना को धर्मचक्रप्रवर्तन कहा गया है। बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटना से सम्बन्धित होने के कारण यह स्थान बौद्धों का प्रमुख तीर्थस्थल बन गया। यहाँ का धमेख स्तूप (द्रष्टव्य चित्र सं0 15/परि015) गुप्तयुगीन स्तूप वास्तु का प्रमुख उदाहरण है। ईटों द्वारा निर्मित यह स्तूप लगभग 128 फुट ऊँचा था। इस स्तूप का निर्माण संभवतः उसी स्थान पर किया गया था, जिस स्थान पर बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। कनिंघम ने इस स्तूप का लम्बवत उत्खनन करवाया था। यह संभवतः छठी शती ईस्वी में निर्मित हुआ था।[29] यह स्तूप भूमि के धरातल पर ही निर्मित है, जो इसकी मुख्य विशेषता है। दूसरे शब्दों में अन्य स्तूपों की भाँति इस स्तूप के आधार के रूप में चबूतरा नहीं मिलता। यह स्तूप गोलाकार है। इस स्तूप के तीन भाग हैं– नीचे का आधार, बीच का भाग और गुम्बद। इस स्तूप का आधार ठोस पाषाण खण्डों को जोड़कर निर्मित किया गया है। इसके लगभग आधे ऊँचाई पर आठ आले बने हैं। इसमें बुद्ध अथवा अन्य की मूर्तियाँ रखी गई थी। इन आलों के ठीक नीचे चारों ओर अत्यन्त सुन्दर ज्यामिति तथा अन्य डिजाइनें बनी हुई हैं। स्तूप का मध्य भाग गोलाकार है। इसके ऊपर गुम्बद का भाग अर्द्धगोलाकार न होकर दण्डाकार है, शिखर युक्त पतले दण्ड के समान है। यह अनुमान व्यक्त किया गया है कि इसमें हार्मिका या छत्रावली रही होगी। सम्प्रति यह अब नष्ट हो चुकी है। अलंकरण एवं आकार की दृष्टि से यह स्तूप उच्च कोटि का है।

जरासंघ की बैठक :

बिहार के राजगृह में गुप्तकाल में निर्मित यह स्तूप जरासंघ की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्तूप का निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर हुआ है। स्तूप का आकार कुछ मीनार सरीखा है, इसलिए ह्वेगसांग ने इसका उल्लेख मीनार के रूप में किया है।[30] इसका निर्माण काल पांचवी शती के उत्तरार्द्ध में रखा गया है।

नालन्दा का मुख्य स्तूप :

नालन्दा का मुख्य स्तूप अत्यन्त भव्य एवं विशाल है, जिसका अनेक बार संवर्द्धन किया गया। मूल रूप से इस स्तूप का निर्माण चौथी शताब्दी में माना गया है, जो गुप्तकाल का समय है। इस मुख्य स्तूप के उत्तर–पूर्व के कोने पर एक ऊँचे चबूतरे पर निर्मित एक उद्देशिक स्तूप तथा पाषाण की अवलोकितेश्वर की मूर्ति भी विद्यमान है।

मीरपुर खास का स्तूप :

पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त में स्थित मीरपुर खास का स्तूप चौकोर आधार पर बना हुआ है। ईंटों द्वारा निर्मित यह स्तूप अर्द्धगोलाकार है। इसके बाहरी भाग में मूर्तियाँ रखने के लिए आले बने हुए हैं। इन आलों से जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, वे मिट्टी की बनी है। इन प्रतिमाओं में शरीर का रंग गेहुंआ, केशों एवं नेत्रों का रंग काला तथा वस्त्रों का रंग लाल है। इस स्तूप के पश्चिम ओर तीन छोटे–छोटे कक्ष प्राप्त हुए हैं। ये कक्ष विहार थे। यह स्तूप गुप्तकाल के प्रारम्भिक समय का है।

उपरोक्त स्तूपों के अतिरिक्त पाकिस्तान के तक्षशिला का मल्लड़ स्तूप भी गुप्तकालीन माना जाता है। यह स्तूप वास्तु की दृष्टि से विशेष

उल्लेखनीय नहीं है।

विहार :

गुप्तकाल में अनेक विहारों का भी निर्माण किया गया, जिसका उल्लेख कर देना प्रासंगिक होगा। विहार वह स्थान होता था, जहाँ बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। सारनाथ तथा नालन्दा से कुछ ऐसे बौद्ध विहारों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो गुप्तकालीन प्रतीत होते हैं। सारनाथ का विहार नं0 3 तथा 4 में प्राप्त प्राचीन वस्तुओं तथा गवाक्ष से स्पष्ट होता है कि इन विहारों का निर्माण गुप्तकाल में किया गया था। चीनी यात्री फाहियान जो कि गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में भारत आया था, अपनी यात्रा वृत्तान्त में अनेक विहारों तथा संघारामो का उल्लेख किया है। ये विहार दो मंजिले से लेकर आठ मंजिले तक होते थे, जिसमें शिक्षा की व्यवस्था थी। चीनी यात्री ह्वेगसांग ने नालन्दा विश्वविद्यालय के वर्णन के प्रसंग में वहाँ के विहार का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार नालन्दा का प्रत्येक विहार चार मंजिला था और संघ के हाल के कमरे के स्तम्भों पर देव मूर्तियों का अंकन था। नालन्दा से प्राप्त खण्डहरों में एक भवन छः मंजिला है। यह भवन एक विहार प्रतीत होता था। जोलियान तथा पुष्कलवती के समीप भी अनेक गुप्तयुगीन विहार प्राप्त होते हैं। राजगृह से भी गुप्तयुगीन बौद्ध मठ प्राप्त हुए हैं, जिसकी दीर्घिकाओं में दस मूर्तियाँ स्थापित की गई थी। इन मूर्तियों में गुप्तकालीन कला की जो विशेषताएँ हैं, उनका समन्वय देखने को मिलता है।

(द) मन्दिर

मनुष्य ने अपनी धार्मिक आस्था को व्यक्त करने के लिए देवी–देवताओं की मूर्तियों का निर्माण किया। इन देवी–देवताओं की मूर्तियों को प्रतिष्ठित करने के लिए भवनों का निर्माण किया गया, जिसे मन्दिर कहा गया।

मन्दिर की कल्पना भवन के रूप में न होकर वास्तु पुरुष के रूप में की गई। इसलिए मन्दिर के विभिन्न अंग वास्तु पुरुष के समान कल्पित किये गये। जैसे– चबूतरा, पाद, जंघा, कटि, वक्ष, स्कन्ध, ग्रीवा, ललाट, मुख, नासिका, शिखर इत्यादि। जिस प्रकार जीव आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण होता है, उसी प्रकार देवता की प्राण–प्रतिष्ठा के बाद ही मन्दिर को देवालय समझा जाता है। मंदिर को राजराज भी कहा गया है। इसलिए राजा के समान आसन, पाद पीठ, छत्र, गर्भ गृह, सभा गृह, परकोटे तथा देवोपासना की परम्परा मन्दिर के साथ जुड़ गई। मन्दिर की परिक्रमा को ब्रह्माण्ड की परिक्रमा के समान माना जाता है। इसी कारण मन्दिर की दीवारों पर अष्टदिक्पाल, देव, दनुज, मनुष्य, किन्नर, गन्धर्व, पशु–पक्षी तथा नाना प्रकार के जीव–जन्तु मंदिर की दीवारों पर विराजते हैं। इसी प्रकार मंदिर के पंखें पर लगी गंगा–जमुना की मूर्तियाँ मंदिर में पवित्र होकर प्रवेश करने का प्रतीक हैं। चौड़े आधार के ऊपर नुकीला सूक्ष्म शिखर संभवतः जगत की स्थूलता से ज्ञान की सूक्ष्मता की ओर जाने का संकेत देता है।[31]

प्रारम्भिक मंदिरों अथवा देवालयों का उद्‌गम श्रोत भूमि पर बनी यज्ञ तथा नाग पूजा वेदियों एवं उनके ऊपर निर्मित छप्परों से हुआ जान पड़ता है। बौद्ध स्तूपों, चैत्यों तथा बौद्ध गुहाओं से मंदिर निर्माण की परम्परा को प्रेरणा मिली। गुप्तकाल में इन्हीं से प्रेरित होकर हिन्दू मंदिरों का निर्माण किया गया।

गुप्तकाल से पहले मंदिरों के विषय में कम पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध हैं। आन्ध्र प्रदेश के गुन्टूर जिले में नागार्जुनी कोण्डा से सबसे पुराना हिन्दू मंदिर प्राप्त हुआ है। यह मंदिर ईंटों द्वारा निर्मित है। द्वितीय शती ईसा पूर्व में राजस्थान में वैराट नामक स्थान पर एक मन्दिर का निर्माण हुआ था। यह मंदिर ईटों द्वारा निर्मित था और इसके बीचो–बीच लकड़ी के अठपहलू खंभे लगे

थे। इस मंदिर का व्यास 8.25 मी0 तथा चारों ओर 2.15 मी0 चौड़ा प्रदक्षिणापथ था। राजस्थान के उदयपुर जिले में स्थित नागरी (प्राचीन माध्यमिका) में संकर्षण एवं वासुदेव का मंदिर तथा मध्य प्रदेश के विदिशा जिले में वेसनगर नामक स्थान पर स्थित भागवत मंदिर (वैष्णव मंदिर) की गणना प्राचीन मंदिर के रूप में की जाती है। नागरी के दोनों मंदिर मूलतः लकड़ी के बने थे और इनका आकार वृत्तायत था। कालान्तर में इसकी वेदिका पत्थर की बना दी गयी। समकालिक अभिलेखों में इन दोनों मंदिरों का उल्लेख मिलता है। घोसुन्डी अभिलेख में 'पूजा शिला प्रकार' और 'नारायण वाटिका' का उल्लेख है। नागरी से जो अवशेष प्रकाश में आये हैं, उससे यह ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में यहाँ कोई वैष्णव मंदिर रहा होगा, जिसके चारों ओर पत्थर की चहारदीवारी बनवायी गयी थी। इसे अभिलेख में नारायण वाटिका कहा गया है।[32]

मध्य प्रदेश के विदिशा में वेसनगर से जो उत्खनन समय–समय पर हुए हैं, उनसे यह संकेत मिलता है कि ईटों का बना हुआ एक विष्णु मंदिर था, जिसके समीप हिन्दयवन राजदूत होलियो डोरस ने प्रथम शताब्दी ई0पू0 में गरूड़ध्वज की स्थापना की थी। भरहुत, साँची, अमरावती, बोधगया आदि की शिल्पाकृतियों पर भी अंकित मंदिरों के साक्ष्य से भी ज्ञात होता है कि द्वितीय प्रथम शताब्दी ई0पू0 में भारत में मंदिरों का निर्माण होने लगा था।[33]

गुप्तकाल में भारतीय स्थापत्य कला का सर्वतोन्मुखी विकास हुआ तथा भवन निर्माण के लिए उपलब्ध सभी प्रकार की सामग्रियों तथा माध्यमों का कुशलतापूर्वक उपभोग कर अनेक श्रेष्ठ वास्तु रचनाओं का निर्माण किया गया। गुप्तकाल में उत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों में ईटों तथा पत्थरों द्वारा मंदिर बनाये गये। इनमें अधिकांश मंदिर नष्ट हो गये हैं, केवल कुछ ही सुरक्षित अवस्था में हैं। गुप्तकालीन मंदिरों को दो भागों में बाँटा जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं–

(क) संरचनात्मक मंदिर – ये वे मंदिर थे, जो खुले स्थान पर ईंट और पत्थरों के द्वारा निर्मित किये जाते थे।

(ख) गुहा मंदिर – गुहा मंदिर वे मंदिर होते थे, जो पहाड़ी चट्टानों को काट–तराशकर बनाये जाते थे। गुप्तकाल में ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन तीनों धर्मों से सम्बन्धित गुहा मंदिर प्राप्त होते हैं।

(क) संरचनात्मक मंदिर –

गुप्तयुगीन संरचनात्मक मंदिरों के अधिकांश उदाहरण मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार से प्राप्त होते हैं। मध्य प्रदेश में इनकी संख्या सबसे अधिक है। मध्य प्रदेश के एरण, नचनाकुठार, भूमरा, खोह, साँची, तिगोवा, कुण्डा, पठरी, देवरी, उदयगिरी, वेसनगर, सिरपुर आदि स्थानों से गुप्तकालीन मंदिर प्राप्त हुए है। उत्तर प्रदेश में अहिच्छत्र, देवगढ़, भीतरगांव, कुशीनगर, सारनाथ, भितरी आदि स्थानों से प्राप्त गुप्तकालीन मंदिर उल्लेखनीय है। बिहार में गुप्तकालीन मंदिरों के साक्ष्य बोधगया, नालन्दा, वैशाली आदि स्थानों से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान के मुकुन्ददर्रा का मंदिर, महाराष्ट्र में तेर तथा गुजरात का गोप मंदिर, कर्नाटक में एहोल तथा आन्ध्र प्रदेश में चेलराजा से भी गुप्तकालीन मंदिर के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। असम के दहपर्वतिया नामक स्थान से प्राप्त मंदिर को भी गुप्तकालीन मंदिरों की श्रेणी में रखा गया है। पाकिस्तान में बैग्राम तथा मीरपुरखास एवं बांग्लादेश में वानगढ़, महास्थान से भी गुप्तकाल के मंदिरों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुप्तकाल के अधिकांश मंदिरों में कोई ऐसा अभिलेख नहीं है जो उनके निर्माण काल से सम्बन्ध में प्रकाश डाल सके। मुख्य रूप से शैलीगत विशेषताओं के आधार पर ही इन मंदिरों का काल क्रम निर्धारित किया गया है। विकास की दृष्टि से गुप्तकालीन मंदिरों को मुख्य रूप

से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं–

1. प्रथम वर्ग के मंदिर वर्गाकार एवं आयताकार हैं। ये आकार में छोटे तथा सपाट छत वाले हैं। इन मंदिरों में साधारण मण्डप या बरामदे हैं। इस वर्ग के मंदिरों में साँची का मंदिर सं0 17, मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में स्थित तिगवा का विष्णु मंदिर– राजस्थान के कोटा जिले में स्थित मुकुन्द दर्रा के मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है।
2. दूसरे वर्ग में वे मंदिर हैं, जिसमें गर्भगृह और मण्डप के अतिरिक्त चारों ओर से ढका हुआ प्रदक्षिणापथ मिलता है। इसमें नचना–कुठार के पार्वती मंदिर, भूमरा के शिव मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है।
3. तीसरे वर्ग के मंदिर में गर्भ गृह के ऊपर सपाट छत के स्थान पर पिरामिडनुमा शिखर का निर्माण मिलता है। ये शिखर ऊँचे तथा नुकीले होते थे। इन मंदिरों का आकार बड़ा भव्य था। इस प्रकार के मंदिरों में ललितपुर जिले में स्थित देवगढ़ का दशावतार मंदिर, कानपुर जिले में स्थित भीतरगांव का मंदिर तथा बरेली जिले में स्थित अहिच्छत्र के मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है।

गुप्त युग में मंदिरों का निर्माण ईंटों तथा पत्थरों से हुआ। ईंटों द्वारा निर्मित मंदिरों की संख्या बहुत कम है। इस युग के अधिकांश मंदिर ध्वस्त हो गये हैं। इन मंदिरों के जो अवशेष बचे हैं, उनसे उनके निर्माण, आकार, स्वरूप एवं शैली पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इस काल के मंदिरों में कुछ विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. मंदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरे पर किया जाता था जिसे जगती कहते थे।
2. मंदिर पर ऊपर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियों का निर्माण किया गया था।

3. अधिकांश मंदिर दीवार से घिरा कमरा होता था।

4. प्रारम्भ में मंदिरों की छतें सपाट होती थी किन्तु आगे चलकर शिखर का निर्माण होने लगा। प्रारम्भ में यह शिखर छोटा बनता था किन्तु बाद में मूर्ति प्रकोष्ठ के ऊपर ऊँचे शिखरों का निर्माण आरम्भ हो गया। वास्तु कला विद् कृष्णदेव के अनुसार– "चौड़े आधार और नुकीले सूक्ष्म शिखर वाले मंदिर जगत की स्थूलता और ज्ञान की सूक्ष्मता के सम्मिलित स्वरूप है। यह शिखर सांसारिकता से ऊपर उठने का उपदेश देता है।"

5. मंदिर में देव मूर्ति की स्थापना के लिए एक कक्ष होता था, जिसे गर्भगृह कहते थे। यह गर्भगृह मंदिर का मुख्य कक्ष होता था। गर्भगृह तीन ओर से दीवारों से बंद होता था तथा एक ओर मुख्य प्रवेश द्वार होता था। इस द्वार के चौखट एवं स्तम्भों पर मूर्तियों का अलंकरण मिलता है। प्रवेश द्वार के स्तम्भों पर मकरवाहिनी गंगा तथा कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की जाती थी, जो गुप्तकला की अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त हंस, मिथुन, स्वास्तिक, मंगल कलश, शंख, पद्म आदि पवित्र मांगलिक चिन्हों एवं प्रतीकों का अंकन किया गया है।

6. गर्भगृह के चारों ओर एक प्रदक्षिणापथ होता था। यह प्रदक्षिणापथ छत से ढका रहता था। दर्शनार्थी सीढ़ियों के माध्यम से सर्वप्रथम यहाँ आते थे, तत्पश्चात् गर्भ गृह में प्रवेश करते थे।

7. मंदिर के स्तम्भ चौकोर, आठ पहलू तथा बाद में सोलह पहलू के होते थे। इन स्तम्भों पर विभिन्न प्रकार के बेलबूटे, लता पत्र और सिंह उत्कीर्ण होता था। इन स्तम्भों पर मंदिर की छत आधारित होती थी।

8. मंदिर की बाहरी दीवारें प्रायः सादी होती थी।

गुप्तकालीन मंदिरों का विवेचन निम्नलिखित है–

1. कुण्डा का शंकरमढ़ का मंदिर :

यह मंदिर मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में तिगवा नामक स्थान से 5 किमी० की दूरी पर कुण्डा ग्राम में स्थित है। यह शिव का मंदिर है तथा इसका निर्माण लाल पत्थरों के द्वारा किया गया है। स्थानीय लोग इसे शंकरमढ़ के नाम से जानते हैं। यह एक छोटी कोठरी मात्र है और इसका स्वरूप वर्गाकार है। भीतर से यह 5′10′′ लम्बा तथा 5′7′′ चौड़ा है। बाहर से यह 10′8′′ लम्बा तथा 10′10′′ चौड़ा है। इस मंदिर का निर्माण पत्थर की लम्बी पाटियों को रखकर किया गया है। इस मंदिर की छत सपाटी है। मंदिर में मूलरूप से मण्डप नहीं था लेकिन बाद में इसमें एक मण्डप जोड़ दिया गया। परन्तु यह मण्डप भी अब नष्ट हो चुका है। इस मंदिर का निर्माण काल 350 ईस्वी के पहले का माना गया है। यह समय आरम्भिक गुप्त काल का है।[34]

2. साँची का मंदिर :

साँची का मंदिर (द्रष्टव्य, चित्र सं0 16/परि0 16) मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में साँची महास्तूप के दक्षिण पूर्व में स्थित है। इस मंदिर की निर्माण शैली गुहा मंदिर के समान प्रतीत होती है। इस मंदिर को मंदिर सं0 17 कहा जाता है। यह गुप्तकाल का प्रारम्भिक मंदिर है। इसके सामने की ओर चार स्तम्भ है और उनके शीर्ष पर अनुषक्त पीठ वाले सिंह निर्मित है। सिंहों को एक दूसरे की ओर पीठ किये उत्कीर्ण किया गया है तथा प्रत्येक दो सिंह के बीच में वृक्ष है। मंदिर में स्तम्भों से लगा हुआ आगे सभा मण्डप है। यह एक सपाट छत वाला मंदिर है तथा इसका स्वरूप वर्गाकार है। इसकी लम्बाई 8′2′′ है तथा चौड़ाई भी इतनी ही है। बाहर से यह 20 फुट लम्बा तथा 12 फुट 9 इंच चौड़ा है। इसके स्तम्भ नीचे चौपहल तथा ऊपर अठपहल है। स्तम्भों के अतिरिक्त इस मंदिर में

किसी प्रकार का कोई अलंकरण नहीं मिलता। इस मंदिर के ऊपर छत पर पानी निकलने के लिए पनाली लगी है।[35] इसका निर्माण काल 350 AD से 375 AD के बीच माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल के प्रारम्भ में यह मंदिर निर्मित हो गया था।

3. उदयपुर का मंदिर :

यह मंदिर मध्य प्रदेश में विदिशा से उत्तर लगभग 55 किमी0 की दूरी पर उदयपुर नामक स्थान पर स्थित है। इस मंदिर का गर्भगृह छोटा है और स्वरूप वर्गाकार है। गर्भ गृह के सामने एक मण्डप मिलता है। इस मंदिर में विशेष अलंकरण देखने को नहीं मिलता। अलंकरण के नाम पर केवल तीन पाते है। इस मंदिर की छत सपाट मिलती है। परन्तु साँची के मंदिर के समान इसमें कोई पनाली देखने को नहीं मिलती।[36]

4. मुकुन्द–दर्रा मंदिर :

यह मंदिर राजस्थान के कोटा जिले में एक पहाड़ी दर्रे के भीतर स्थित है। इस पहाड़ी दर्रे को मुकुन्द–दर्रा के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में यह दर्रा मालवा और उत्तर भारत के यातायात का सेतु था। इस मंदिर का निर्माण एक आयताकार चबूतरे पर किया गया है। मंदिर में जाने के लिए बायें तथा दाहिने किनारों पर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इसके मण्डप का आकार 44X74 फुट है। गर्भगृह अथवा मण्डप का निर्माण चार चौपहल स्तम्भों पर हुआ है। ये स्तम्भ 5.5 फुट के अन्तर पर खड़े किये गये हैं।[37] इस मंदिर की छत सपाट देखने को मिलती है। मण्डप से लगभग 3.75 फुट हटकर तीन ओर दो–दो अर्द्धस्तम्भ हैं जिनके ऊपर शीर्ष एवं इन पर सिर दल है। सिर दल पर कमल अंकित चौकोर पत्थर रखे हुए हैं।[38] मुख्य मण्डप के चारों ओर प्रदक्षिणापथ मिलता है। मंदिर के चारों ओर प्रदक्षिणापथ के स्तम्भों के अर्द्ध स्तम्भों से दो फुट

दो इंच के अन्तर पर तीन ओर सोलह इंच ऊँची पत्थर की चुनी हुई चहरदीवारी है। इस चहरदीवारी से 18 फुट हटकर पूरब की ओर संभवतः चार स्तम्भों पर खड़ा हुआ एक छोटा मण्डप और था।[39] वास्तु विन्यास की दृष्टि से यह मण्डप मथुरा जिले के मेहौली से प्राप्त बोधिसत्व के वर्गाकार छत से मिलता जुलता प्रतीत होता है। इस मंदिर की छत पर उत्कीर्ण कमल और उसके वृत्तों के आधार पर इस मंदिर का निर्माण काल पाचवीं शती के आरम्भ में रखा गया है।

5. तिगवां का विष्णु मंदिर :

यह मंदिर मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में तिगवां नामक ग्राम में स्थित है। यहाँ पर अनेक मंदिरों का निर्माण किया गया था, परन्तु वर्तमान में सभी नष्ट हो गये हैं। केवल एक मंदिर का अवशेष है, जो गुप्तकालीन है। यह मंदिर बनावट में अत्यन्त सादा तथा वास्तुकला की दृष्टि से प्रारम्भिक अवस्था का द्योतक है।[40] यह मंदिर पाषाण निर्मित है और इसका स्वरूप वर्गाकार है। मंदिर की छत सपाट है और उसके भीतर पुष्प कमल का अंकन देखने को मिलता है। गर्भगृह के सामने चार स्तम्भों पर टिका एक मण्डप है। इस मण्डप के स्तम्भ नीचे चौपहल है। बीच में अठपहल तथा ऊपर सोलह पहल है। अंत में इसका आकार गोलाकार हो गया है। दूसरे शब्दों में स्तम्भ नाल 'बहु–पृष्ठीय' है। स्तम्भों के शीर्ष पर 'कलश या पूर्ण घट एवं कलशों के ऊपर तीन भागों में विभक्त पीठिका है। शीर्ष पीठिका के ऊपर सिंह बैठे दिखाए गए हैं और उनके बीच में वृक्ष का अंकन हुआ है। इस मंदिर के मण्डप के स्तम्भों का अलंकरण सघनता पूर्वक किया गया है। इस मंदिर के गर्भगृह का व्यास लगभग 8 फुट है जिसमें भगवान नृसिंह की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है। गर्भगृह के प्रवेश द्वार के स्तम्भों पर कूर्मवाहिनी यमुना और मकरवाहिनी गंगा की आकृतियाँ उनके वाहनों के साथ उत्कीर्ण मिलती हैं। इस मंदिर का निर्माण साँची के मंदिर के बाद लगभग 425 ईस्वी में

हुआ जान पड़ता है। यद्यपि तिगवा के विष्णु मंदिर में स्थापत्य की दृष्टि से सुरुचि का अभाव प्रतीत होता है, परन्तु इसका रूपाकार नूतन स्फूर्ति, नव यौवन तथा नवीन चेतना की भावना से अनुप्राणित है।[41]

6. एरण का मंदिर :

मध्य प्रदेश के सागर जिले में एरण नामक स्थान से गुप्तकाल में निर्मित तीन मंदिर– नृसिंह मंदिर, वराह मंदिर तथा विष्णु मंदिर प्राप्त हुआ है। इन तीनों मंदिरों को प्रकाश में लाने का श्रेय कनिंघम महोदय को है। इनका विवेचन निम्नलिखित है–

(I) नृसिंह मंदिर -

कनिंघम महोदय ने जिस समय इस मंदिर को देखा था, उस समय मंदिर के सामने का हिस्सा केवल सुरक्षित अवस्था में था। इस मंदिर के अवशेषों के आधार पर कनिंघम ने इसका स्वरूप निर्धारित किया। उनके अनुसार यह मंदिर 12.5 फीट लम्बा एवं 8.75 फीट चौड़ा था। इस मंदिर का निर्माण ऊँचे चबूतरे पर किया गया है। इस मंदिर के गर्भ गृह में भगवान नृसिंह की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई थी। इस प्रतिमा की ऊँचाई लगभग 7 फीट थी। इसके गर्भ गृह के सामने एक सभा मण्डप था जो चार स्तम्भों पर टिका हुआ था। इस मंदिर की छत सपाट थी, जो 13'8'' लम्बे तथा 7.50'' चौड़े दो शिलाफलकों से बनी थी।[42] इसका निर्माण काल 430–450 ईस्वी के बीच माना गया है।

(II) वराह मंदिर -

इस मंदिर में वराह की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई थी। उल्लेखनीय है कि भगवान विष्णु का एक अवतार वराह का भी था। इस मूर्ति की ऊँचाई 11'2'' लम्बाई 13'10'' तथा चौड़ाई 5'1.5'' है। इस मंदिर का गर्भ गृह 31' लम्बा तथा

15.5' चौड़ा था। गर्भगृह के सामने 9' का एक चौड़ा मण्डप था, जिसके दीवार की मोटाई 2.5' थी। इस मंदिर के स्तम्भ अत्यन्त कलात्मक है। इस मंदिर के छत का अवशेष उपलब्ध नहीं है। परन्तु गर्भ गृह के दीवार तथा मण्डप के अवशेषों से ज्ञात होता है कि इसके ऊपर छत अवश्य थी। मण्डप के स्तम्भ का शीर्ष नहीं मिलता। इसको छोड़कर स्तम्भ की ऊँचाई 10 फुट है तथा उसका चौकोर तल वर्गाकार 2'4'' है।[43] स्तम्भ नौ खण्डों में विभाजित है और प्रत्येक का अपना अलंकरण है। ऊपरी भाग में जंजीर से लटकते हुए घटे उत्कीर्ण किये गये हैं। इसके ऊपर उल्टा कमल घट है और इसके ऊपर लतापत्र युक्त कुंभ है। ऐसा ही कुम्भ स्तम्भ के नीचे भी है। इसके ऊपर एक बैठकी में दो गूथे हुए सर्प हैं और चार कोनों पर घुटने के सहारे खड़ी चार मानव आकृतियाँ हैं। गूथे हुए सर्प इन मानव आकृतियों के बीच में दिखाये गये हैं। इसके ऊपर एक चौकोर बैठक है, जो दो भागों में विभक्त है। बहुत संभव है कि इसके ऊपर सिंह युग्म रहे हो और यह स्तम्भ शीर्ष का अंतिम भाग रहा हो। इस प्रकार स्तम्भ का अलंकरण अत्यन्त आकर्षक एवं भारी है।[44] इस मंदिर के गर्भ गृह पर ये प्रतिष्ठित वराह मूर्ति पर हूण शासक तोरमाण के शासनकाल के प्रथम वर्ष का एक लेख प्राप्त होता है। इस लेख से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र के सामंत मातृविष्णु के छोटे भाई धान्य विष्णु ने इसका निर्माण कराया था। इस मंदिर का निर्माण 485–500 ईस्वी के बीच माना गया है।

(III) विष्णु मंदिर -

वराह मंदिर के उत्तर में एक विष्णु मंदिर का अवशेष प्राप्त होता है। इस मंदिर के गर्भ गृह में 13 फुट 2 इंच ऊँची विष्णु की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। यह मंदिर तत्कालीन साहित्य में वर्णित महाविष्णु के स्वरूपानुसार है। इस मंदिर का स्वरूप आयताकार था और सामने के भाग में मण्डप था। इस मंदिर का आकार

बाहर से लगभग 32 फुट लम्बा तथा 13 फुट चौड़ा था। इसका मण्डप दो स्तम्भों पर टिका हुआ था। ये स्तम्भ अत्यधिक अलंकृत है तथा इसकी टोड़ों के साथ ऊँचाई 13 फुट थी। ये स्तम्भ अपने यथास्थान पर सुरक्षित अवस्था में खड़े हैं। मंदिर के गर्भ गृह की दीवारें गिर गई हैं, परन्तु इसका द्वार सुरक्षित अवस्था में विद्यमान है। यह द्वार पर्याप्त अलंकृत है। द्वार के ललाट बिम्ब (सिर दल) के बीच में गरूड़ की आकृति बनी हुई है। द्वार में तीन शाखायें हैं। भीतरी भाग सर्प की कुण्डलियों से अलंकृत हैं। बीच में पुष्प का अंकन किया गया है और किनारे पर पंक्तियां अंकित हैं। निचले भाग में गंगा तथा यमुना का अंकन देखने को मिलता है। मंदिर की छत सपाट है किन्तु अन्य मंदिरों की तुलना में यह भारी है। छत और मण्डप के स्तम्भों के बीच के भाग में अलंकरण की एक पट्टी है।[45] इस मंदिर के मण्डप के स्तम्भों का अलंकरण वराह मंदिर के समान ही है परन्तु स्तम्भों की बैठकी में सबसे ऊपर के भाग में वृक्षयुक्त सिंह का अंकन किया गया है। स्तम्भ के मध्य भाग का अलंकरण भी अन्य मंदिरों के स्तम्भों से भिन्न देखने को मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि इस मंदिर का निर्माण वराह मंदिर के बाद हुआ होगा। इसका समय 500 से 550 ईस्वी के बीच निर्धारित किया गया है। यहाँ से प्राप्त एक लेख के अनुसार 485 ईस्वी में गुप्त सम्राट बुधगुप्त के शासन काल में मंदिर के सम्मुख एक ध्वज स्तम्भ का निर्माण किया गया था, जिसके शीर्ष पर गरूण की आकृति मिलती है।

7. बेग्राम का गोविन्दस्वामी मंदिर :

यह मंदिर बांग्लादेश के दिनाजपुर जिले में बेग्राम में स्थित है। इस मंदिर के खण्डहर मात्र प्राप्त हुए हैं। इस मंदिर के गर्भगृह की छत चपटी है तथा गर्भ गृह के चारों ओर ढका हुआ प्रदक्षिणापथ मिलता है। इस मंदिर का निर्माण काल 5वीं शती के पूर्वार्द्ध में बताया गया है। इस मंदिर में कोई विशेष अलंकरण

देखने को नहीं मिलता।

8. भूमरा का शिव मंदिर :

भूमरा का शिव मंदिर मध्य प्रदेश के सतना जिले में जबलपुर इटारसी रेल मार्ग पर ऊचेहरा रेलवे स्टेशन से 10 किमी0 दूर भूमरा गांव में स्थित है। यह एक शिव मंदिर है। इसको प्रकाश में लाने का श्रेय पुरातत्ववेत्ता राखलदास बनर्जी को है। उन्होंने इस मंदिर का पता सन् 1920 में लगाया था। यह मंदिर प्रस्तर निर्मित है और इसका केवल गर्भगृह प्राप्त हुआ है। इस मंदिर के अवशेषों से ज्ञात होता है कि इस मंदिर का स्वरूप वर्गाकार था जिसकी लम्बाई 35 फुट थी और चौड़ाई भी इतनी ही। इस मंदिर में लगभग 29′19″ लम्बा तथा 13 फुट चौड़ा मण्डप था। मण्डप के सामने 11′3″ लम्बी तथा 8′5″ चौड़ी सीढ़ियाँ बनी हुई थी। सीढ़ी के दोनों तरफ 8′2″ लम्बी तथा 5′8″ चौड़ी एक–एक कोठरी स्थित थी। मण्डप से सटा हुआ गर्भ गृह स्थित था। इसका आकार वर्गाकार था। गर्भगृह का निर्माण लाल पत्थरों से हुआ था। मंदिर की छतें सपाट थी। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ स्थित था परन्तु इसका कोई चिन्ह अवशेष के रूप में नहीं मिलता।[46] इस मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित किया गया है। इसके रत्नजटित मुकुट और त्रिनेत्र हैं। शिव की जटा में अर्द्धचन्द्र की कला तथा गले में हार सुशोभित है। इस मंदिर के गर्भगृह का प्रवेश द्वार पर्याप्त रूप से अलंकृत है। द्वार के स्तम्भ के दाहिने मकरवाहिनी गंगा तथा बाये कूर्मवाहिनी यमुना की सुन्दर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। इसके द्वार की चौखट भी अलंकरण से सजायी गयी है। द्वार चौखट पर सिरदल के बीच में शिव की अर्द्धमूर्ति है। मूर्ति के दोनों ओर मालाधारी गन्धर्वों की मूर्तियाँ हैं। मंदिर के अनेक प्रस्तरों पर विभिन्न प्रकार के बाजो सहित गज, कमल एवं कीर्ति मुख उत्कीर्ण किये गये हैं। वास्तव में इसमें मंदिर के सभी लक्षण परिलक्षित होते हैं।[47] इस

मंदिर का निर्माण काल शैलीगत विशेषता के आधार पर 500 से 550 ईस्वी के मध्य निर्धारित किया गया है।

9. नचना कुठार का पार्वती मंदिर :

यह मंदिर मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में अजयगढ़ के समीप नचना कुठार नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। कनिंघम इसे पार्वती मंदिर मानते हैं।[48] राखालदास बनर्जी का मत है कि यह शिव मंदिर है।[49] बनर्जी के अनुसार इसकी बनावट भूमरा के शिव मंदिर के समान है। यह मंदिर अत्यन्त सुरक्षित अवस्था में है। इस मंदिर में बौद्ध चैत्यशालाओं की भी विशेषता पाई जाती है। इसका कालक्रम 500–550 ईस्वी के मध्य रखा गया है। इस मंदिर का निर्माण लगभग 35 फुट के वर्गाकार चबूतरे पर किया गया है। मंदिर का गर्भगृह भी वर्गाकार है। इस गर्भ गृह की लम्बाई और चौड़ाई दोनों 8.5 फुट है। गर्भगृह के चारों ओर एक आच्छादित प्रदक्षिणापथ मिलता है। इस मंदिर की छत चपटी है तथा सामने एक स्तम्भ युक्त अग्रमण्डप है।[50] नीचे से मण्डप में जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इस मंदिर के गर्भगृह की छत सपाट मिलती है तथा ऊपर एक कोठरी बनी हुई है। इस कोठरी की भी छत सपाट मिलती है। यह कोठरी अन्दर बाहर से सादी है। इस कोठरी तक पहुँचने के लिए सीढ़ी ज्ञात नहीं होती। बहुत सम्भव है कि यह कोठरी शिखर का एक अंग रही हो। गर्भगृह के प्रवेश द्वार (द्रष्टव्य, चित्र सं0 17 / परि0 17) मूर्तियों एवं अन्य अलंकरणों से सुसज्जित किया गया है। इसकी शाखाओं पर मिथुन का अंकन हुआ है। निचले भाग में एक ओर मकरवाहिनी गंगा तथा दूसरी ओर कूर्मवाहिनी यमुना का अंकन देखने को मिलता है। मंदिर की दीवारें भी विभिन्न प्रकार के अलंकरण से सजायी गयी है।

डॉ0 के0डी0 बाजपेयी ने मध्य प्रदेश के सतना जिले में उचेहरा के समीप पिपरिया नामक स्थान से एक विष्णु मंदिर तथा मूर्ति की खोज की थी।

यहाँ गर्भगृह का अलंकृत द्वार प्राप्त हुआ। द्वार स्तम्भों तथा सिरदल पर पूर्ण घट, पत्रावली, नगरमुख, व्याघ्र मुख आदि का अलंकरण देखने को मिलता है। द्वार पर नवग्रह, वराह अवतार का भी अंकन हुआ है। मंदिर के समीप से ही विष्णु की मूर्ति प्राप्त हुई है।[51] इसके साथ ही नागौद तथा जबलपुर के मढ़ी नामक स्थान से भी गुप्तकालीन मंदिरों के अवशेष प्राप्त होते हैं।

10. देवगढ़ का दशावतार मंदिर :

गुप्तकालीन मंदिरों का विवेचन तब तक अधूरा रहेगा जब तक देवगढ़ के दशावतार मंदिर (द्रष्टव्य, चित्र सं० 18/परि० 18) चर्चा न कर ली जाए। यह मंदिर उ०प्र० के ललितपुर जिले में बेतवा नदी के तट पर स्थित है। गुप्तकाल के सभी मंदिरों में यह मंदिर सर्वाधिक सुन्दर है। इस मंदिर में गुप्तकालीन मंदिर की सभी विशेषताएं प्राप्त होती हैं। विद्वान इसे देवगढ़ के विष्णु मंदिर के भी नाम से जानते हैं। इस मंदिर में गुप्तकालीन स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है।

इस मंदिर का निर्माण 40.5 फुट वर्गाकार चबूतरे पर हुआ है। इस चबूतरे (जगती पीठ) की ऊँचाई लगभग 4 फुट है। इस चबूतरे के चारों ओर 12 फुट लम्बी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मंदिर का गर्भगृह भीतर से लगभग 9 फुट और बाहर से 17 फुट वर्गाकार है। इस मंदिर का यदि शिखर गिरा नहीं होता, तो इसकी कुल ऊँचाई 37 फीट के लगभग होती। इस मंदिर के गर्भगृह का प्रवेश द्वार पश्चिम में मण्डप में खुलता है। यह प्रवेश द्वार अत्यन्त अलंकृत और आकर्षक है। शेष तीन द्वारों पर सुन्दर कलात्मक रथिकाएं हैं। इन रथिकाओं में गजेन्द्र मोक्ष, नर–नारायण और अनन्तशायी विष्णु के उच्चित्रण हैं। इस मंदिर की कुछ विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

- मंदिर के गर्भगृह का प्रवेश द्वार और सभा मण्डप के स्तम्भों का अलंकरण अन्य मंदिरों की तुलना में अत्यधिक आकर्षक, विस्तृत और भव्य है। द्वार–शिला पर शेषशायी विष्णु की सजीव मूर्तियाँ उकेरी गयी हैं। प्रवेश द्वार के दोनों पार्श्व में गंगा–यमुना की खड़ी मूर्तियाँ अंकित है। द्वार स्तम्भों पर द्वारपाल तथा द्वारपालिकाओं का अंकन भी महत्वपूर्ण है। मिथुनों की मूर्तियाँ भी यत्र–तत्र देखने को मिलती है। चौखटों पर निर्मित मूर्तियों का सुडौलपन तथा नवशिख हृदयग्राही है।

- गुप्तकाल के अन्य मंदिरों की छतें, जहाँ सपाट हैं, वही इस मंदिर में पिरामिडनुमा शिखर मिलता है, जो क्रमशः ऊपर की ओर पतला होता चला गया है। इस प्रकार यह मंदिर शिखरयुक्त मंदिर का पहला उदाहरण है। इसका शिखर ध्वस्त हो गया है और केवल निचला भाग ही उपलब्ध है। इससे ज्ञात होता है कि गर्भगृह के ऊपर एक कोठरी रही होगी और शिखर धीरे–धीरे सिकुड़ता हुआ ऊपर की ओर उठा होगा। सम्भव है कि शिखर के कोनों पर आमलकों का प्रयोग हुआ होगा औ कदाचित शिखर के ऊपर बड़ा आमलक रहा होगा।

- अन्य मंदिरों में एक मण्डप है जबकि अन्य मंदिरों में चार मण्डप हैं। ये मण्डप गर्भगृह के चारों दिशाओं में स्थित थे। सम्प्रति ये चारों मण्डप नष्ट हो चुके हैं।

- मंदिर की दीवारों पर पौराणिक कथाओं को निरूपित किया गया है। दीवारों पर शेषशैया पर शयन करते भगवान विष्णु, नर नारायण तथा गजेन्द्र मोक्ष के सुन्दर दृश्य देखने को मिलते हैं। इन मूर्तियों में रमणीयता, सुन्दरता, शुद्धता एवं शिष्टता है, जो देवगढ़ की विशेषता है।[52]

– जगती पीठ के चारों ओर रामायण तथा महाभारत के कई मनोहारी दृश्यों का अंकन प्राप्त होता है।

– यह मंदिर पत्थरों द्वारा निर्मित है।

इस प्रकार देवगढ़ का दशावतार मंदिर गुप्तयुगीन वास्तु का उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करता है। यह मंदिर वास्तुकला एवं अलंकरण की दृष्टि से भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस मंदिर के स्थापत्य एवं अलंकरण की प्रशंसा में प्रसिद्ध कलाविद् डॉ0 ए0के0 कुमारस्वामी ने लिखा है– "The well known Gupta Dasavatara temple at Deogarh near Lalitpur dating about 600, is of stone with plain walls, except that on three sides there are recessed sculptured panels, reprerenting the Gajendramoksha episode, Visnu-anantasayin, and a scene between two ascetics, and on the fourth a sculptured entrance with river goddess on the door-jambs. The basement was decorated with five panels, representing Ramayana scenes, an almost unique instance of an arrangement quite common in Java."[53] उत्तर भारत के नागर शैली के मंदिरों में शिखर का प्रादुर्भाव इसकी महत्वपूर्ण वास्तुगत विशेषता है। इस कारण प्रसिद्ध कलाविद् पर्सी ब्राउन ने स्वीकार किया है कि बहुत कम गुप्तकालीन स्मारक शिल्प कौशल तथा सुरुचि में देवगढ़ मंदिर का सामना कर सकते हैं। इस मंदिर के अनेक तत्व परवर्ती मंदिरों में ग्रहण किये गये।[54]

देवगढ़ के दशावतार मंदिर के निर्माण काल के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच मतभेद है। कनिंघम ने इस मंदिर का निर्माण काल 600 ईस्वी के आसपास माना है।[55] आर0डी0 बनर्जी ने इसकी तिथि 575 ईस्वी बताई है।[56] माधो स्वरूप वत्स ने इसका समय छठी शताब्दी के आरम्भ में बताया है।[57]

कुमारस्वामी के अनुसार इस मंदिर का निर्माण गुप्तकाल के अन्तिम वर्षों में हुआ।[58] वासुदेव शरण अग्रवाल[59] और पृथ्वी कुमार अग्रवाल[60] ने इस मंदिर का निर्माण काल 5वीं शताब्दी के मध्य निर्धारित किया है। उनका यह मत एक लेख पर आधारित है, जो मंदिर के प्रागंण में एक स्तम्भ पर अंकित मिला था।

उपरोक्त मतों की समीक्षा करने में कनिंघम महोदय का ही मत अधिक तर्कसंगत लगता है। पांचवीं शती के अन्त तक शिखर युक्त मंदिर शैली का विकास नहीं हुआ था। देवगढ़ के मंदिर में शिखर प्राप्त होता है तथा यह मंदिर भीतरगांव के मंदिर के क्रम में है। भीतरगांव के मंदिर की तिथि सातवीं शती के उत्तरार्द्ध की मानी गई है। अतएव देवगढ़ का मंदिर 600 ईस्वी के आसपास ही निर्मित है।

11. भीतरगांव का विष्णु मंदिर :

यह मंदिर (द्रष्टव्य, चित्र सं० 19/परि० 19) उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में स्थित है। यह मंदिर कानपुर से हमीरपुर जाने वाले मार्ग पर लगभग 30 किमी० की दूरी पर भीतरगांव से प्राप्त हुआ है। इस मंदिर की विशेषता है कि यह पत्थर द्वारा नहीं, वरन् ईंटों द्वारा निर्मित है और शिखरयुक्त है। मंदिर का बाहरी भाग ध्वस्त अवस्था में है। इस मंदिर के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उससे इस मंदिर के विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस मंदिर का निर्माण एक वर्गाकार चबूतरे पर किया गया था, जिस पर चढ़ने के लिए पूर्व की ओर सीढ़ियाँ और द्वार बने हुए थे। द्वार के भीतर एक छोटा मण्डप है। यह मण्डप वर्गाकार है। इस मण्डप की लम्बाई और चौड़ाई दोनों लगभग 6.5 फुट है। इस मंदिर का गर्भगृह भी वर्गाकार है। इस वर्गाकार गर्भगृह का आकार 15 वर्ग फुट है। मंदिर में दो प्रदक्षिणा मार्ग थे, जो ऊपर से ढके हुए थे। गर्भगृह के ऊपर "उत्तरीयकोष्ठ" बना हुआ था। वर्गाकार गर्भगृह, वर्गाकार मण्डप तथा दोनों को जोड़ते हुए लघु

अन्तराल इस मंदिर के प्रमुख अंग हैं।[61] देवगढ़ के समान ही यह मंदिर शिखर युक्त है। इसका शिखर लगभग 70 फुट ऊँचा था। शिखर में चैत्याकार मेहराब बनाये गये थे। सम्प्रति उनमें अब कुछ ही विद्यमान है। समस्त मंदिर का अन्तर्पृष्ठ सादा है और मूर्ति शिल्प की सजावट केवल बाह्य पृष्ठ पर की गई है। बाहरी दीवारों में बने ताखों में हिन्दू देवी देवताओं जैसे गणेश, आदि वराह, दुर्गा, नदी देवता आदि की मृण्मूर्तियाँ रखी गई थी। साथ ही साथ दीवारों को रामायण, महाभारत तथा पुराणों के विविध आख्यानों से सजाया गया है। मंदिर में प्रयुक्त रिलीफ तथा अन्य अलंकरण मिट्टी में बनाकर आग में अच्छी तरह से पकाये गये हैं। इसकी सम्पूर्ण रचना भव्य एवं आकर्षक है। शिखर के कारण यह मंदिर उत्तर गुप्तकालीन प्रतीत होता है।[62] इस मंदिर का निर्माण देवगढ़ मंदिर के बाद हुआ होगा। इस मंदिर की वास्तुगत विशेषता के संदर्भ में कृष्णदेव जी ने लिखा है– "The temple has a bold vedibandha consisted of Kumbha antarapatta and Kapotali mouldings. The Jangha is decorated with pilasters- rathika-bimbas, showing god' goddess, Siva, Gajantaka, Ganesa Uma-Mahesa, Vishnu, Durga and Various stories from the epics."[63]

12. अहिच्छत्र का मंदिर :

यह मंदिर उत्तर प्रदेश के बरेली जिले में अहिच्छत्र टीले की खुदाई से प्राप्त हुआ है। इस टीले की खुदाई 1940–44 के मध्य हुई थी। उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ से ईंटों द्वारा निर्मित शिव मंदिर का अवशेष प्राप्त हुआ है। वास्तु कला की दृष्टि से इस मंदिर का विशेष महत्व है क्योंकि इसका निर्माण एक के ऊपर एक बने हुए तथा क्रमशः छोटे होते गये ईंटों के वर्गाकार पांच चबूतरों पर किया गया है। भद्रपीठ या पीठिका का प्रत्येक तल अपने ऊपर चौकोर चबूतरे के चारों तरफ प्रदक्षिणापथ का कार्य करता था। अनुमानतः सबसे ऊपरी भद्रपीठ पर

गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित किया गया रहा होगा।[64] यहाँ के उत्खनन से मिट्टी की बनी अनेक बड़े आकार की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। इसमें मकरवाहिनी गंगा तथा कूर्मवाहिनी यमुना की विशाल मूर्तियाँ उल्लेखनीय है। ये मूर्तियाँ राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है। इस मंदिर का निर्माण किसी कुषाणकालीन वास्तु के ऊपर किया गया था। इसी कारण इसे गुप्तकाल में निर्मित होने का अनुमान किया गया है। वास्तुगत विशेषता तथा मृण्णफलकों के उच्चित्रण की शैली के आधार पर यह अनुमान किया गया है कि इसका निर्माण 450 से 550 ईस्वी के बीच हुआ होगा।

13. सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर :

यह मंदिर छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले में सिरपुर नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यहाँ लक्ष्मण मंदिर के अतिरिक्त राम मंदिर तथा जानकी मंदिर के अवशेष प्राप्त होते हैं। परन्तु ये दोनों ध्वस्त अवस्था में है। लक्ष्मण मंदिर भी लगभग ध्वस्त हो चुका है, केवल इसका गर्भगृह बचा है। यह मंदिर ईंटों द्वारा निर्मित किया गया है। इस मंदिर में भी शिखर तथा मण्डप रहा होगा, जो अब नष्ट हो गया है। इस मंदिर का वास्तु भीतरगांव के मंदिर के समान है। वास्तुकला की दृष्टि से इसका शिखर बहुत सुन्दर माना गया है। इसके गर्भगृह की बाहरी दीवारों पर सर्वत्र मेहराब बने हैं तथा गर्भ गृह के प्रवेश द्वार पर हिन्दू देवी देवताओं के मृण्मूर्तियों की शोभा दर्शनीय है।[65]

14. तेर का उत्तरेश्वर एवं कालेश्वर मंदिर :

महाराष्ट्र के शोलापुर जिले में तेर नामक स्थान से ये मंदिर काफी जीर्णशीर्ण अवस्था में प्राप्त हुए हैं। ये मंदिर ईंटों द्वारा निर्मित है तथा इनका आकार बहुत छोटा है।

15. रामगढ़ का मुण्डेश्वरी मंदिर :

यह मंदिर (द्रष्टव्य, चित्र सं0 20/परि0 20) बिहार के शाहाबाद जिले में रामगढ़ की पहाड़ी पर स्थित है। इसकी खोज सर्वप्रथम 1902–03 में ब्लाख महोदय ने की थी।[66] इस मंदिर का उल्लेख राखालदास बनर्जी ने भी किया है।[67] यह मंदिर अन्य मंदिरों से भिन्न इस कारण है कि यह अठपहल है। बाहर से इसका व्यास लगभग 37 फीट है। इस मंदिर में चार प्रवेश द्वार, चारों दिशाओं में स्थित थे। इनमें से अब कुछ नष्ट हो गये हैं। पूर्व की ओर जो प्रवेश द्वार है, उसकी चुनाई ईंटों से हुई है। इस मंदिर के पश्चिम के प्रवेश द्वार के अगल–बगल में शिव, उत्तर के प्रवेश द्वार के अगल–बगल में दुर्गा तथा किसी अन्य देवी, दक्षिण के प्रवेश द्वार में द्वारपाल एवं पूर्व के प्रवेश द्वार के अगल–बगल गंगा तथा यमुना की आकृति उत्कीर्ण मिलती है। इस मंदिर में मण्डप था, जो स्तम्भों पर आधारित था। राखालदास बनर्जी का मत है कि इस मंदिर में एक शिखर था।[68] परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इस मंदिर के प्रागंण में एक लेख अंकित है जिसमें किसी अज्ञात संवत् या शासन वर्ष 30 उत्कीर्ण है। अभिलेख की लिपि गुप्तकालीन प्रतीत होती है। इस कारण डॉ0 पी0एल0 गुप्ता का मत है कि यह मंदिर गुप्त युग का है।[69]

16. बोधगया का महाबोधि मंदिर :

यह मंदिर बिहार राज्य के बोधगया से प्राप्त हुआ है, जिसका पुनर्निर्माण अनेक बार किया गया। मूलरूप से यह मंदिर गुप्तकाल में निर्मित माना गया है। चीनी यात्री ह्वेगसांग जिसने कि सम्राट हर्षवर्द्धन के काल में भारत की यात्रा की थी 647 AD के आसपास स्वयं इस मंदिर को देखा था। उसने जिस समय इस मंदिर को देखा था, उस समय इसकी ऊँचाई 160–170 फीट थी और नीचे यह 50 फुट चौड़ा था। ईंटों से निर्मित इस पर चूने का पलस्तर किया गया

था। शिखर के गवाक्षों में अनेक पंक्तियां थी जिसमें बुद्ध की चमकती हुई प्रतिमायें रखी गयी थी।[70] इस मंदिर के चारों ओर प्रदक्षिणापथ मार्ग स्थित थे। यह मंदिर वास्तु की दृष्टि से बहुत कुछ मात्रा में कानपुर के भीतरगांव के विष्णु मंदिर के सदृश है। दोनों मंदिर ईंटों से निर्मित है और दोनों के शिखरों के किनारे सीधे हैं। दोनों में ऊपर कमरे तथा दोनों के द्वार के सिरे वृत्ताकार थे।[71]

17. नालन्दा का बौद्ध मंदिर :

इस मंदिर का निर्माण गुप्तशासक नरसिंह गुप्त बालादित्य ने करवाया था, जिसका उल्लेख ह्वेगसांग ने किया है। ह्वेगसांग के अनुसार इस मंदिर की ऊँचाई लगभग 200 फुट थी और स्वरूप तथा भव्यता में यह बोधगया के महाबोधि मंदिर के सदृश था।[72] यहाँ के उत्खनन से वर्गाकार चबूतरा प्राप्त हुआ है, जो संभवतः मंदिर का जगतीपीठ था। इस चबूतरे का स्वरूप वर्गाकार है। दूसरे शब्दों में इसकी लम्बाई और चौड़ाई दोनों बराबर (लगभग 60 फुट) है। ईंटों से निर्मित इस मंदिर के शिखर में गवाक्षों की पंक्तियाँ थी जिसमें बुद्ध की प्रतिमायें थी।

18. कुशीनगर का मंदिर :

गुप्तकाल में कुशीनगर (कसया) में एक विशाल बौद्ध मंदिर का निर्माण किया गया। उल्लेखनीय है कि कुशीनगर में भगवान बुद्ध को महापरिनिर्वाण प्राप्त हुआ था। इस कारण यह बौद्धों का तीर्थस्थल बन गया था। इस मंदिर में बुद्ध की एक भव्य मूर्ति महापरिनिर्वाण मुद्रा में प्रतिष्ठित की गई थी। इस मंदिर की मूर्ति पर एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख की लिपि गुप्तकालीन है जिसके आधार पर यह अनुमान व्यक्त किया गया है कि यह मंदिर उत्तर गुप्तकाल में निर्मित हुआ था। इस मंदिर के उत्खनन से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनसे ज्ञात

होता है कि यह मंदिर लगभग 45 फुट लम्बा तथा 30 फुट चौड़ा था। इसके गर्भ गृह का आकार 33 फुट लम्बा तथा 15 फुट चौड़ा है। इस मंदिर का निर्माण एक ऊँचे चबूतरे (जगती पीठ) पर किया गया था।

19. कहांव का मंदिर :

यह मंदिर देवरिया जिले के कहांव नामक स्थान से जैन ध्वज स्तम्भ के निकट से प्राप्त हुआ है। इसकी खोज बुकानन ने की थी। उन्हें दो ध्वस्त मंदिर के अवशेष मिले थे। इसे उन्होंने एक के ऊपर एक कोठरी के रूप में पाया था।[73] इस प्रकार से भीतरगांव तथा बोधगया के मंदिर के समान थे। कनिंघम को इस स्थान से केवल एक मंदिर का छेकन प्राप्त हुआ था, जिसका गर्भगृह वर्गाकार था।[74]

20. पवाया का मंदिर :

यह मंदिर मध्य प्रदेश के पवाया (पद्मावती) नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यह मंदिर तीन मंजिलों वाला है तथा इसकी सबसे नीचे की मंजिल ठोस एवं सादी है। ऊपर की दो मंजिलों का बाहरी भाग कई फलकों एवं अर्द्ध स्तम्भों के अलंकृत था और ऊपरी भाग में गवाक्षों की पंक्ति थी। विद्वानों के अनुसार इस मंजिल के ऊपर गर्भगृह था और उसके चारों ओर प्रदक्षिणापथ रहा होगा। ईंटों द्वारा निर्मित यह वर्गाकार मंदिर संभवतः विष्णु मंदिर था।[75]

21. खोह का शिव मंदिर :

मध्य प्रदेश के नागोद रियासत में खोह नामक स्थान से एक शिव मंदिर प्रकाश में आया है, जो एक चबूतरे पर निर्मित है। इसमें एक मुखी शिवलिंग है। इस मंदिर में शिवगणों की कुछ मूर्तियाँ थी। ये मूर्तियाँ प्रयाग संग्रहालय में रखी है। गर्भ गृह के प्रवेश द्वार पर गंगा तथा यमुना की सुन्दर प्रतिमायें उत्कीर्ण की गई हैं।

उपरोक्त मंदिरों के अतिरिक्त कुछ अन्य मंदिरों का भी उल्लेख गुप्तकालीन मंदिरों के प्रसंग में किया जाता है। कर्नाटक में एहोल नाम स्थान पर मेतुगी का जैन मंदिर स्थित है, जिसका निर्माण चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय के शासनकाल में रविकीर्ति ने करवाया था। इसका निर्माण 556 शक संवत् अर्थात् 634 ईस्वी का है। इस प्रकार यह गुप्तकाल के तुरन्त बाद का है। एहोल के ही समीप लाड़खान नामक स्थान से एक मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए है। इसकी निर्माण तिथि कुमारस्वामी ने 450 AD बताई है। इस मंदिर की वास्तु योजना गुप्तकालीन मंदिरों के समान है। गुप्त युग के लेखों में भी अनेक मंदिरों की चर्चा मिलती है। उदाहरण के लिए कुमार गुप्त प्रथम के विलसद लेख (गुप्त संवत् 96 – 415 ईस्वी) में ध्रुव शर्मा नामक एक ब्राह्मण के द्वारा स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मंदिर तथा धर्मसंघ बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है। मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले में स्थित तुमैन लेख (गुप्त संवत् 116 – 435 ईस्वी) में पांच बन्धुओं द्वारा मंदिर के निर्माण का उल्लेख है। मंदसौर लेख से ज्ञात होता है कि रेशम बुनकरों की श्रेणी ने दशपुर (मंदसौर) में सूर्य मंदिर का निर्माण करवाया था। यह लेख विक्रम संवत् 529 (473 ईस्वी) का है। इसी प्रकार स्कन्द गुप्त के इन्दौर ताम पत्र में सूर्य मंदिर का उल्लेख मिलता है। स्कन्द गुप्त के ही भीतरी स्तम्भ लेख में विष्णु मंदिर के निर्माण का उल्लेख है। दुर्भाग्यवश ये सभी मंदिर अब नष्ट हो चुके हैं।

(ख) गुहा मंदिर –

गुप्तकालीन स्थापत्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष "गुहा मंदिर" है। इनका निर्माण पहाड़ी चट्टानों को काटकर किया गया था। इसे "शैलकृत गुहा वास्तु" या "लयण" भी कहा जाता है। ये गुहा वास्तु श्रम तथा अर्थसाध्य है। इनके निर्माण में अत्यधिक मात्रा में श्रम तथा धन का व्यय होता है। उसी के

अनुपात में गुहा निर्माण में समय भी लगता है। पर्वतों की दीवार काट चट्टानों को खोखला कर उसमें कई मंजिलों के भवन बनाना आसान कार्य नहीं है। फिर भी धर्म की निष्ठा और कला की उद्भावना ने देश में बीसीयों गुहाओं का निर्माण किया और अजन्ता, बाघ, एलोरा, बादामी, भाजा, कोण्डाने, कार्ले, एलिफेन्टा, उदयगिरी आदि के गिरि मंदिर मनुष्य ने अपने परिश्रम और लगन से पर्वत काटकर खड़े कर लिये।[76]

पर्वतों को काटकर गुहा वास्तु के निर्माण की परम्परा मौर्यकाल में ही सम्राट अशोक के समय से आरम्भ हो गई थी। सम्राट अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ ने बिहार प्रान्त के गया जिले में बराबर तथा नागार्जुनी पहाड़ियों को काटकर आजीवक सम्प्रदाय के लोगों के लिए गुफाओं का निर्माण किया गया। अशोक के लेखों में गुहाओं के लिए कुभा शब्द का प्रयोग मिलता है। इन गुफाओं की छतों तथा दीवारों पर चमकीली पालिश मिलती है। अशोक के समय में बराबर पहाड़ी की गुफाओं में ''सुदामा की गुफा'' तथा ''कर्णचौपड़'' नामक गुफा सर्वाधिक प्रसिद्ध है। प्रथम का निर्माण उसने अपने शासनकाल के 12वें वर्ष में तथा दूसरे का निर्माण 19वें वर्ष में करवाया था। सुदामा की गुफा में दो कोष्ठ है और इनकी छतें ढोलनाकार है। दशरथ के समय में निर्मित गुफाओं में लोमेश ऋषि की गुफा उल्लेखनीय है। यह गुफा बराबर समूह की सबसे प्रसिद्ध गुफा है। इसका वास्तु विन्यास सुदामा गुफा के सदृश है। अन्तर सिर्फ इतना है कि इसका आन्तरिक कोष्ठ वर्गाकार न होकर अण्डाकार है। इस गुहा का प्रवेश द्वार उत्कीर्ण शिल्प से अलंकृत है। प्रवेश द्वार के दोनों पंखों पर तिरछे खड़े स्तम्भों पर गोल मेहराब है, जो बीच में एक स्तूप तथा उसके दोनों पार्श्वों में हाथियों की पंक्ति से अलंकृत है। बराबर पहाड़ी की चौथी गुफा को ''विश्व झोपड़ी'' भी कहा जाता है। इसका भी निर्माण अशोक के शासनकाल के 12वें वर्ष में हुआ था।

बराबर पहाड़ी से लगभग 1.5 किमी0 दूरी पर स्थित नागार्जुनी पहाड़ी की तीन गुफायें मिलती हैं। इन गुफाओं में "गोपिका गुफा" महत्वपूर्ण है, जिसे अशोक के पौत्र देवानांप्रिय दशरथ ने अपने अभिषेक वर्ष में निर्मित करवाया था। इसका आकार सुरंग के समान है, जिसके दोनों सिरों पर दो गोलमण्डप है। इसमें एक गर्भगृह तथा दूसरा मुख मण्डप जान पड़ता है। कालान्तर में इन्हीं गुफाओं के आधार पर पश्चिमी भारत में अनेक चैत्यगृहों का निर्माण किया गया।

मौर्य काल के पश्चात् भी गुफाओं का निर्माण जारी रहा। प्रसिद्ध कलाविद् वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है– "भारतीय कला में वास्तु एवं शिल्प का ऐसा आन्दोलन प्रायः अपनी उपमा नहीं रखता, जैसाकि इन पर्वतीय गुफाओं में मिलता है। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से लगभग 8वीं शती तक अर्थात् एक सहस्र वर्ष के लम्बे समय तक यह वास्तु शैली फलती फूलती रही। उत्तर में मगध से लेकर पूर्व में कलिंग तक और पश्चिम में सौराष्ट्र से लेकर दक्षिण में महाबलिपुरम् के मण्डपों तक इस शैली के लगभग 1200 नमूने मिले हैं, जो पांच केन्द्रों में बँटे हैं।[77] यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि इस वास्तु परम्परा का जन्म उत्तर भारत के बिहार में हुआ लेकिन इसका विकसित रूप दक्षिणी और पश्चिमी भारत में देखने को मिलता है। इस परम्परा में जो वास्तु बने हैं, वे मुख्यतः बौद्ध है। बौद्ध प्रवज्या पर बल देते थे। अतः उन्होंने प्राचीन ऋषि मुनियों का अनुकरण करते हुए एकान्त तथा निर्जन स्थानों पर वनों और उपत्यकाओं के बीच नदी तट की पहाड़ियों को काटकर अपने निवास के लिए संघाराम (विहार) और पूजा तथा उपासना के लिए चैत्य का निर्माण किया।

मौर्यकाल के पश्चात् शुंग काल में भी गुहा वास्तु के उदाहरण देखने को मिलते हैं। इस युग में अजन्ता के अनेक गुहाओं का निर्माण हुआ, जिसमें गुहा क्रम सं0 9 तथा 10 उल्लेखनीय है। सातवाहन युग में इस कला का

और अधिक विकास हुआ और इस समय भी पर्वत गुफाओं को काटकर चैत्यगृह तथा गुहा विहारों का निर्माण किया गया। इस काल के प्रमुख चैत्य गृह भाजा, कोण्डाने, पीतलखोरा, बेडसा, जुन्नार, नासिक आदि है जिनका विस्तृत उल्लेख प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में अध्याय–1 में किया जा चुका है।

गुप्तकाल में गुहा वास्तु के निर्माण की तकनीक अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। एक अन्य विशेष बात यह कि इस युग में बिना किसी द्वेष भाव के प्रायः एक ही केन्द्र पर हिन्दू तथा बौद्ध धर्म से सम्बन्धित गुहा भवनों का निर्माण कार्य चलता रहा। इस काल में अनेक स्थानों पर गुहाओं का निर्माण किया गया। ये गुहाएँ औरंगाबाद, अजन्ता, बाघ, वादामी, उदयगिरी, एलोरा, मन्दागिरी आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुप्तकाल में बौद्धों के इस वास्तु परम्परा का अनुकरण ब्राह्मण तथा जैन धर्म के लोगों ने भी करना आरम्भ कर दिया। फलतः बौद्ध गुहाओं के साथ–साथ इस युग में ब्राह्मण तथा जैन धर्म गुहाएँ भी निर्मित हुई।

औरंगाबाद की गुहाएँ मुख्य रूप से बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं। परन्तु यहाँ एक नयी गुहा प्रकाश में आई है जो हिन्दू धर्म से सम्बन्धित है। अजन्ता की अधिकांश गुहाएँ गुप्त–वाकाटक युग की हैं और ये गुहाएँ केवल बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। बाघ की गुहाएँ भी गुहाएँ केवल बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। वादामी की गुहाएँ हिन्दू तथा जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। उदयगिरी (मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित) की गुहाएँ मुख्यतः हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं। यहाँ केवल एक गुहा जैन धर्म से सम्बन्धित है। एलोरा की गुहाएँ बौद्ध, हिन्दू तथा जैन तीनों धर्मों से सम्बन्धित हैं। बिहार राज्य के भागलपुर जिले में स्थित मन्दागिरी की गुहाएँ ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं। इन गुहाओं का विवेचन निम्नलिखित हैं–

1. औरंगाबाद की गुहाएँ :

औरंगाबाद महाराष्ट्र राज्य में खांव नदी के तट पर स्थित है। इस नगर का प्राचीन नाम राजतडाग मिलता है। मुगल सम्राट औरंगजेब ने 1653AD में उसका नाम औरंगाबाद रखा था। इस शहर से लगभग 4 किमी0 की दूरी पर ये गुहाएँ स्थित है। ये गुहाएँ अजन्ता तथा एलोरा के गुहाओं की श्रृंखला में ही है। इन गुहाओं का निर्माण तीसरी शती ई0 से सातवीं शती ई0 के बीच हुआ। इन गुहाओं की संख्या 12 है, जिसमें एक चैत्य गृह तथा शेष विहार है। उल्लेखनीय है कि चैत्यगृह बौद्धों के पूजा गृह होते थे, जहाँ पर बुद्ध की प्रतिमा, स्तूप आदि की पूजा की जाती थी, जबकि विहार का निर्माण बौद्ध भिक्षुओं के आवास के लिए किया गया था। ये सभी गुहाएँ अजन्ता की गुहाओं के समान हैं परन्तु गुहा वास्तु की दृष्टि से अजन्ता के समान भव्य एवं सुन्दर नहीं है।

औरंगाबाद के गुहा संख्या एक में बुद्ध बोधिसत्व, पद्मपाणि, वज्रपाणि आदि की प्रतिमायें स्थापित की गई हैं। गुहा संख्या 2 और 3 महायान सम्प्रदाय से सम्बन्धित गुहाएँ हैं। इसके गर्भगृह में बुद्ध की प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य प्रतिमायें भी मिलती है। गुहा संख्या 3 में सुत्तसोम जातक की कथा उत्कीर्ण है। इसी गुहा में उच्चित्रित दम्पत्ति दर्शकों को अपनी ओर रिझाते हैं। गुहा सं04 चैत्य गृह है। गुहा संख्या 5 विशेष उल्लेखनीय नहीं है। गुहा संख्या 6 में बोधिसत्व, पद्मपाणि, वज्रपाणि की आकर्षक मूर्तियाँ विराजमान है। इसके गर्भ गृह में बुद्ध की विशाल मूर्ति चंवरधारी सेवकों के साथ चट्टान से काटी गई है। गुहा संख्या 7 का वास्तु की दृष्टि से विशेष महत्व है। यह गुहा अत्यधिक आकर्षक, सुन्दर एवं श्रेष्ठ है। इसमें धनपति जंबाल की विशालकाय मूर्ति है। इसके अतिरिक्त नृत्य करती हुई नर्तकी की प्रतिमा, जोकि वाद्य यंत्र लिये हुए हैं, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुहा संख्या 8 भग्न दशा में है। गुहा संख्या 9 में बुद्ध की

मूर्ति महापरिनिर्वाण दशा में है।

औरंगाबाद के इन गुहाओं के समूह में गुहा संख्या 6 के समीप से एक नवीन गुफा प्रकाश में आई है, जिसकी दीवार पर गणेश की मूर्ति है और उसके दोनों ओर चतुर्भुजा देवी की खड़ी प्रतिमायें हैं। यहीं पर पद्मासन मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा भी मिलती है और सप्तमातृकाओं की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण की गई हैं।

2. अजन्ता की गुहाएं :

अजन्ता (महाराष्ट्र) से कुल 30 गुहाएं प्राप्त हुई हैं जिनमें 29 पूर्ण एवं 1 अर्द्धनिर्मित मानी जाती है। अजन्ता के चित्रों का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्याय 2 में किया जा चुका है। वास्तु (स्थापत्य) के संदर्भ में इन गुहाओं का विवेचन निम्नलिखित है–

गुहा क्रम सं0 1 -

यह गुहा एक सुरक्षित विहारगृह है। यह अजन्ता समूह में शैल स्थापत्य का उत्कृष्ट गुहा मंदिर है। इसका मुख मण्डप, सभा मण्डप, अन्तराल, गर्भगृह तथा कोठिया सुरक्षित दशा में है। इसके मुख मण्डप की लम्बाई 64 फुट एवं चौड़ाई 9 फुट 3 इंच है। इसके बरामदे की ऊँचाई 13 फीट 6 इंच है। इसका सभा मण्डप वर्गाकार है, जिसकी लम्बाई 60 फीट है तथा चौड़ाई भी इतनी ही है। यह 20 स्तम्भों पर स्थित है। सभा मण्डप के वाजू एवं पिछले भाग में बौद्ध भिक्षुओं के रहने के लिए 14 अपवरक उत्खनित है। प्रवेश द्वार के ठीक सामने अन्तराल एवं गर्भ गृह स्थित है। अन्तराल 10 फुट लम्बा एवं 9 फुट चौड़ा है। गर्भ गृह का आकार भी वर्गाकार (20X20 वर्ग फुट) है, जिसमें भगवान बुद्ध धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में समाधिस्थ है। इनकी भव्य प्रतिमा के साथ ही उनके सेवकों की

बहुत उभारदार प्रतिमायें उकेरी गई हैं। इसका निर्माण काल पांचवीं–छठीं शती ईस्वी के बीच माना जाता है।

गुहा क्रम सं0 2 -

इस गुहा का निर्माण 500 से 550 ईस्वी के मध्य हुआ। यह गुहा भी एक विहार है तथा गुहा एक से थोड़ी छोटी है। इसका सभा मण्डप सभी गुहाओं के सभा मण्डप से बड़ा है। यह करीब 48'4'' लम्बा तथा 47'6'' चौड़ा है। इसमें 28 स्तम्भ है। इसके मुख मण्डप की लम्बाई लगभग 46' है तथा इसके दोनों छोर पर एक–एक कोठरी निर्मित है। सभामण्डप के बाजू तथा पिछले भाग में गर्भगृह के दोनों ओर कोठरियाँ उत्खनित है। इसके गर्भ गृह का आकार 14'X11' है। गर्भगृह में बोधिसत्व के साथ–साथ धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में भगवान बुद्ध की प्रतिमा स्थापित है।

गुहा क्रम सं0 3, 4 एवं 5 -

गुहा सं0 3, 4 एवं 5 वास्तु की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय नहीं है। गुहा सं0 3 एक अपूर्ण विहार है, जिसके द्वार मण्डप की लम्बाई 29 फुट तथा चौड़ाई 7 फुट है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुहा संख्या 4 की विस्तृत योजना के तहत् इसे प्रारम्भ में ही छोड़ दिया गया। गुहा संख्या 4 भी एक विहार है, जिसकी योजना बहुत भव्य है। इसके मुख मण्डप की लम्बाई 87 फीट तथा चौड़ाई 11.75 फीट है। इसका बरामदा 16 फुट ऊँचा है जो 8 स्तम्भों पर टिका है। इसके मुख मण्डप में दोनों तरफ एक–एक कोठरी है। इसका सभी मण्डप 87'X87' वर्ग फुट का एक वर्गाकार कक्ष है। इस गुफा से प्राप्त एक बुद्ध की प्रतिमा के पीछे उत्कीर्ण एक लेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण 550–600AD के बीच हुआ। गुहा संख्या 5 भी एक अपूर्ण विहार है, जिसका द्वार मण्डप 45 फुट लम्बा एवं 8 फीट चौड़ा है। यह चार पूर्ण स्तम्भों पर टिका है।

गुहा क्रम सं० 6 -

गुहा संख्या 6 दो मंजिलों वाली रचना है। अजन्ता गुहासमूह में केवल यही ऐसी गुहा है, जिसमें मंजिल है। प्रथम तल का द्वार मण्डप अब नहीं है। इसके प्रथम तल का सभामण्डप 53'4" लम्बा तथा 54'10" चौड़ा है। इसके गर्भ गृह में एक बुद्ध मूर्ति है तथा गर्भगृह के सामने तोरण है। सभा मण्डप से एक सीढ़ी ऊपर की मंजिल को जोड़ती है। ऊपर का सभामण्डप 13 फुट चौड़ा तथा 50 फुट गहरा है। इसकी ऊँचाई 11 फुट है तथा इसकी छत 12 स्तम्भों पर टिकी है। इसमें बुद्ध की मूर्ति विभिन्न मुद्राओं में उत्कीर्ण की गई है तथा इसका निर्माण काल छठवीं शताब्दी ईस्वी माना जाता है।

गुहा क्रम सं० 7 -

गुहा संख्या 7 विस्तृत द्वार मण्डप वाला एक विहार गृह है। इसके द्वार मण्डप की लम्बाई लगभग 63 फुट तथा चौड़ाई 27 फुट है। द्वार मण्डप के दोनों ओर कुछ ऊँचाई पर स्तम्भ युक्त मण्डप है।

गुहा क्रम सं० 8 -

यह गुहा भी एक विहार है जो अब भूस्खलन के कारण नष्ट हो गई है।

गुहा क्रम सं० 9 -

गुहा संख्या 9 का निर्माण द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में माना जाता है। यह एक चैत्यगुफा है, जो बौद्ध भिक्षुओं के उपासना के लिए खोदी गई। यह घोड़े के नाल के समान गोलाई लिए हुए खोदी गई है। इसके बीच में एक प्रवेश द्वार है और अगल–बगल में दो पार्श्व गवाक्ष है। इस चैत्य का पिछला भाग आयताकार है। इसके मण्डप में कुल 23 खम्भे हैं जो अठपहलू एवं सादे हैं। इसमें

न तो किसी प्रकार का आधार है और न ही शीर्ष। मण्डप और गलियारे को अलग करने वाले स्तम्भ अन्दर की ओर झुके हुए हैं।[78] इस गुफा में एक ठोस हार्मिका वाला पाषाण स्तूप निर्मित है।

गुहा क्रम सं0 10 -

यह गुहा अजन्ता का प्राचीनतम चैत्यगृह है। इसमें वसिष्ठीपुत्र कटहादि का एक लेख मिलता है। अभिलेख की लिपिगत विशेषता के आधार पर इसका निर्माण काल द्वितीय शताब्दी ई0पू0 माना गया है। यह गुफा अजन्ता के चैत्यगृहों में सबसे बड़ा चैत्यगृह है। यह लगभग 100 फुट लम्बा तथा 36 फुट चौड़ी है। इसकी ऊँचाई 36 फुट है। मण्डप एवं प्रदक्षिणापथ के गलियारे में कुल 39 अठपहलू स्तम्भ है।[79] इस गुहा का पिछला हिस्सा घोड़े के नाल की तरह गोल है। गुहा में पूजा के लिए एक विशाल स्तूप का निर्माण किया गया था। इस स्तूप की मेधि गोल और अंड लम्बा है। इसका छत्र नष्ट हो गया था, जो संभवतः लकड़ी का बना था। इस गुफा में उत्कीर्ण चित्रों को देखकर यह कहा जा सकता है कि कलाकारों ने इस कला मण्डप को सजाने के लिए अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है।

गुहा क्रम सं0 11 -

गुहा संख्या 11 गुप्तकालीन प्राचीनतम् विहार कहा जा सकता है। इसका निर्माण 400AD के आसपास हुआ होगा। इस विहार में छत को सहारा देने के लिए चार खम्भों का निर्माण किया गया है।

गुहा क्रम सं0 12 एवं 13 -

गुहा संख्या 12 एवं 13 एक विहार गृह है। दोनों गुहाओं का अग्र भाग नष्ट हो गया है तथा दोनों ही हीनयान सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। गुहा

संख्या 12 के मण्डप के अन्दर खम्भों का निर्माण नहीं हुआ। 13वीं गुफा 12वीं के तुरन्त बाद की है। इसके सभामण्डप की चौड़ाई 13 फुट 9 इंच तथा गहराई 16 फुट 6 इंच है। इसकी ऊँचाई 7 फुट है।

गुहा क्रम सं0 14 -

यह एक अपूर्ण विहार है, जिसका द्वार मण्डप 63 फीट चौड़ा 11 फीट गहरा तथा 9 फीट ऊँचा है।

गुहा क्रम सं0 15 -

इस गुहा मंदिर की उल्लेखनीय विशेषता विहार गृह के सभा मण्डप में खम्भों का अभाव है। इसका द्वार मण्डप 30 फीट चौड़ा तथा 7.50 फीट गहरा है। इसके सभा मण्डप का आकार 34 फीट चौकोर है तथा ऊँचाई 10 फीट है। सभा मण्डप के चारों ओर चार–चार कोठरियाँ उत्खनित है।

गुहा क्रम सं0 15(अ) -

गुहा संख्या 15(अ) वास्तु की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय नहीं है। इसके एक मात्र द्वार से सभा मण्डप में पहुँचा जा सकता है।

गुहा क्रम सं0 16 -

गुहा संख्या 16 के चित्र विश्व विख्यात है। इस गुहा मंदिर को जितनी ख्याति चित्रों के कारण प्राप्त है, उतना ही यह गुहा अपनी वास्तु योजना के लिए भी प्रसिद्ध है। इस गुहा का निर्माण वाकाटक नरेश हरिषेण के काल में 500 ईस्वी के लगभग हुआ था। यह एक विहार गुहा है जिसके तीन भाग है। प्रथम, अन्त प्रकोष्ठ जिसमें अजन्ता के समस्त गर्भगृहों से बड़ी बुद्ध मूर्ति है। यह प्रलम्ब पाद आसन में प्रवचन मुद्रा में है। दूसरा बाह्य मण्डप जिसमें भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ पूजा के लिए एकत्रित होते थे। इसके सभामण्डप के अगल बगल

भिक्षुओं के निवास के लिए दो–दो कोठरियाँ हैं। इस शिला गृह मंदिर की ओर जाने वाली सीढ़ियों के मार्ग में दो हाथियों के शिल्प ने अपनी भव्यता प्रदान की है।

गुहा क्रम सं0 17 -

वास्तु की दृष्टि से गुहा संख्या 17 भी गुहा संख्या 16 के समान है। यह गुहा भी विहार मंदिर है। अजन्ता से प्राप्त गुहाओं में यह सबसे अच्छी दशा में है। इस निर्माण वाकाटक राजा हरिषेण के काल में मण्डलाधीश ने करवाया था। इस गुहा मंदिर में स्थापत्य, शिल्प एवं चित्रकला का विकसित रूप देखने को मिलता है। इस गुहा के गर्भगृह में बुद्ध की एक भव्य मूर्ति है और इसके अगल–बगल दो सेवक हाथ में दीपक लिए हुए दिखाये गये हैं। दोनों की वेश–भूषा अलग–अलग ढंग की है।

गुहा क्रम सं0 18 -

यह गुहा एक विहार गुहा है, जिसकी लम्बाई 19 फुट 4 इंच तथा गहराई 8 फुट 10 इंच है।

गुहा क्रम सं0 19 -

गुहा संख्या 19 एक विशाल चैत्यगृह है। इसे शैल वास्तु का एक आदर्श उदाहरण माना जा सकता है। आकार में छोटा होते हुए भी इसके विभिन्न अंगों का निर्माण समानुपातिक एवं भव्य है। इसकी लम्बाई लगभग 44 फुट तथा चौड़ाई 25 फुट है। इस चैत्यगृह में काष्ठ कला से प्रस्तर कला की ओर वास्तु कला सम्बन्धी विकास पूर्ण होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसमें केवल एक प्रवेश द्वार है जिस पर तथा उसके अगल–बगल की दीवारों पर बुद्ध की मूर्तियाँ बनाकर सजाया गया है।[80] इसमें एक चौकोर मण्डप, अर्द्धवृत्ताकार स्तूप स्थल और

अगल–बगल दो गलियारे हैं। मण्डप और स्तूप को घेरे हुए 17 स्तम्भ कलात्मक रूप से उभारे गये हैं। इस गुहा में स्तूप गोल गुम्बद की तरह ऊँचे चबूतरे पर स्थित है। स्तूप के सबसे ऊपरी भाग पर हार्मिका एवं त्रिछत्र है। यह चैत्यगृह अपने सामान्य रूप रेखा में गुप्त पूर्व के चैत्य के समान है।[81]

गुहा क्रम सं0 20 -

यह गुहा एक विहार है, जिसके गर्भगृह में बुद्ध की मूर्ति है। इसके सभा मण्डप की चौड़ाई 28 फुट 2 इंच तथा गहराई 25 फुट 4 इंच है। सभा मण्डप में स्तम्भ का अभाव देखने को मिलता है।

गुहा क्रम सं0 21 -

यह गुहा भी एक विहार गुहा है, जिसके बरामदे में आकर्षक शिल्प देखने को मिलता है। यद्यपि इसका बरामदा नष्ट प्रायः है। परन्तु दोनों सिरों पर स्थित दीवार से लगे हुए अर्द्ध स्तम्भों को देखकर ऐसा लगता है कि इसके स्तम्भ अलंकृत रहे होंगे। इसका सभा मण्डप चौकोर है, जिसमें कुल 12 स्तम्भ है।

गुहा क्रम सं0 22 -

यह एक छोटा विहार है। इस सभा मण्डप का आकार 16 वर्ग फुट है तथा ऊँचाई लगभग 9 फुट है।

गुहा क्रम सं0 23 एवं 24 -

गुहा संख्या 23 एवं 24 एक अपूर्ण विहार है। गुहा संख्या 23 का सभा मण्डप 50 फुट 5 इंच चौड़ा तथा 57 फुट 8 इंच गहरा है। इसकी ऊँचाई 12 फुट 8 इंच है। गुहा सं0 24 के सभा मण्डप का मात्र एक स्तम्भ ही पूर्ण है।

गुहा क्रम सं0 25 -

यह एक अर्द्धसमाप्त विहार है तथा इसका उत्खनन कुछ ऊँाई पर हुआ है।

गुहा क्रम सं0 26 -

यह गुहा एक चैत्यगृह है और इसका आकार 19 के चैत्यगृह से बड़ा है किन्तु निर्माण शैली में विशेष अन्तर देखने को नहीं मिलता। इसके सामने का भाग टूट गया है। इसके चैत्य की खिड़की विशाल है। इसमें स्तूप और उस पर बुद्ध की भव्य मूर्ति उत्कीर्ण की गई है। इस चैत्यगृह के भीतरी मण्डप की लम्बाई लगभग 63 फुट चौड़ाई 34 फुट तथा ऊँचाई 30 फुट है। इसमें स्तूप की हार्मिका के ऊपर की यष्टि एवं छत्र वाला भाग नष्ट हो गया है।

गुहा क्रम सं0 27 एवं 28 -

गुहा संख्या 27 एवं 28 सादे गुहा विहार है। गुहा सं0 27 लगभग 42 फीट चौड़ी तथा 30 फीट गहरी है। यह अजन्ता समूह की अन्तिम गुहा है। गुहा सं0 28 केवल 6 खम्भों से युक्त बरामदे तक उत्खनित है।

गुहा क्रम सं0 29 -

यह अपूर्ण चैत्यगृह है।

गुहा क्रम सं0 30 -

यह एक विहार है तथा इसकी रचना सादी है। यह गुहा मलवा साफ करने के बाद प्रकाश में आई।

3. बाघ की गुहाएं :

बाघ से पूर्व 9 गुहाएं प्राप्त हुई हैं जिनके चित्रों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्याय–2 में किया जा चुका है। वास्तु (स्थापत्य) के संदर्भ में इन गुहाओं का विवेचन निम्नलिखित है–

गुहा क्रम सं० 1 -

यह गुहा 'गृह' के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें पतले बरामदे के साथ 24X22 फीट का एक आयताकार कक्ष है। इसकी ऊँचाई लगभग 8 फीट है। चट्टानें नरम होने के कारण गुहा के सामने का प्रमुख सभा मण्डप लगभग नष्ट हो चुका है। कक्ष के भीतर चार स्तम्भ है, जिसमें एक पूरी तरह से नष्ट हो गया है तथा शेष तीन नष्ट होने की अवस्था में है।

गुहा क्रम सं० 2 -

इस गुहा को 'पाण्डव गुहा' भी कहा जाता है। स्थानीय लोग इसे 'गोसाई गुहा' के नाम से भी जानते हैं। यह गुहा मंदिर बाघ की सभी गुहाओं में सबसे सुरक्षित दशा में है। यह एक चैत्य गुहा है, जिसकी लम्बाई लगभग 138 फुट है। इसके बीच में स्तम्भ युक्त मण्डप है और उसके दोनों ओर छोटी–छोटी कोठरियाँ हैं। पीछे की ओर चैत्यगृह है और सामने की ओर स्तम्भ युक्त बरामदा। गुहा के सामने का बरामदा नष्ट हो गया है। यह बरामदा छः पहल और अठपहल के अलंकृत स्तम्भों पर आधारित था। बरामदे में मूर्तियों को रखने के लिए आले बने हैं। एक आले में मूल मूर्ति अब भी है किन्तु इसे पहचाना नहीं जा सका है। दूसरे में गणेश की मूर्ति लाकर रख दी गई है। बरामदे से मण्डप के भीतर जाने के लिए तीन प्रवेश द्वार हैं और इन दरवाजों में शुद्ध हवा तथा प्रकाश के लिए दो खिड़कियाँ हैं।[82]

मण्डप की छत विशालकाय बीस स्तम्भों पर आधारित है तथा चार कोनों पर चार अर्द्धस्तम्भ भी है। इन स्तम्भों में कुछ अठपहल, कुछ सोलहपहल तथा कुल चौबीस पहल हैं। उनके कंठ तथा शीर्ष में भी अलंकरण मिलता है। सभा मण्डप के अगल–बगल भिक्षुओं के निवास हेतु 6 कोठरियाँ बनी हैं। ये कोठरियाँ वर्गाकार आकृति में है। इनके भीतर दीपक रखने के स्थान के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। सभा मण्डप में उत्तर दिशा की तीन कोठरियों के पीछे कुछ ऊँचाई पर अन्य कोठरियाँ हैं। इनमें आने–जाने के मार्ग हैं और ये किसी दूसरे लयण की है। इस प्रमुख सभा मण्डप के पीछे एक छोटा मण्डप मिलता है जिसकी छत दो स्तम्भों पर आधारित है। ये स्तम्भ अलंकृत हैं। इस मण्डप की दीवारों पर मूर्तन हुआ है। परन्तु यह अब नष्ट हो चुका है। इस छोटे मण्डप के पीछे गर्भगृह मिलता है। इसके द्वार के अगल–बगल एक–एक द्वारपाल और बगल की दीवार पर बुद्ध और उनके साथ दो अन्य आकृतियाँ उल्लिखित है। इस गर्भगृह में चट्टानों को ही काटकर स्तूप का निर्माण किया गया है, जिसका छत्र गर्भगृह के छत से लगा है।

गुहा क्रम सं० 2(अ) -

यह गुहा मंदिर गुफा सं० 2 की विस्तार योजना है क्योंकि अन्दर से कोठरियाँ जुड़ी हुई हैं। उत्खनन की कठिनाई के कारण यह स्थगित कर दी गई। इसके द्वार मण्डप की लम्बाई 94.5 फीट तथा चौड़ाई 37.5 फीट है।

गुहा क्रम सं० 3 -

गुहा सं० 3 को 'हाथी खाना' के नाम से जाना जाता है। यह एक विहार गुहा है। इसके मुख पट पर हाथियों की पंक्ति उत्कीर्ण थी जो अब गिरकर नीचे आ गई है। इसका वास्तु अन्य गुहाओं से भिन्न है। इसके प्रवेश मण्डप के सामने अठपहल स्तम्भ से युक्त एक लम्बा मण्डप मिलता है और उसके पीछे

दूसरा मण्डप है जो 8 स्तम्भों पर खड़ा है।[83] प्रवेश मण्डप की दीवारों में तीन कोठरियाँ हैं, प्रत्येक दिशा में एक कोठरी है। गलियारे से ये कोठरियाँ एक–दूसरे से अलग हो गई हैं। प्रवेश मण्डप के पीछे वाले मण्डप में पांच कोठरियाँ हैं। वे भी एक–दूसरे से अलग है। ये भिक्षुओं के निवास हेतु बनाई गई थी। बड़े मण्डप के पीछे एक और छोटा मण्डप है परन्तु इसके साथ कोई कोठरी नहीं है।

गुहा क्रम सं0 4 –

यह गुहा मंदिर गुहा सं0 3 से लगभग 245 फीट दूर है। यह बाघ समूह की गुहाओं में सबसे बड़ी गुहा है और पांचवीं गुहा से लगी हुई है। इस गुहा मंदिर को रंगमहल के नाम से भी जाना जाता है। चौथी एवं पांचवीं गुहा को जोड़ता हुआ 220 फीट लम्बा बरामदा था जिसकी चौड़ाई 14 फुट है। यह 22 विशाल स्तम्भों पर टिका था। सम्प्रति यह बरामदा और स्तम्भ गिरकर नष्ट हो गया है। केवल दोनों कोनों के अर्द्धस्तम्भ शेष हैं। इसकी वास्तु रचना लयण के समान है। दूसरे लयण की भाँति इसमें भी विशाल वर्गाकार कमरा है जो चारों पार्श्वों में बरामदे से घिरा है। इस कमरे के मध्य में चार स्तम्भ पहाड़ काटकर बनाये गये हैं तथा प्राकृतिक रूप से स्थित है। इस गुहा में कुल 28 कोठरियाँ निवास के लिए हैं। मण्डप के पीछे चैत्यगृह है। इसमें लगी कोठरी के पीछे एक और कोठरी है। इसी प्रकार दक्षिणी कोने की कोठरी के पीछे भी एक कोठरी है। बाघ समूह में निवास हेतु सबसे अधिक कोठरियाँ इसी गुहा में है। इस गुहा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें ऐसी मनोरम भावप्रद तथा सुन्दर चित्रकारी प्राप्त हुई है, जिसके कारण गुप्तकालीन कला इतनी उत्कृष्ट समझी जाने लगी और बाघ ने कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया।

गुहा क्रम सं0 5 -

इस गुहा मंदिर को स्थानीय लोग पाठशाला के नाम से जानते हैं। यह चौथी गुहा से बरामदे के द्वारा जुड़ी हुई है। अनुमान व्यक्त किया गया है कि चौथी और पांचवीं गुहा का निर्माण एक ही साथ हुआ। इस गुहा में एक प्रवेश द्वार तथा तीन खिड़कियाँ हैं। प्रवेश द्वार से जाने पर गुहा का विशाल सभा मण्डप मिलता है। यह मण्डप 95 फुट लम्बा तथा 44 फुट चौड़ा है। इसमें गोल सादे स्तम्भों की दो पंक्तियाँ हैं। ये सभी स्तम्भ एक ही ढंग के गोल तथा सादे हैं। इस गुहा मंदिर में कोई स्तूप, कोठरी या मूर्ति नहीं मिलती।

गुहा क्रम सं0 6 -

यह गुहा गुहा सं0 5 से एक 5 फीट चौड़े मार्ग द्वारा जुड़ी हुई है। यह गुहा 46 फुट का एक वर्गाकार मण्डप है। गुहा के सामने एक विशाल स्तम्भों वाला लम्बा बरामदा रहा होगा परन्तु अब यह नष्ट हो गया है। इसमें एक प्रवेश द्वार और उसके अगल–बगल एक खिड़की है। बीच में चार अठपहल खम्भे हैं। सभा मण्डप में निवास के लिए एक ओर तीन कोठरियाँ हैं और दूसरी ओर दो कोठरियाँ हैं।

गुहा क्रम सं0 7 -

इस गुहा की वास्तु योजना गुहा सं0 2 के समान है। इसका द्वार मण्डप लगभग 81 फुट लम्बा तथा 10.50 फुट चौड़ा है। यह अष्टभुजी 6 स्तम्भों पर आधारित है। इसके द्वार मण्डप से सभा मण्डप में प्रवेश हेतु तीन दरवाजे हैं। मुख्य द्वार लगभग 7 फीट चौड़ा तथा पूरक द्वार चार फीट चौड़ा है। मुख्य द्वार के दोनों ओर एक–एक खिड़कियाँ हैं, जिसके माध्यम से गुहा के अन्दर हवा तथा प्रकाश पहुँचता है।

गुहा क्रम सं0 8 -

इस क्षतिग्रस्त गुहा का मुख्य प्रवेश द्वार बंद है।

गुहा क्रम सं0 9 -

इस गुहा के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं है, बस इसकी केवल गणना भर होती आई है। इस गुहा का अस्तित्व मुकुल डे ने स्वीकार किया है।[84]

4. बादामी की गुहाएं :

बादामी की गुहाएं दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में बीजापुर जिले में आईकोल के निकट स्थित है। बादामी नगर के दक्षिणी–पूर्वी छोर पर एक पहाड़ी की सीधी खड़ी चट्टान को खोदकर इन गुहाओं का निर्माण हुआ है। यहाँ की गुहाएँ मुख्यतः हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं। केवल एक गुहा जैन धर्म से सम्बन्धित है। इन गुहाओं का निर्माण चालुक्य नरेशों के शासनकाल में हुआ। इन गुहाओं की संख्या 4 है तथा ये अत्यन्त विकसित एवं उन्नत शैली में निर्मित है। इन गुहाओं में अग्रमण्डप के अतिरिक्त खुला प्रांगण रहा होगा। ये चारों गुहाएं आपस में मिलती–जुलती प्रतीत होती हैं। गुहा के अन्दर प्रवेश के लिए सुन्दर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। स्थापत्य शैली के अनुरूप यहाँ सभी गुहाओं के सन्मुख स्तम्भ युक्त बरामदों के अतिरिक्त एक विशाल स्तम्भ युक्त कक्ष तथा सबसे पीछे एवं अधिक गहराई में गर्भ गृह बनाया गया है। इन गुहाओं में सुन्दर चित्रकारी की गई है जिसे खोजने का श्रेय डॉ0 स्टेला क्रमरिश को है।[85] ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकारों ने अपनी सारी प्रतिभा तथा परिश्रम का प्रयोग इन गुहाओं के अंतरंग को सजाने में किया है। निःसन्देह रूप से यहाँ का "मूर्तिशिल्प" संरचना से कहीं अधिक विकसित परिलक्षित होता है।[86]

5. उदयगिरी की गुहाएं :

उदयगिरी की गुहाएं मध्य प्रदेश के ऐतिहासिक नगरी विदिशा से लगभग 3 किमी0 की दूरी पर दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है। यहाँ लगभग 1.5 मील एक लम्बी पर्वत श्रृंखला है, जिसके बीच का भाग नीचा है। इसमें पहाड़ के आर–पार एक सकरी गली कटी हुई है। यह अनुमान व्यक्त किया गया है कि इसे किसी समय फाटक लगाकर बंद किया जाता रहा होगा। कारण कि उत्तर भाग में फाटक के अवशेष अभी भी विद्यमान है। पहाड़ी का पत्थर नरम और परतदार है और इसी का लाभ उठाकर इसके उत्तर पूर्वी भाग में 10–12 लयण काटे गये थे।[87] अधिकांश गुहाएं छोटी हैं किन्तु जो भी हैं उनके द्वार के सामने चिनाई कर बरामदे और मण्डप ईट पत्थर और चूने से बनाये गये।

उदयगिरी समूह में कुल नौ गुहाएं हैं। एक को छोड़कर सभी गुहाएं मुख्यतः ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं। एक गुहा जैन धर्म से सम्बन्धित है। इन गुहाओं में से दो गुहा में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल का लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण 381 से 412AD के बीच हुआ होगा। एक गुहा में गुप्त संवत् 106 का लेख है परन्तु किसी शासक का नाम नहीं मिलता। इसे कुमारगुप्त प्रथम के काल का कहा जा सकता है।

उदयगिरी की पहली गुहा पहाड़ी की आधी ऊँचाई पर स्थित है। इस गुहा को उदयगिरी की गुहाओं में सबसे प्राचीन माना जाता है। इसकी छत स्वतः प्राकृतिक पर्वत से निकले हुए अग्रभाग से बनी है। इसमें लगभग 7 फीट लम्बा तथा 5 फीट चौड़ा कक्ष है। सामने चार स्तम्भ है तथा स्तम्भों के बीच में लगभग 3 फुट का अन्तर है और इधर–उधर के खम्भे केवल एक फुट के अन्तर पर है। पीछे की दीवार के चट्टान को काटकर कोई प्रतिमा बनाई गई थी परन्तु यह अब नष्ट हो गई है।

उदयगिरी की दूसरी गुहा भूमितल के निकट है। यह लगभग नष्ट सी हो गई है। सामने की दीवारें भी नष्ट हो गई हैं। यह गुहा लगभग 7.5 फुट लम्बी तथा 5.25 फुट चौड़ी है।

तीसरी गुहा दूसरी गुहा से लगभग 36 फीट की दूरी पर स्थित है। यह गुहा दूसरी गुहा के दायीं ओर स्थित है। यह गुहा लगभग 13.5 फुट चौड़ी तथा 11 फुट लम्बी है। इसका प्रवेश द्वार आकर्षक एवं अलंकरण युक्त है। इसकी ऊँचाई लगभग 6 फुट है। इस गुहा के प्रवेश द्वार पर वीणावादक और सितारवादक अंकित है। वीणावादक का अंकन होने के कारण कनिंघम ने इसे "वीणा गुफा" का नाम दिया है। इसके भीतर कक्ष में एकमुखी शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं। गुफा के समक्ष एक चुना हुआ मण्डप था। यह मण्डप अगल–बगल दो छोटे तथा बीच में दो स्तम्भों के सहारे खडत्रा था। यह मण्डप एक अन्य खुले गुहा में आगे तक चला गया है जिसमें अष्टमातृकाएँ उत्कीर्ण हैं।

चौथी गुहा में विश्व प्रसिद्ध वराह का उच्चित्रण हुआ है। यह गुहा वराह के उच्चित्रण के कारण ही अधिक प्रसिद्ध है। यह गुहा खुली हुई है। इसकी लम्बाई 21 फुट, चौड़ाई 3 फुट तथा ऊँचाई लगभग 12 फुट है। इस गुहा में वराह वैजयन्ती माला पहने आलीढ़ मुद्रा में खड़े हैं। उनका दाहिना हाथ कमर पर तथा बाया हाथ घुटने पर है। बायां पैर शेषनाग की कुंडलियों पर रखा दिखाया गया है। वराह की दाढ़ पर पृथ्वी की प्रतिमा खड़ी दिखाई गई है। उल्लेखनीय है कि पृथ्वी का उद्धार करने के लिए भगवान विष्णु ने वराह अवतार लिया था। वराह के दोनों ओर गंगा यमुना के अवतरित होना और मिलकर समुद्र में जा मिलने का सुन्दर उच्चित्रण हुआ है। गंगा और यमुना नदी धाराओं के बीच क्रमशः मकर और कच्छप पर खड़ी घट लिए नारी रूप में अंकित की गई है और समुद्र को वरूण के रूप में पुरुष रूप में घट लिए दिखाया गया है।[88] इस गुफा में

गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य" के सन् 401 का लेख अंकित है। इससे ज्ञात होता है कि "सारी पृथ्वी जीत लेने पर सम्राट चन्द्रगुप्त यहाँ आये और सन्धि विग्रहिक सचिव वीरसेन शैव ने यह लेख उत्कीर्ण करवाया था।

पांचवीं गुहा का निर्माण भी सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य" के शासनकाल में हुआ। इस गुहा में चन्द्रगुप्त के सामन्त सनकानिक का अभिलेख प्राप्त होता है। इस गुहा की लम्बाई 13.5 फुट तथा चौड़ाई 12 फीट है। प्रवेश द्वार के सामने पाषाण को काटकर बनाया गया एक बरामदा है। यह बरामदा लगभग 22 फीट लम्बा तथा 7 फीट चौड़ा है। इस बरामदे के दक्षिणी छोर पर गुहा का द्वार है। यह द्वार अलंकरण युक्त है। द्वार पर गंगा तथा यमुना दोनों को मकरवाहिनी होकर खड़ा दिखाया गया है।

छठी गुफा को 'तवा गुहा' भी कहा जाता है। इसका वास्तु स्तूप के समान है। दूसरे शब्दों में आधार चौकोर है और छत तवा नुमा पत्थर की है। इस गुहा में एक कमरा है जिसकी लम्बाई लगभग 13 फीट तथा चौड़ाई 9.83 फीट है। इस कक्ष के पीछे की दीवार पर एक लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इसे चन्द्रगुप्त के सचिव पाटलिपुत्र निवासी वीरसेन ने निर्मित करवाया था। गुहा के सामने एक मण्डप था। परन्तु यह अब नष्ट होगया है। द्वार के दोनों ओर द्वारपालों का अंकन है। इस गुहा के बगल से पहाड़ी के आर–पार एक सकरी गली बनी है। यह गली लगभग 93 फीट लम्बी है। इस गली के दोनों ओर पहाड़ी दीवारों पर मूर्तियों का अंकन हुआ है। इन्हीं मूर्तियों में शेषनाग की शैया पर सीधे भगवान विष्णु का अंकन है। गरूण तथा सात अन्य आकृतियाँ उसके निकट हैं।

छठीं गुफा के आगे सातवीं गुहा है। इस गुहा की लम्बाई 9.36 फीट तथा चौडत्राई 9 फीट है। इसमें एक ओर गणेश तथा दूसरी ओर माहेश्वरी

का उच्चित्रण है। इसके द्वार पर अर्द्धस्तम्भ बना है जिस पर घण्टाकार शीर्ष है।[89]

छठीं गुहा के उत्तर–पूर्व में आठवीं गुहा है। यह उदयगिरी के गुहा मंदिरों की श्रृंखला में सबसे बड़ी गुहा है। अलक्जेण्डर कनिंघम ने इसे 'अमृत गुहा' का नाम दिया है। इसकी लम्बाई 20.25 फीट तथा चौड़ाई 17.70 फीट है। इसकी भीतरी छत अन्य गुहाओं से भिन्न है। इसकी छत को संभालने के लिए चार अलंकृत स्तम्भ मिलते हैं। इस गुहा के सामने तीन द्वारों वाला मण्डप था जिसमें कालान्तर में एक बड़ा कक्ष जोड़ दिया गया, जिससे यह 18.75 वर्ग फुट का वर्गाकार मण्डप बन गया।[90] इस गुहा की छत में फुल्लकमल का अलंकरण है। गुहा के प्रवेश द्वार के ऊपर दोनों ओर मकरवाहिनी की प्रतिमा है। बीच में समुद्र मंथन का दृश्य उत्कीर्ण किया गया है। इस गुहा की विशेषता एवं अलंकरण से ज्ञात होता है कि इस गुहा का निर्माण उदयगिरी की गुहाओं में सबसे बाद में हुआ होगा। इसके भीतर एक शिवलिंग प्रतिष्ठित है किन्तु इसके स्तम्भ पर विक्रम संवत् 1093 (1030 ईस्वी) का एक लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि उस समय विष्णु की उपासना होती थी।

उदयगिरी के उत्तर–पश्चिमी किनारे पर एक अन्य गुहा है, जिसे नवी गुहा का नाम दिया गया है। यह लगभग 46.5 फुट लम्बी तथा 13 फुट चौड़ी है। इसमें अनगढ़ पत्थर चुनकर दीवारें बनाई गई है। इस गुहा में 5 कक्ष है। इसमें एक लेख मिलता है जो गुप्त संवत् 106 अर्थात् 425AD का है। इसके द्वार पर पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है। उदयगिरी की गुहाओं में एकमात्र यही ऐसी गुहा है जो जैन धर्म से सम्बन्धित है।

उदयगिरी की गुहाएँ वास्तु विधान की दृष्टि से अन्य बौद्ध गुहाओं से भिन्न हैं। पूरी गुहा को बौद्ध गुहाओं की भाँति चट्टान को काटकर नहीं बनाया गया है बल्कि उसके मात्र भीतरी भाग को पर्वत को तराशकर बनाया गया है और

सामने के भाग (मण्डप) को प्रस्तर खण्डों को चिनकर बनाया गया है। मण्डप का चिनकर बनाया जाना ही इन गुहाओं की प्रमुख विशेषता है।[91] ये गुहायें बौद्ध गुहाओं की तुलना में कम आकर्षक प्रतीत होती हैं। इनमें बौद्ध गुहाओं के समान भव्यता, कला की सुकुमारता एवं अलंकरण देखने को नहीं मिलता।

6. एलोरा की गुहाएं :

एलोरा की गुहाएं महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में अजन्ता से लगभग 97 किमी0 की दूरी पर एलोरा (वैरूल) ग्राम के समीप स्थित है। औरंगाबाद जिला मुख्यालय से इन गुहा मंदिरों की दूरी लगभग 30 किमी0 है। इस गाँव के पूर्व दिशा में पहाड़ियों को काटकर इन गुहाओं का निर्माण किया गया। ये लगभग 3 किमी0 के लम्बे क्षेत्र में फैली है। यहाँ पर कुल 33 गुहाएँ हैं, जो हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों से सम्बन्धित है। कुछ विद्वानों का मत है कि यहाँ गुहाओं की संख्या 34 है। गुहा क्रमांक 1 से लेकर 12 तक बौद्ध धर्म की गुहाएँ हैं। गुहा सं0 13 से 28 तक हिन्दू धर्म की गुहाएँ हैं। गुहा सं0 29 से 33 तक जैन गुहाएँ हैं। बौद्ध धर्म की गुहाएँ अन्य दो धर्मों से पहले की गुहाएँ हैं। ये गुहाएँ पहाड़ी के दक्षिणी छोर पर स्थित है। इनका निर्माण 550–750 ईस्वी के बीच माना गया है। इन वारह बौद्ध गुहाओं में केवल पांच गुहाएँ प्राचीनतम् है और इन्हें गुप्त काल का माना जाता है। पांचवीं गुहा के अतिरिक्त अन्य सभी गुहाएँ अजन्ता की गुहाओं के समान वर्गाकार हैं। पांचवीं गुहा वर्गाकार न होकर आयताकार है।[92] ब्राह्मण गुहाओं का काल 650 से 750 ईस्वी माना गया है। जैन धर्म की गुहाओं का काल 750 से 10वीं शती ईस्वी माना गया है। यद्यपि ब्राह्मण और जैन धर्म की गुहाएँ गुप्तकाल के बाद की हैं, फिर भी इनका उल्लेख कर देना प्रासंगिक होगा। एलोरा की गुहाएँ प्राचीन भारत के धार्मिक सहिष्णुता, धर्म निरपेक्षता का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। वास्तु (स्थापत्य) के संदर्भ में इन गुहाओं

का क्रमवार विवेचन निम्नलिखित है–

गुहा क्रम सं0 1 -

यह एलोरा का प्राचीनतम् विहार गृह है। इसमें दाहिने हाथ की ओर सामने की दीवार में भिक्षुओं के निवास हेतु छोटी कोठरियाँ बनी हैं।

गुहा क्रम सं0 2 -

यह गुहा मंदिर चैत्य एवं विहार का सम्मिलित स्वरूप प्रस्तुत करता है। गुहा के अन्दर चारों तरफ गलियारा मिलता है, जिसे छोड़कर सभा मण्डप की लम्बाई–चौड़ाई 48 वर्ग फुट है। इस सभा मण्डप की छतें बारह स्तम्भों पर टिकी हैं। ये स्तम्भ अलंकृत है। इसमें दाहिनी ओर धनपति जम्माल की प्रतिमा मिलती है और गर्भगृह में बुद्ध की मूर्ति प्रलम्भ पद्मासन में बैठी हुई है।

गुहा क्रम सं0 3 -

यह एक विहार गृह है जिसके मण्डप का क्षेत्रफल 48 वर्ग फुट है।

गुहा क्रम सं0 4 -

यह भग्नावस्था में है जिसकी लम्बाई चौड़ाई 34'X35' है।

गुहा क्रम सं0 5 -

गुहा सं0 5 का नाम 'महानवाद' (महारवाड़ा) है। यह एक विहार है। यह एलोरा की बौद्ध गुफाओं में सबसे बड़ी गुफा है। इसके सभा मण्डप के चारों ओर एक गलियारा मिलता है। इसकी लम्बाई लगभग 121 फीट तथा चौड़ाई 65 फीट है। सभा मण्डप के दोनों ओर स्तम्भों की लम्बी पंक्ति मिलती है। सभा मण्डप के दाये–बायें 20 कोठरियाँ हैं। इसका गर्भ गृह पिछले हिस्से में है, जिसमें आसनस्थ बुद्ध मूर्ति स्थापित है।

गुहा क्रम सं0 6 -

यह गुहा भी एक विहार है जिसके सभा गृह का क्षेत्रफल 24X39 वर्ग फुट है। इसके सभा मण्डप के स्तम्भों पर विशेष अलंकरण नहीं मिलता। इस गुहा के गर्भ गृह में प्रलम्भ पद्मासन में धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध की विशाल मूर्ति स्थापित है। गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर बोधिसत्व अवलोकितेश्वर तथा दूसरी ओर व्रजपाणि की प्रतिमा मिलती है। इस गुहा में महामयूरी (ज्ञान की देवी) की प्रतिमा भी पाषाण से काटी गई है।

गुहा क्रम सं0 7 -

यह एक सादा विहार है जिसमें प्रवेश हेतु गुहा सं0 6 से सीढ़ियाँ गई है।

गुहा क्रम सं0 8 -

यह गुहा भी विहार है जिसका मध्य भाग 27'X24' वर्ग फीट है। इसके गर्भगृह के सामने लगे स्तम्भ आकर्षक दिखते हैं। इसमें बुद्ध बोधिसत्व तथा महामयूरी की प्रतिमायें मिलती है। गर्भगृह के लिए प्रदक्षिणापथ है।

गुहा क्रम सं0 9 -

गुहा सं0 9 एक सादी गुहा है। यह एक विहार गुहा है। इसमें आसन पर पैर लटकाये एक बुद्ध की मूर्ति बैठी हुई दिखाई गई है।

गुहा क्रम सं0 10 -

एलोरा की बौद्ध गुहाओं में गुहा सं0 10 केवल ऐसी गुहा है जो चैत्यगृह है। स्थानीय भाषा में इसे 'सुतार झोपड़ी' के नाम से जाना जाता है। इस चैत्य मंदिर में चैत्य स्थापत्य का सर्वश्रेष्ठ चित्रण दिखाई पड़ता है। इस चैत्यगृह के मुख्य प्रवेश द्वार की रूपरेखा बहुत कुछ मौलिक है। प्रवेश द्वार तथा वातायन

का छज्जा प्राचीन चैत्यगृहों की शैली से भिन्न है। प्रवेश द्वार को मूर्तियों के द्वारा भलीभाँति अलंकृत किया गया है। स्तम्भों पर बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। यह चैत्यगृह शिल्प के देवता विश्वकर्मा को समर्पित है।[93] चैत्य गृह में विशाल स्तूप है जिस पर बुद्ध की मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। बुद्ध मूर्ति धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में प्रलम्भ पद्मासन में है। स्तूप के लिए प्रदक्षिणापथ भी मिलता है। यहाँ एक छोटा लेख अंकित है। इस लेख में बौद्ध धर्म वचन उत्कीर्ण हैं।

गुहा क्रम सं0 11 -

यह एक विहार है, जिसे ''दोनताल'' के नाम से जाना जाता है। यह एक तीन मंजिली रचना है जिसमें हर मंजिल पर बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियाँ मिलती हैं। इसके सामने का बरामदा लगभग 100 फुट लम्बा तथा 9 फुट चौड़ा है।

गुहा क्रम सं0 12 -

यह एलोरा बौद्ध समूह की अन्तिम गुहा मानी जाती है। जिसे 'तीन ताल' का नाम दिया गया है। निचले तल के सभामण्डप में कुल 30 खम्भे हैं तथा इसके पीछे ''देवगृह'' मिलता है। यहाँ बोधिसत्व एवं तारा देवी की अनेक मूर्तियाँ पत्थरों को काटकर बनाई गई हैं। इस गुहा में बौद्ध धर्म के परवर्ती रूप का साक्ष्य दिखाई देता है।

गुहा क्रम सं0 13 -

यह एक सादी गुहा है जिसका निर्माण विश्रामालय के रूप में किया गया है।

गुहा क्रम सं0 14 -

गुहा सं0 14 को ''ब्रह्म गुहा'' भी कहा जाता है। यह गुहा ब्राह्मण

गुहाओं में सबसे प्राचीन है। इसमें एक सभामण्डप तथा गर्भगृह मिलता है। सभा मण्डप में सोलह स्तम्भ है। ये स्तम्भ अपने घट पल्लव और अलंकरण के लिए विशेष रूप से आकर्षक हैं। इसके मुख्य द्वार पर गंगा तथा यमुना का भव्य शिल्प है। संभवतः इसके गर्भ गृह में एक शिवलिंग रहा होगा। मण्डप की बायीं ओर वैष्णव सम्प्रदाय की कलाकृतियाँ है और दाहिनी ओर शैव सम्प्रदाय की। बायीं ओर दुर्गा, गजलक्ष्मी, वराह अवतार, श्री तथा सरस्वती सहित विष्णु तथा विष्णु और लक्ष्मी की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। दाहिनी ओर अंधकासुर का वध करते शिव, ताण्डव नृत्य, शिव पार्वती, रावण द्वारा कैलाश उठाने की चेष्टा का दृश्य उत्कीर्ण है।

गुहा क्रम सं0 15 -

यह गुहा मंदिर "दशावतार" के नाम से जाना जाता है। इसका निर्माण काफी ऊँचाई पर किया गया है। इसके अग्रभाग में एक शिलालेख मिलता है, जिससे राष्ट्रकूट वंश के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इस गुहा की संरचना दो मंजिली है जिसमें दूसरी मंजिल पर सीढ़ियों के माध्यम से जाया जा सकता है। गुहा के आंगन का निर्माण चट्टानों को काटकर किया गया है। दूसरी मंजिल पर गर्भगृह है जिसमें शिवलिंग स्थापित है। बाहर की ओर नन्दी है। दूसरी मंजिल की दीवारें शिव के संहारक तथा विष्णु के सृजनात्मक रूप की शिल्पाकृतियों से भरी पड़ी हैं।

गुहा क्रम सं0 16 -

गुहा सं0 16 "कैलाश मंदिर" के नाम से प्रसिद्ध है, जो एलोरा का प्रमुख आकर्षण है। यह एक दो मंजिला शिव मंदिर है जो एक ही चट्टान को काटकर बनाया गया है। इस विशाल शिव मंदिर की निर्माण राष्ट्रकूट शासक कृष्ण प्रथम ने अपनी विजयों को चिरस्थायी रखने के लिए करवाया था।[94] यह मंदिर दक्षिण भारतीय पल्लव शैली में निर्मित है तथा अपने पूर्ववर्ती कांचीपुरम् के

"कैलाश मंदिर" तथा पदृडकल के "विरूपाक्ष मंदिर" से मिलता जुलता है। इस मंदिर के विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यह यूनान के एथेन्स नगर में स्थित पार्थेनन की लम्बाई चौड़ाई के बराबर तथा ऊँचाई में उससे डेढ़ गुना है। अनुमानतः इसके निर्माण में एक सौ वर्ष का समय लगा।[95] यह मंदिर धर्मनिष्ठा, पवित्रता, भव्यता और शिल्प सौन्दर्य का अनूठा उदाहरण है। इस मंदिर का निर्माण एक विशाल शिलाखण्ड को ऊपर से नीचे की ओर काटकर किया गया है। संभवतः इसके निर्माण में तीस–पैतीस लाख घन फुट पत्थर काटकर निकाले गये। इस मंदिर के प्रांगण की लम्बाई 261 फुट तथा चौड़ाई 138 फुट है। मुख्य शिव मंदिर लगभग 136 फुट लम्बा तथा 90 फुट चौड़ा है और आंगन की तल भूमि से मंदिर के शिखर की ऊँचाई 66 फीट है।

इस मंदिर के ऊपर की मंजिल में मुख्य शिव मंदिर है जिसके गर्भगृह में विशाल शिवलिंग प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के सामने 16 स्तम्भों वाला विशाल सभा मण्डप मिलता है। इस मंदिर का प्रदक्षिणापथ भी मिलता है। सारे मंदिरों को हाथियों ने अपनी पीठ पर उठा रखा है। मंदिर का प्रवेश द्वार पश्चिम दिशा की ओर है। सम्पूर्ण मंदिर को अलंकृत करने के लिए पौराणिक मूर्तियों का उपयोग किया गया है। इसके दीवारों पर महाभारत के प्रसंग में कृष्ण के जन्म प्रसंग तथा बाल लीलायें उत्कीर्ण हैं। मंदिरों के तीनों ओर चट्टानों मे से काटे गये बरामदे हैं, जिसमें शिव पार्वती, सर्पधारी शिव, कुबेर, शिवपार्वती विवाह, अंधकासुर वध, लकुलीश शिव आदि की मूर्तियाँ पाषाण से काटी गयी है। इस मंदिर का सबसे प्रसिद्ध शिल्प रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाये जाने का दृश्य है। मंदिर के प्रांगण में दो बड़े हाथी तथा दो ध्वज स्तम्भ मंदिर की शोभा बढ़ाते हैं।

गुहा क्रम सं0 17, 18, 19, 20 एवं 21 –

गुहा सं0 17, 18, 19, 20 एवं 21 साधारण गुहाएं हैं। गुहा सं0 17

में स्तम्भों से बना प्रकोष्ठ तथा गर्भ गृह देखने योग्य है। गुहा सं0 18, 19, 20 में कुछ विशेष उल्लेखनीय नहीं है। गुहा सं0 21 को ''रामेश्वर'' कहा जाता है। चालुक्य शैली में निर्मित इस शैव मंदिर में नन्दी मण्डप विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गुहा क्रम सं0 22 -

इस गुहा को ''नीलकण्ठ'' के भी नाम से जाना जाता है क्योंकि इसमें प्रतिष्ठित शिवलिंग पर तीन धारियाँ मिलती है। इस गुहा का मुख्य मंदिर लगभग 66 फीट लम्बा तथा 42 फीट चौड़ा है।

गुहा क्रम सं0 23 एवं 24 -

गुहा सं023 एवं 24 एक सादी गुहा है। गुहा सं0 23 को ''तेलघाणी'' के नाम से जाना जाता है जिसकी छत पर उत्कीर्ण कमल दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करता है। गुहा सं0 24 को ''कुम्भाखाड़ा'' कहा जाता है जिसका अगला भाग नष्ट हो गया है।

गुहा क्रम सं0 25 -

यह एक बड़ी गुहा है, जिसे ''जनवासा'' का नाम दिया गया है। इसका सभा मण्डप लगभग 111 फीट लम्बा तथा 66 फीट चौड़ा है। इस गुहा का विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इसकी छत पर सूर्य और उनका रथ उत्कीर्ण है। सूर्य रथ को सात अश्वों द्वारा खींचते हुए दिखाया गया है। इसमें उषा तथा प्रत्युषा की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण मिलती हैं। इस गुहा का प्रकोष्ठ आकर्षक है, जो आठ सघन स्तम्भों पर उठा है।

गुहा क्रम सं0 26, 27 एवं 27(ए) -

ये तीनों गुहाएं साधारण है। गुहा सं0 26 को ग्वालिन गुहा भी

कहते हैं, जिसमें वैष्णव मंदिर है। गुहा सं0 27 में अवशेष के रूप में दो कमरे मिलते हैं जिसमें हलधर, बलराम, शेषशायी विष्णु, वराह अवतार आदि की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण मिलती हैं। गुहा सं0 27(ए) पूरी तरह से नष्ट हो गई है।

गुहा क्रम सं0 28 -

यह एक भव्य गुहा है, जो ''सीता की नहानी'' के नाम से प्रसिद्ध है। इस गुहा में रावण द्वारा कैलाश उठाने का दृश्य तथा अंधकासुर वध आदि उल्लेखनीय है।

गुहा क्रम सं0 29 -

इस गुहा को छोटा कैलाश के भी नाम से जाना जाता है। क्योंकि इसकी वास्तु रचना ''कैलाश मंदिर'' से मिलती जुलती है। स्थलानुक्रम की दृष्टि से यह जैन गुहा समूह की पहली गुहा है परन्तु इसका निर्माण सबसे बाद में हुआ। इस गुहा में 23 तीर्थकरों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं जिसमें भगवान महावरी की मूर्ति भव्य है। इसी गुहा से सटी गुहा 29(अ) एक अपूर्ण गुहा है।

गुहा क्रम सं0 30 -

यह एक सादी गुहा है, जिसकी दीवारों पर पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्तियाँ मिलती हैं।

गुहा क्रम सं0 31 -

इस गुहा की रचना दो मंजिली है, जिसे ''इन्द्र सभा'' के नाम से जाना जाता है। इसके प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर हाथी की एक विशाल मूर्ति है तथा बायीं ओर 30 फुट तथा विजय स्तम्भ है। आंगन के मध्य भाग में एक भव्य मंदिर निर्मित है। यह मंदिर द्रविड़ शैली में निर्मित है और इसमें महावीर की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

गुहा क्रम सं0 32 -

इस गुहा की वास्तु रचना गुहा सं0 31 के समान है परन्तु इसका आकार छोटा है। इस गुहा को "जगन्नाथ सभा" का नाम दिया गया है। यह गुहा भी दो मंजिली है तथा इसके गर्भ गृह में सिंहासनस्थ महावीर की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

गुहा क्रम सं0 33 -

यह एक साधारण जैन मठ है, जिसका अधिकांश भाग नष्ट हो गया है।

7. मन्दागिरी की गुहाएं :

मन्दागिरी की गुहा बिहार राज्य के भागलपुर जिले में बंका से लगभग 12 किमी0 की दूरी पर स्थिति है। यहाँ पहाड़ी के पश्चिमी भाग के ढाल पर विष्णु का मंदिर है। यह मंदिर भग्नावस्था में है। इस मंदिर से कुछ ही दूरी पर एक गुहा है, जो लगभग 14 फुट लम्बी तथा 9 फीट चौड़ी है। इस गुहा की छत संभवतः कुब्ज पृष्ठ है।[96] इस गुहा के भीतर एक झरना बहता है जिसे "आकाश गंगा" का नाम दिया गया है। इसकी दीवार में चट्टान में से भगवान नृसिंह की एक मूर्ति काटी गई है।[97] इस गुहा में एक लेख मिलता है जिसमें 30वें वर्ष की भाद्रपद की तिथि अंकित है। लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी है। कुछ विद्वानों का मत है कि चूंकि भागलपुर गुप्त साम्राज्य के ही अन्तर्गत था। इसलिए यह तिथि गुप्त संवत् की है और इस गुहा का निर्माण 349 ईस्वी में हुआ होगा। यह वास्तु रचना इस बात का भी द्योतक है कि बिहार में मौर्य युग के बाद भी गुहाओं के निर्माण की परम्परा जीवित थी।

(य) स्तम्भ :

वास्तु–स्थापत्य में स्तूप–चैत्यों की ही भांति स्तम्भों की परम्परा गुप्तों से पहले चल पड़ी थी। स्तम्भ दो प्रकार के बने, धार्मिक और राजनीतिक। धार्मिक स्तम्भों का विकास सम्भवतः प्राचीनतम वैदिक यूपों से हुआ जिनसे यज्ञ में बलि के लिए पशु बांधे जाते थे, फिर इनका स्थान विष्णु आदि के स्मारक स्तम्भों ने ले लिया।[98] मौर्य सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में धर्म प्रचार हेतु स्तम्भ खड़ा किया और उस पर अपना धर्म शासन अंकित करवाया। ये स्तम्भ अशोक कालीन वास्तु कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। ये सभी स्तम्भ पत्थर के एक ही टुकड़े को तराशकर बनाये गये थे। इन स्तम्भों का निर्माण चुनार के बलुआ पत्थरों से किया गया था। इन स्तम्भों पर अशोक के आदेश खुदे हुए थे। इनकी संख्या लगभग 30 रही होगी। ये स्तम्भ साम्राज्य के विभिन्न भागों जैसे– दिल्ली–टोपरा, दिल्ली–मेरठ, लौरिया–अरराज, लौरियानन्दगढ़, रामपुरवा, सारनाथ, कौशाम्बी, संकिसा, साँची, निग्लीसार आदि स्थानों से प्राप्त हुए है। इन स्तम्भों की ऊँचाई करीब 30–35 फीट तथा प्रत्येक का वजन लगभग 50 टन है। ये सभी स्तम्भ चमकदार, लम्बे, सुडौल तथा एकाश्मक (एक ही पत्थर के बने हुए) है। इन स्तम्भों का आधार मोटा है परन्तु ऊपरी भाग क्रमशः पतला होता गया है। इन पर चमकदार पॉलिश देखने को मिलती है। स्तम्भों के शीर्ष पर घंटा, गोलअण्ड या चौकी है, जिनमें कुछ पर पशुओं के, कुछ पर चक्रों एवं हंसों की पंक्तियाँ हैं। उदाहरण के लिए, जहाँ सारनाथ स्तम्भ पर चार सिंह एक–दूसरे से सटे हुए बैठे हैं और एक चक्र धारण किये हुए है, वहीं रामपुरवा के शीर्ष स्तम्भ को एक सांड़ सुशोभित कर रहा है। इसी प्रकार लौरिया नंदगढ़ के स्तम्भ शीर्ष पर सिर्फ एक सिंह की आकृति है। वस्तुतः ये सभी स्तम्भ अपनी सुन्दरता, विशालता एवं पशुओं के जीवंत अनुकृति के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं।

अनेक विद्वानों जैसे मार्शल, पर्सी ब्राउन, स्टेला क्रमरिश आदि का मत है कि ये स्तम्भ ईरानी स्तम्भों की अनुकृति हैं, परन्तु तथ्यों का गहराई से परीक्षण करने के पश्चात् यह मत तर्कसंगत नहीं लगता। इन स्तम्भों का निर्माण विशुद्ध भारतीय परम्पराओं के अनुरूप हुआ है और इन पर ईरानी कला का प्रभाव नहीं है। ईरानी तथा अशोक के स्तम्भों में कुछ मूलभूत अन्तर निम्नलिखित हैं–

- अशोक के स्तम्भ एकाश्मक है, जबकि ईरानी स्तम्भों को कई मण्डलाकार टुकड़ों को जोड़कर बनाया गया।
- अशोक कालीन स्तम्भ स्वतंत्र रूप से भूमि पर टिकाये गये थे, जबकि ईरानी स्तम्भों को चौकी पर टिकाया गया है।
- ईरानी स्तम्भों के शीर्ष पर मानव आकृतियाँ है, जबकि अशोक के स्तम्भों के शीर्ष पर पशुओं की आकृतियाँ हैं। इन पशुओं का एक विशेष प्रतीकात्मक अर्थ है, जिसकी व्याख्या भारतीय परम्परा में ही संभव है।
- ईरानी स्तम्भों की चौड़ाई ऊपर से नीचे तक एक जैसी है जबकि अशोक के स्तम्भ नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः पतले होते चले गये हैं।

इस प्रकार अशोक के स्तम्भों को ईरानी स्तम्भों की नकल नहीं कहा जाता।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि इन स्तम्भों पर जो चमकदार पालिश मिलती है, वह ईरान से ग्रहण की गयी। परन्तु प्रसिद्ध कलाविद् डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने आप स्तम्भ सूत्र तथा महाभारत से कुछ ऐसे उद्धरण खोज निकाले हैं जिससे ज्ञात होता है कि यह पालिश भारतीयों को बहुत पहले से ज्ञात थी।[99]

मौर्यकाल के बाद भी स्तम्भों को स्थापित करवाने की परम्परा जारी

रही। शुंग वंश के नौवे शासक भागभद्र के विदिशा स्थित दरबार में तक्षशिला के यवन शासक एण्टियाल कीड्स के राजदूत हेलियोडोरस का आगमन हुआ। उसने भागवत धर्म को ग्रहण करके विदिशा में गरूड़–स्तम्भ की स्थापना कर भागवत विष्णु की पूजा की।

अशोक के स्तम्भों की परम्परा गुप्त युग में भी चलती रही। परन्तु इस युग में स्तम्भ परम्परा के तीन स्वरूप– कीर्ति स्तम्भ, ध्वज स्तम्भ तथा स्मारक स्तम्भ हो गये। गुप्तकाल में स्तम्भों की संख्या गिनी चुनी है। स्थापत्य की दृष्टि से गुप्तकालीन स्तम्भों की बनावट अशोक कालीन स्तम्भों से भिन्न है। मौर्य युग के अशोक कालीन पाषाण स्तम्भ गोलाकार और चिकने होते थे। उन पर काँच सी चमक और पालिश थी। परन्तु गुप्तकालीन स्तम्भ अनेक कोणयुक्त होते थे तथा उन पर चिकनेपन का सर्वथा अभाव दिखता है। अशोक के स्तम्भों पर धर्म चक्र, सिंह, हाथी, वृषभ, अश्व आदि की प्रतिमायें अंकित होती थी परन्तु गुप्त युग के स्तम्भ के शीर्ष पर विष्णु का वाहन गरूड़ या सिंह की प्रतिमा अंकित होती थी। शिल्प शास्त्रियों ने गुप्तकालीन स्तम्भों के चार भाग बताये हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. स्तम्भ का मुख्य भाग (Shaft) –

स्तम्भ शीर्ष के नीचे की पूरे भाग की बनावट कई प्रकार की होती थी। स्तम्भ का मुख्य भाग अधिकतर चौकोर होता था। इसके ऊपर स्तम्भ में आठ या सोलह पहल होते थे तथा सबसे ऊपरी भाग पुनः अठपहल होता था। कभी–कभी निचला एवं ऊपरी भाग चौकोना तथा मध्य का भाग अष्टकोणीय होता था। कभी–कभी निचला एवं ऊपरी भाग चौकोर तथा बीच का भाग गोलाकार होता था।

2. गलकुम्भ (Base of Capital) –

स्तम्भ के सिरे के निचले भाग को गलकुम्भ कहा जाता था। इसी स्थान पर अधोमुखी कमल के आकृति का प्रस्तर रखा जाता था। इस पर फलका अवस्थित रहता था।

3. फलका (Abacus) –

स्तम्भ के सिरे के मध्य भाग को फलका कहते थे। यह चौकोर प्रस्तर का बनता था, जिस पर बोधिक रखा जाता था।

4. बोधिक (Crown) –

यह स्तम्भ के सिरे का सबसे ऊपरी भाग होता था। बुध गुप्त के एरण स्तम्भ में बोधिक के रूप में "गरूड़ की मूर्ति" है।

गुप्तयुगीन स्तम्भों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। इसका विवेचन निम्नलिखित है–

1. कीर्ति स्तम्भ –

गुप्तकालीन शासकों ने अपनी विजयों को अमरत्व प्रदान करने के लिए स्तम्भों पर अपनी–अपनी प्रशस्तियों को अभिलेखों के रूप में अंकित करवाया। गुप्तकाल के साहित्यिक लेखों में कीर्ति स्तम्भों का अनेक बार उल्लेख हुआ है। कालिदास के अनुसार रघु ने सुह्नों–बगों को परास्त कर गंगा के डेल्टा में अपने विजय की कीर्ति के स्तम्भ खड़े किये।[100] सम्राट समुद्र गुप्त ने अशोक के प्रयाग वाले स्तम्भ पर उसके अभिलेख के समीप अपनी दिग्विजय प्रशस्ति के रूप में उत्कीर्ण करवायी। इस प्रशस्ति की रचना उसके सन्धि विग्रहिक सचिव हरिषेण ने की थी। यह लेख ब्राह्मी लिपि में तथा विशुद्ध संस्कृत भाषा में लिखा गया है। प्रशस्ति की प्रारम्भिक पंक्तियाँ पद्यात्मक तथा बाद की पंक्तियाँ गद्यात्मक हैं। इस प्रकार यह संस्कृत की चम्पू शैली का एक सुन्दर उदाहरण है। यह लेख

मूलतः कौशाम्बी में खुदवाया गया था। बाद में यह कौशाम्बी से हटाकर प्रयाग लाया गया। इसके बाद कीर्ति स्तम्भ के रूप में सम्राट चन्द्र गुप्त का दिल्ली में कुतुबमीनार के पास मेहरौली का लौह स्तम्भ है। इसका आकार गोल है। स्कन्दगुप्त के शासनकाल का एक कीर्ति स्तम्भ उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में सैदपुर तहसील के भीतरीगांव से प्राप्त हुआ है। इस कीर्ति स्तम्भ से स्कन्दगुप्त द्वारा पुष्य मित्र जाति के आक्रमण को निष्फल करने की जानकारी प्राप्त होती है। इसमें सम्राट स्कन्दगुप्त के कीर्ति का यशोगान किया गया है। मंदसौर से यशोधर्मन का कीर्ति स्तम्भ प्राप्त हुआ है, जिसमें उसके द्वारा हूणों को पराजित करने तथा अन्य विजयों का उल्लेख है।

2. ध्वज स्तम्भ –

गुप्त सम्राट वैष्णव धर्मानुयायी थे। उनकी प्रिय उपाधि परम भागवत थी। उन्होंने विष्णु के वाहन गरूड़ को अपनी ध्वजा पर स्थान दिया। इसकी पुष्टि गुप्त नरेशों के स्वर्ण मुद्राओं से भी होती है। इसी परम्परा में कुछ पाषाण स्तम्भों पर भी गरूड़ मूर्ति स्थापित की गई जिसे ध्वज स्तम्भ कहा जाता है। चन्द्र गुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य" के मेहरौली लौह स्तम्भ लेख को ध्वज स्तम्भ भी माना गया है क्योंकि इस स्तम्भ पर "प्रांशुर्विष्णु पदे गिरौ भगवते विष्णोर्ध्वजः स्थापितः" उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कहाव नामक स्थान से सम्राट स्कन्द गुप्त का ध्वज स्तम्भ मिला है। प्रस्तर निर्मित यह स्तम्भ नीचे चौकोर है और इसके एक भाग में पार्श्वनाथ का उच्चित्रण हुआ है। इसके ऊपर कुछ अंश अठपहल है, फिर गहरा कटावदार गोल भाग है। इसके बाद बैठकी है जिस पर चारों ओर चार तीर्थकर की प्रतिमायें उत्कीर्ण हैं। गुप्तकाल का ही एक ध्वज स्तम्भ पूर्वी मालवा के एरण से प्राप्त हुआ है। यह गुप्त सम्राट बुध गुप्त के शासनकाल का है, जिसे मातृ विष्णु एवं धान्य विष्णु नामक दो भाइयों ने 484–85

ईस्वी में स्थापित किया था। यह स्तम्भ आज भी अपने स्थान पर अक्षुण्ण है। यह 43 फीट ऊँचा और 13 फीट वर्गाकार आधार पर खड़ा है। इसका नीचे 20 फुट तक 2 फुट सवा दस इंच वर्गाकार है, इसके ऊपर 8 फुट तक अठपहल है। फिर साढ़े तीन फुट ऊँचा, तीन फुट व्यास का कटावदार घण्टे की शकल का शीर्ष है। इसके ऊपर डेढ़ फुट की बैठकी है जिसके ऊपर तीन फुट की दूसरी बैठकी है, जिसका नीचे का भाग आधा सादा है और ऊपर के आधे भाग में चारों ओर बैठे हुए सिंह युग्म हैं और इसके ऊपर 5 फीट ऊँची गरूड़ की प्रतिमा है जिसके पीछे चक्र उत्कीर्ण है।[101]

3. स्मारक स्तम्भ –

गुप्त सम्राटों ने कुछ विशिष्ट अवसरों पर घटना होने पर स्तम्भ स्थापित किये। उस घटना विशेष के महत्व को चिरस्थायी बनाने के लिए उन पर लेख उत्कीर्ण करवाये। ऐसे स्मारक स्तम्भों में कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल का विलसद में स्थापित स्तम्भ तथा सम्राट स्कन्द गुप्त द्वारा गाजीपुर के भीतरी में भगवान विष्णु की प्रतिमा की स्थापना की स्मृति में निर्मित स्तम्भ उल्लेखनीय है। कनिंघम के अनुसार इस स्तम्भ का निःसन्देह रूप से मंदिर से सम्बन्ध था।[102] बिहार के पटना जिले स्तम्भ भी स्कन्द गुप्त द्वारा निर्मित माना गया है। 510 ईस्वी में भानु गुप्त का सेनापति गोपराज एरण के युद्ध में मारा गया था, जिसकी स्मृति में एरण में स्मारक स्तम्भ स्थापित किया गया। इस स्तम्भ लेख में गोपराज की पत्नी के सती होने का उल्लेख मिलता है। यह स्तम्भलेख सती प्रथा का प्राचीनतम् अभिलेखीय साक्ष्य है। इसी प्रकार साँची महास्तूप के तोरण द्वार के समीप गुप्तकालीन स्मारक स्तम्भ खड़ा है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 101
2. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 158
3. के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 275
4. पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 585
5. उद्धत, वही, पृ0 585
6. के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, पृ0 276
7. कालिदास : रघुवंश 14/29, मेघदूत 2/11
8. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 159
9. कालिदास : विक्रमोवंशीय, पृ0 196–97
10. कालिदास : ऋतुसंहार, 1/28
11. मत्स्य पुराण : 269/38/53
12. कालिदास : मालविकाग्निमित्र, पृ0 324
13. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 163
14. कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तलम, पृ0 107, विक्रमोवंशीय, पृ0 172
15. पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 589
16. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 163
17. वही, पृ0 161
18. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 95
19. उद्धत, भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास,पृ0 161

20. यंत्र प्रवाहैः शिशिरैः परीतान् रसने धौताम् मलयोद् भवस्य

    शिला विशेषानधिशम्य नित्यु धीर गृहेष्वात पमृद्धि मन्तः ।।

    उद्धत, वही, पृ0 67

21. राखाल दास बनर्जी : एज आफ दी इम्पीरियल गुप्ताज, पृ0 207

22. पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 588

23. वही, पृ0 588

24. उद्धत, भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0164

25. जुषस्व नः समिधमग्ने अघ सोचा बृहघजतं धूममृण्वन्।

    उपस्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्त।। (ऋग्वेद 7/2/11)

26. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 46

27. वही, पृ0 47

28. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 133–134

29. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, पृ0 111

30. पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 599

31. डा0 रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ0512

32. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 121

33. वही, पृ0 121–122

34. पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 623

35. वही, पृ0 603

36. हरमल गोयल्स : इम्पीरियल रोम एण्ड जिनेसिस ऑफ क्लासिकल इण्डियन आर्ट, ईस्ट एण्ड बेस्ट, 10, पृ0 153

37. पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 602

38. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 103

39. उद्धत, पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 603

40. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 102

41. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर हिन्दू बुद्धिस्ट, पृ0 48

42. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10, पृ0 88

43. वही, पृ0 82–83

44. पी0एल0 गुप्ता : गुप्त साम्राज्य, पृ0 605

45. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10, पृ0 85–86

46. राखाल दास बनर्जी : दी एज आफ दी इम्पीरियल गुप्ताज, पृ0 137–38

47. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ0 266

48. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 21, पृ0 96

49. राखाल दास बनर्जी : दी एज आफ दी इम्पीरियल गुप्ताज, पृ0 138–39

50. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर, पृ0 47

51. के0डी0 बाजपेयी : भारतीय वास्तु कला का इतिहास, पृ0 108

52. डा0 वासुदेव उपाध्याय : प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, पृ0209

53. डा0 ए0के0 कुमारस्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ0 8

54. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर हिन्दू बुद्धिस्ट, पृ0 50

55. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10, पृ0 110

56. आर0डी0 बनर्जी : द एज आफ इम्पीरियल गुप्ताज, पृ0 147

57. माधोस्वरूप वत्स : द गुप्त टेम्पल एट देवगढ़, पृ0 6

58. कुमारस्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ0 8

59. वासुदेव शरण अग्रवाल : स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, पृ0 224–25

60. पृथ्वी कुमार अग्रवाल : गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, पृ0 11

61. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 106

62. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 1, पृ0 41–45

63. कृष्णदेव : टेम्पलस आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1995, पृ0 17

64. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 107

65. वही, पृ0 107

66. आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1902–03, पृ042, 1923–24, पृ0 23

67. राखाल दास बनर्जी : दी एज आफ दी इम्पीरियल गुप्ताज, पृ0 156–58

68. वही, पृ0 157

69. डॉ0 पी0एल0 गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 609

70. कनिंघम : महाबोधि आर द ग्रेट बुद्धिस्ट–टेम्पल एट बोधगया, पृ018 (उद्धत : डॉ0 पी0एल0 गुप्त, पृ0 610)

71. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 11, पृ042—44

कुमारस्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ081

72. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 11, पृ0 43

73. बुकानन : ईस्टर्न इण्डिया, 2, पृ0 367

74. आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1927, पृ019

75. ग्वालियर राज्य के पुरातत्व विभाग की वार्षिक रिपोर्ट, 1927, पृ0 19

76. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ0149

77. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 198

78. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 90

79. वही, पृ0 90

80. वही, पृ0 91

81. डॉ0 पी0एल0 गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 590

82. वही, पृ0 592

83. वासुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ0 313

84. मुकुल डे : माई पिलाग्रिमेज टू अजन्ता एण्ड बाघ, 1950, पृ0 174

85. स्टेला क्रमरिश : पेटिंग्स एट बादामी, जर्नल ऑफ द इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट, पृ0 57—61

86. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर, पृ0 54

87. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10, पृ0 46—54

88. पी0एल0 गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 595

89. वही, पृ0 596

90. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 97–98

91. वही, पृ0 98

92. पी0एल0 गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 591

93. जे0एन0 पाण्डेय : भारतीय कला एवं पुरातत्व, पृ0 92

94. पर्सी ब्राउन : इण्डियन आर्किटेक्चर– बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू, पृ0 73–74

95. वही, पृ0 74

96. उद्धत, पी0एल0 गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 597

97. उद्धत, वही : पृ0 597

98. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ013

99. वासुदेव शरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ0 120–122

100. कालिदास : रघुवंश, पृ0 36

101. पी0एल0 गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृ0 624

102. कनिंघम : आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, पृ0 17

उपसंहार

उपसंहार

मानवीय कल्पना, प्रयास और कौशल द्वारा किसी वस्तु में सुन्दरता अथवा उपयोगिता का गुण सृजित कर देने का नाम ही कला है। जिस कौशल द्वारा किसी वस्तु में उपयोगिता और सुन्दरता का संचार हो जाए, वही कला है। भारतीय परम्परा में कला को लोकरंजन का समानार्थी निरूपित किया गया है। भारतीय कला भारतवर्ष के विचारों एवं विश्वासों को समझने का एक सबल माध्यम है। भारतीय कला की सामग्री उतनी ही समृद्ध है जितनी कि साहित्य, धर्म और दर्शन की।

भारतीय कला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन तथा गौरवशाली है। भारतीय जनमानस में आदिम काल से ही कला प्रिय रही है। प्रागैतिहासिक काल में मानव जब प्रकृति की गोद में निवास कर रहा था, उसी समय से उसने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए कला को एक माध्यम के रूप में चुना। भारत में उन सभी क्षेत्रों से चित्रित शैलाश्रय मिलते हैं जहाँ पर प्राकृतिक रूप से शैलाश्रय निर्मित है। आदि मानव द्वारा बनाये गये चित्र उनके उल्लासमय जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। सैन्धव सभ्यता में एक अत्यन्त परिपक्व कला का दर्शन होता है। इस सभ्यता के पुरास्थलों से स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला के जो अवशेष मिले हैं, उसमें उस युग की विकसित कला का परिचय मिलता है। सिन्धु सभ्यता और मौर्यकाल के बीच कला के विषय में बहुत कम साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

मौर्यकाल में कला के क्षेत्र में काफी विकास हुआ। इस कालखण्ड में कला के क्षेत्र में सुसंगठित क्रियाकलाप के दर्शन होते हैं। मौर्य युग में ही सर्वप्रथम कला के क्षेत्र में पाषाण का प्रयोग किया गया। इस काल में राजकीय कला के साथ–साथ लोक कला का भी विकास हुआ। इस काल में 'राजकीय संरक्षण' के कारण वास्तुकला के अनुपम कौशल को प्रतिबिम्बित करने वाले

स्मारकों का निर्माण हुआ जिसमें कुम्रहार से प्राप्त चन्द्रगुप्त मौर्य के राजप्रासाद, अशोक के पाषाण स्तम्भ गुहाएं तथा स्तूप है। मौर्यकालीन मूर्तिकला का उल्लेखनीय उदाहरण अशोक के स्तम्भों को मंडित करने वाली विभिन्न पशुओं की आकृतियां हैं, जिनके अंग–प्रत्यंगों का निर्माण इतनी कुशलता से किया गया है कि वे देखने में सजीव लगती हैं। इन स्तम्भों पर की गयी पालिश उन्हें सौन्दर्य प्रदान करती हैं। लोक कला के अन्तर्गत मौर्ययुगीन कलाकारों ने लोक रुचि की वस्तुओं का निर्माण किया, जिनमें विशालकाय यक्ष–यक्षिणी की प्रतिमाएं है। मौर्यकला ने न केवल भारतीय परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा, अपितु उसने तत्कालीन कला को एक नया आयाम प्रदान किया।

मौर्योत्तर काल में भी भारतीय कला का विकास अनवरत् जारी रहा। शुंग शासकों ने अशोक के काल में निर्मित भरहुत एवं साँची के स्तूपों का जीर्णोद्धार करवाया। ये स्तूप इस युग की स्थापत्य कला की चरम उपलब्धि है। शुंग काल में बोधगया के स्तूप तथा अजन्ता की नवीं एवं दसवीं गुहाओं का भी निर्माण हुआ। कुषाण काल में भारतीय कला और प्रखर रूप से कला के रंगमंच पर सामने आयी। इस काल में गान्धार कला और मथुरा कला का विकास हुआ। गान्धार कला शैली पर जहाँ एक तरफ यूनानी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, वहीं दूसरी तरफ मथुरा कला शैली पूर्णरूप से भारतीय है। मौर्योत्तर युग में दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत में भी अनेक स्मारकों का सृजन हुआ। सातवाहन वंश के सम्राटों ने कला को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया। अमरावती तथा नागार्जुनकोण्डा के स्तूप एवं भाजा, कार्ले, कान्हेरी, नासिक, जुन्नार आदि के चैत्य गृह सातवाहन युग की ही देन है। ये स्मारक वास्तुकला के विकसित स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं।

भारतीय इतिहास में 'स्वर्ण युग' के नाम से अभिहित गुप्तयुग अपनी

महान सांस्कृतिक उपलब्धियों विशेष महत्व रखता है। महान गुप्त सम्राटों ने अपने पराक्रम से मौर्यकाल के पश्चात् पुनः एक बार राजनीतिक एकता कायम की। शक्तिशाली गुप्त शासकों ने तत्कालीन भारतीय जीवन में राजनीतिक एकसूत्रता, स्थिरता, शान्ति एवं सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि तथा उत्साहपूर्ण सक्रियता का ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर एक नये सिरे से मानव आकांक्षाओं को अनुप्राणित किया। ऐसे अनुकूल वातावरण में और संस्कृति के सभी पक्षों का तीव्र विकास हुआ। इस काल में स्थापत्य कला, मूर्ति कला, चित्रकला, संगीत एवं नृत्य कला का अभूतपूर्व विकास हुआ तथा ये कलाएं सर्वोत्कृष्टता की चरम सीमा तक पहुँच गई।

गुप्तकाल में मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में सदियों में सक्रिय उन पूर्ववर्ती मार्गीय प्रवृत्तियों एवं परम्पराओं का मानो चरमोत्कर्ष दिखाई देता है, जिनके आदर्श तथा मानदण्ड चतुर्दिक फलीभूत हुए। इस तथ्य की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति तत्कालीन साहित्य एवं कला के विस्तृत एवं महत्वपूर्ण अवशेषों से साक्षात् पकड़ में आती है, जो चौथी शती से प्रारम्भ होकर लगभग छठी शती के अन्त तक पल्लवित मिलती है। आकृति तथा माधुर्य और मंडन की छवि दोनों का जैसा नपा–तुला समन्वय गुप्त युग में दिखाई देता है, वैसा भारतीय संस्कृति में फिर नहीं देखा गया।

गुप्त युग भारतीय जीवन पद्धति में आत्मिक उन्नति एवं भौतिक समृद्धि का सुनहरा युग था। इस कालखण्ड में ललित कलाओं का विकास नवीन संजीवक शक्ति से हुआ। इस काल में 'सांस्कृतिक–राष्ट्रवाद के उत्कर्ष' के परिणामस्वरूप कला में एक नूतन भाव का जन्म हुआ। गुप्तकला अपनी सभी पूर्ववर्ती कलाओं की परम्पराओं को तोड़ते हुए एक अभिनव तथा श्रेष्ठतम् वर्चस्व को स्थापित करने में सक्षम हुई। गुप्तयुग का गौरव एवं वैभव, समृद्धि और सम्पन्नता विविध कलाकृतियों और स्मारकों में स्थायी तथा चिरस्मरणीय हो गया।

कला के विभिन्न अंग जैसे स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला ने ऐसे संतुलन, सौन्दर्य, अभिव्यक्ति और परिपक्वता प्राप्त कर ली, जिसकी श्रेष्ठता को आज तक कोई प्राप्त नहीं कर सका।

गुप्तयुगीनकला में चारुता और आनन्द का एक साथ निवास दृष्टिगोचर होता है। इस कला में सौन्दर्य और प्रतिबंध की विलक्षणता है। गुप्त युग का शिल्पी महत्व प्रदर्शन हेतु कलाकृति पर निर्भर नहीं था, परन्तु उसने अपना ध्यान लालित्य पर केन्द्रीभूत कर लिया था, जो अलंकरण और सुशोभन की प्रचुरता में लुप्तप्राय नहीं होता था। इस काल की कला में सांस्कृतिक और प्राकृतिक सौन्दर्य की एक विशिष्ट भावना थी। सुन्दर कला पूर्ण आकृतियों का भारतीय संस्कृति के अनुरूप सृजन करना इस कला का लक्ष्य था।

गुप्तयुगीन ललितकलाओं का मूल प्रेरणा गहन धार्मिक और आध्यात्मिक आदर्शों से प्राप्त हुई थी। भव्य धार्मिक भवनों, मंदिरों और प्रतिमाओं का निर्माण करके तथा देवी–देवताओं, संतों, धर्म प्रवर्तकों एवं ऋषि–मुनियों के चित्र अंकित करके इस काल की ललित कलाओं ने धर्म की सेवा की। धर्म और आध्यात्म के महत्व को, उसके तत्वों को ललित कलाओं ने अपने विभिन्न अंगों द्वारा अभिव्यक्त और प्रदर्शित किया। परन्तु धर्म ने इस युग की ललित कलाओं के सामाजिक और दैनिक जीवन को प्रदर्शित करने के लिए प्रयासों को अवरूद्ध नहीं किया।

अजन्ता एवं बाघ के चित्र गुप्तकाल की अनूठी सांस्कृतिक देन है। यद्यपि इस समय की अधिकांश कलाकृतियां बड़ी मात्रा में विलुप्त हो गई हैं, परन्तु जो अवशेष उपलब्ध है, वे गुप्तकालीन भित्ति चित्र की गौरवगाथा कहने में अग्रणी है और इस युग के चित्रकारों के अपूर्व पाण्डित्य का परिचायक है। इन गुहाओं के चित्रों में उन उच्चतम् कला–मूल्यों का निदर्शन किया है जो गुप्त संस्कृति की सामान्य थाती थे। पद्मपाणि बोधिसत्व, मार घर्षण, मरणासन्न राजकुमारी, माता

और शिशु आदि कुछ चित्र चित्रकला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। कथात्मक रोचकता, गाथात्मक विस्तार, जीवन के उदात्त भावों के प्रति समर्पण आदि इन चित्रों का विशेष गुण है। कोई भी दृश्य धार्मिक, कृत्रिमता से बोझिल नहीं है। गुप्तकालीन चित्रकारों ने धार्मिक दृश्यों के साथ–साथ जीवन के विविध पक्षों का उन्मुक्त प्रदर्शन पूरी सफलता एवं रोचकता के साथ किया है। रेखात्मक और वानस्पतिक अलंकरणों के रेखांकन में अजन्ता और बाघ के चित्रकारों का कोई सानी नहीं। इन गुहाओं के कलाकृतियों की रचना पद्धति इतनी शास्त्र शुदृ, सुनिश्चित, वेगवान एवं सामर्थ्यशील है कि इन्हें विश्व की प्रथम श्रेणी की कलाकृतियों में स्थान प्राप्त है। इन गुहाओं के चित्रों ने न केवल भारत बल्कि भारत के बाहर भी चीन, जापान तथा अन्य देशों की चित्रकला को प्रभावित किया।

गुप्तयुग में मूर्तिकला का श्रेष्ठतम् विकास हुआ। इस युग में यह कला नवीनता से ओत–प्रोत हो गई। मूर्तिकला में गान्धार शैली के नाम पर जो यूनानी प्रभाव पहले आया था वह इस युग में लुप्त हो गया और कला का विशुद्ध भारतीय रूप स्पष्ट हो गया। वास्तव में शिल्प–शास्त्र तथा लोक–परम्परा को आधार बनाकर इस युग में जो कला विकसित हुई वह विशुद्ध भारतीय आदर्शों एवं परम्पराओं पर आधारित रही। इस युग में शिल्पियों की विकसित सौन्दर्य भावना, परिमार्जित एवं प्रौढ़कल्पना तथा विलक्षण रचना कौशल ने ऐसी कलाकृतियों का सृजन किया जो भारतीय कला के क्षेत्र में ''न भूतो न भविष्यति'' के कथन को चरितार्थ करती है। गुप्तकालीन शिल्पियों ने पूर्वकालिक कला रूढ़ियों से अलग हटकर मानव आकृतियों का प्राकृतिक और संतुलित रूप में मूर्तन किया। इस काल के शिल्पियों को आध्यात्मिक एवं वैचारिक धरातल पर देव प्रतिमा का अन्यतम् स्वरूप प्रस्तुत करने में अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा, मथुरा की बुद्ध प्रतिमा, खोह और नचना कुठार के एकमुखी शिवलिंग

आदि इसके साक्षात् उदाहरण है। गुप्त कलाकारों ने स्त्री–पुरुष को एक नये परिवेश में उपस्थित किया। पुरुष कन्धे तक लटकते हुए कुन्तल–कुंचित केशों के साथ प्रस्तुत किये गये। नारी आभूषणों का भार छोड़कर हल्की हुई। वस्त्र धारण में जो परिष्कार और सुरुचि है, उसमें सुडौल गढ़ी काया स्पष्ट झलकती है। इस युग के आकृतियों के मुख पर एक अपूर्व आनन्द और अंग–प्रत्यंग में अपूर्व सौष्ठव तथा लावण्य दृष्टिगोचर होता है। इस काल में मृन्मय शिल्प को जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ, वह गुप्तकलीन शिल्पियों के विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। धातु शिल्प में भी रचना–विधान की परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है। सुल्तानगंज की बुद्ध प्रतिमा गुप्तकालीन धातुशिल्प की कलात्मक भव्यता और तेजस्विता के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है।

गुप्तकाल में लोक, नृत्य एवं संगीत कला की धारा भी अविरल रूप से बहती रही। तत्कालीन साहित्य तथा पुरावशेषों से इस कला के विकसित होने का प्रमाण मिलता है।

स्थापत्य कला (वास्तु कला) के क्षेत्र में जितनी तीव्र एवं व्यापक गतिविधि गुप्तकाल में देखने को मिलती है, वैसी न तो इसके पूर्व और न ही इसके बाद के काल में दृष्टिगोचर होती है। इस युग के कलाकारों ने भवन निर्माण के लिए उपलब्ध सभी प्रकार की सामग्रियों तथा माध्यमों का उपयोग कर अनेक श्रेष्ठ वास्तु रचनाओं का निर्माण किया। इस काल में राजनीतिक स्थिरता तथा आर्थिक समृद्धि से संस्कृत साहित्य की प्राणभूत "स्थापत्य कला" (वास्तु कला) को एक नई राष्ट्रीय दिशा तथा सार्वभौम समृद्धि प्राप्त हुई। गुप्तकालीन स्थापत्य कला के सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वास्तु रचना के दोनों ही पक्ष– सौन्दर्य तथा शिल्प में नवीनतम् एवं सृजनात्मकता का सूत्रपात हुआ। इस काल के स्मारकों में गुप्तकालीन शिल्पियों की अकल्पनीय दक्षता तथा कौशलता

परिलक्षित होती है।

गुप्तकालीन स्थापत्य कला के उल्लेखनीय उदाहरण गुप्त शासकों के राजप्रासाद है जिनकी भव्यता का उल्लेख तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों में मिलता है। पूर्ववर्ती युगों की भाँति स्तूपों का निर्माण गुप्तकाल में भी जारी रहा। सारनाथ का धमेख स्तूप आज भी खड़ा है जिसकी विशालता दर्शनीय है। गुप्त युग में स्थापत्य के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण आन्दोलन मंदिर निर्माण से सम्बन्धित है। देव प्रतिमा की रचना को जो उत्थान और लोकव्यापी प्रसार कुषाण युग में हुआ था, उसी परम्परा में यह वास्तुगत विकास था। देवता के गढ़े हुए मूर्त स्वरूप की प्रतिष्ठा के लिए उसके स्थायी आवास या मंदिर की अनिवार्य एवं स्थूल आवश्यकता के फलस्वरूप इस स्वाभाविक विकास–प्रक्रिया ने गुप्त युग में पहुँचकर वास्तु निर्माण के महत्वपूर्ण आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। शक्तिशाली गुप्त सम्राटों तथा जनता के अदम्य उत्साह का ही यह परिणाम था कि मंदिर निर्माण का यह सांस्कृतिक आन्दोलन कुछ ही समय बाद समस्त मध्य देश में फैल गया। शिखर युक्त मंदिरों के निर्माण की शुरूआत इसी काल में प्रारम्भ हुई। देवगढ़ का दशावतार मंदिर, भीतरगाँव का विष्णु मंदिर, एरण का नृसिंह, वाराह तथा विष्णु मंदिर एवं भूमरा का शिव मंदिर गुप्तकालीन मंदिरों के उल्लेखनीय उदाहरण हैं, जिनमें सादगी होते हुए भी अनेक वास्तुगत नवीनताएं दृष्टिगोचर होती हैं। गुहा भवनों के निर्माण का जो कार्य मौर्यकाल के शिल्पियों ने आरम्भ किया था, वह तकनीक इस युग में अपने चरम सीमा पर पहुँच गई। अजन्ता, एलोरा, वाघ तथा उदयगिरी की गुहाएं गुप्तकालीन गुहा वास्तु की अनूठी देन है। गुप्त शासकों ने स्तम्भों को स्थापित करने की परम्परा को जारी रखा।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तयुग में कला के प्रत्येक क्षेत्र में विकास हुआ। इस युग में स्थापत्य, मूर्ति कला, चित्रकला, नृत्य एवं

संगीत कला के क्षेत्र में जो मानदण्ड निर्धारित किये गये, वे थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ बाद के युगों में भी चलते रहे। ललित कलाओं ने समुदय की जिस चोटी का स्पर्श गुप्तयुग में किया, वह किसी अन्य युग में नहीं हो सका। वास्तव में गुप्तकाल की ललित कलाओं ने भारतवर्ष में जो गौरवमय स्थान प्राप्त कर लिया था, उससे उसमें ऐसी शक्ति, दृढ़ता, मधुरता और आकर्षण आ गया कि वह एशिया के अधिकांश भागों में ललित कलाओं की परम्पराओं को रूप दे सकी। भारत की सीमा के पार नवीन वातावरण में इस कला को ले जाने पर वृहत्तर भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य का सृजन हुआ।

कला आत्मिक एकालाप का प्रतिफल है। भारतीय परम्परा में कला के विदग्ध और स्पृहणीय रूप प्राप्त होते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के कालखण्डों में कला के जितने भी आयाम दिखाई पड़ते हैं, उनमें गुप्तकाल की कला का महत्व अत्यधिक है। गुप्तकाल भारतीय इतिहास का अत्यन्त विशिष्ट काल रहा है। इतिहास विदों की दृष्टि में गुप्तकाल को जिन अर्थों में "स्वर्ण युग" का नाम दिया गया है, उसके पक्ष की पुष्टि गुप्तकाल की कला से अवश्य ही होती है। गुप्तकाल की कला ने गुप्तकाल के सर्वांगीण इतिहास को स्वर्णिम रूप प्रदान करने में वरेण्य भूमिका का निर्वहन किया है। एक शोधार्थी होने के नाते मेरा यह विनम्र प्रयास रहा है कि कृत शोध कार्य के माध्यम से गुप्तकाल की कला का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाए। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मेरी दृष्टि का उन्मीलन गुप्तकाल की स्थापत्य कला पर विशेष रूप से हुआ है। मेरा यह विनम्र प्रयास रहा है कि प्रस्तुत शोध कार्य के माध्यम से गुप्तकाल की स्थापत्य (वास्तु) की उपलब्धियों को सम्यक रूप से रेखांकित किया जा सके। इतिहास विद्, कला विद्, आलोचक और मूल्यांकनकर्ता मेरे दृष्टिकोण से सहमत और आश्वस्त होंगे, यही मेरा चिन्तन है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट–1
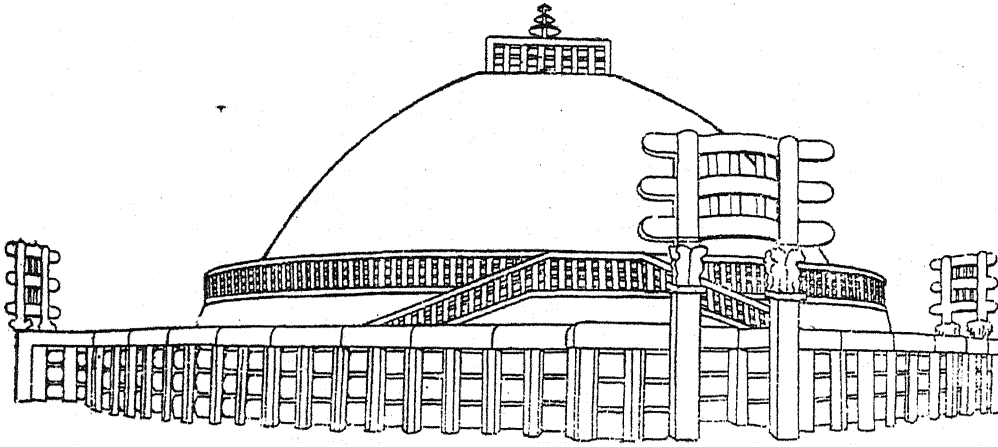
साँची : महास्तूप, रायसेन (मध्य प्रदेश)

चित्र सं.–1

परिशिष्ट–2

सहरी–बहलोल : गांधार शैली की बुद्ध प्रतिमा (पाकिस्तान)

चित्र सं.–2

परिशिष्ट–3
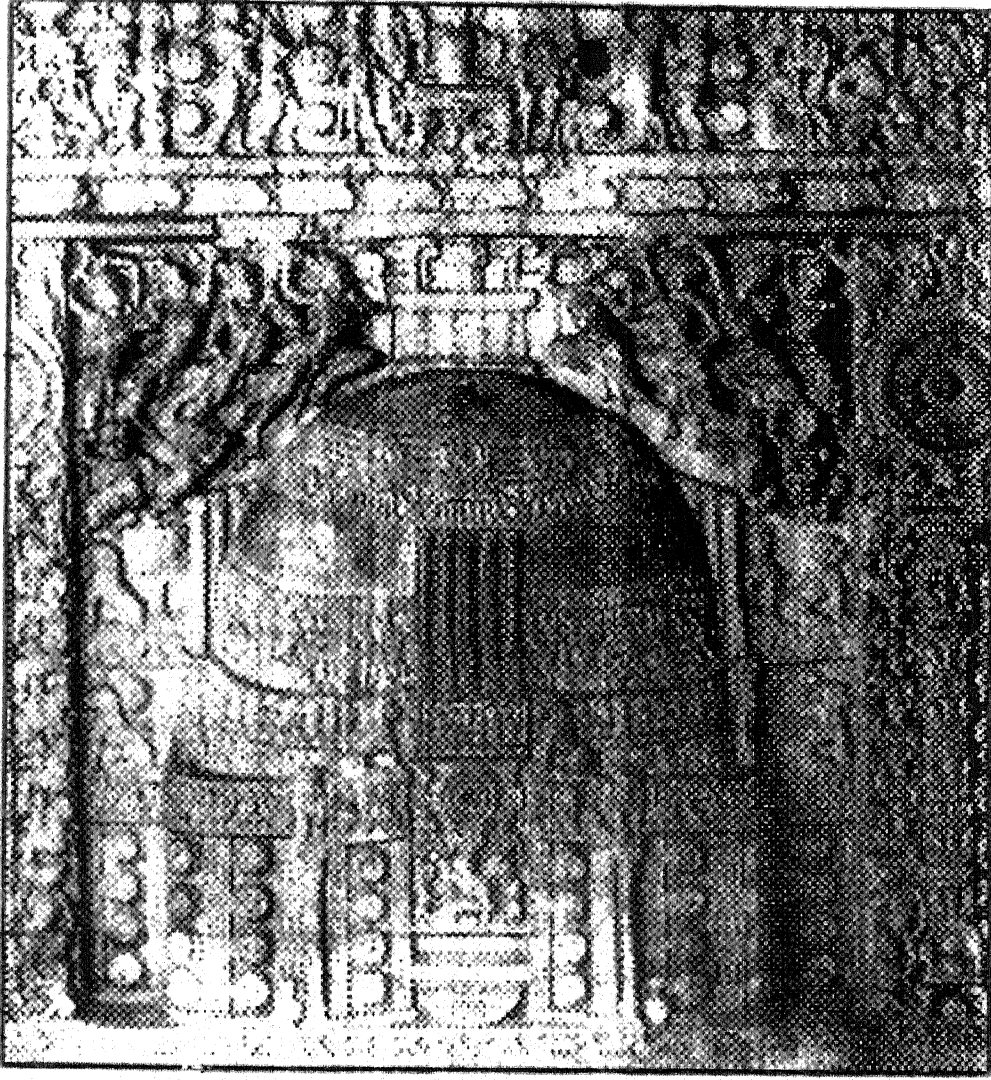
अमरावती : स्तूप, गूण्टूर (आन्ध्रप्रदेश)

चित्र सं.–3

परिशिष्ट–4
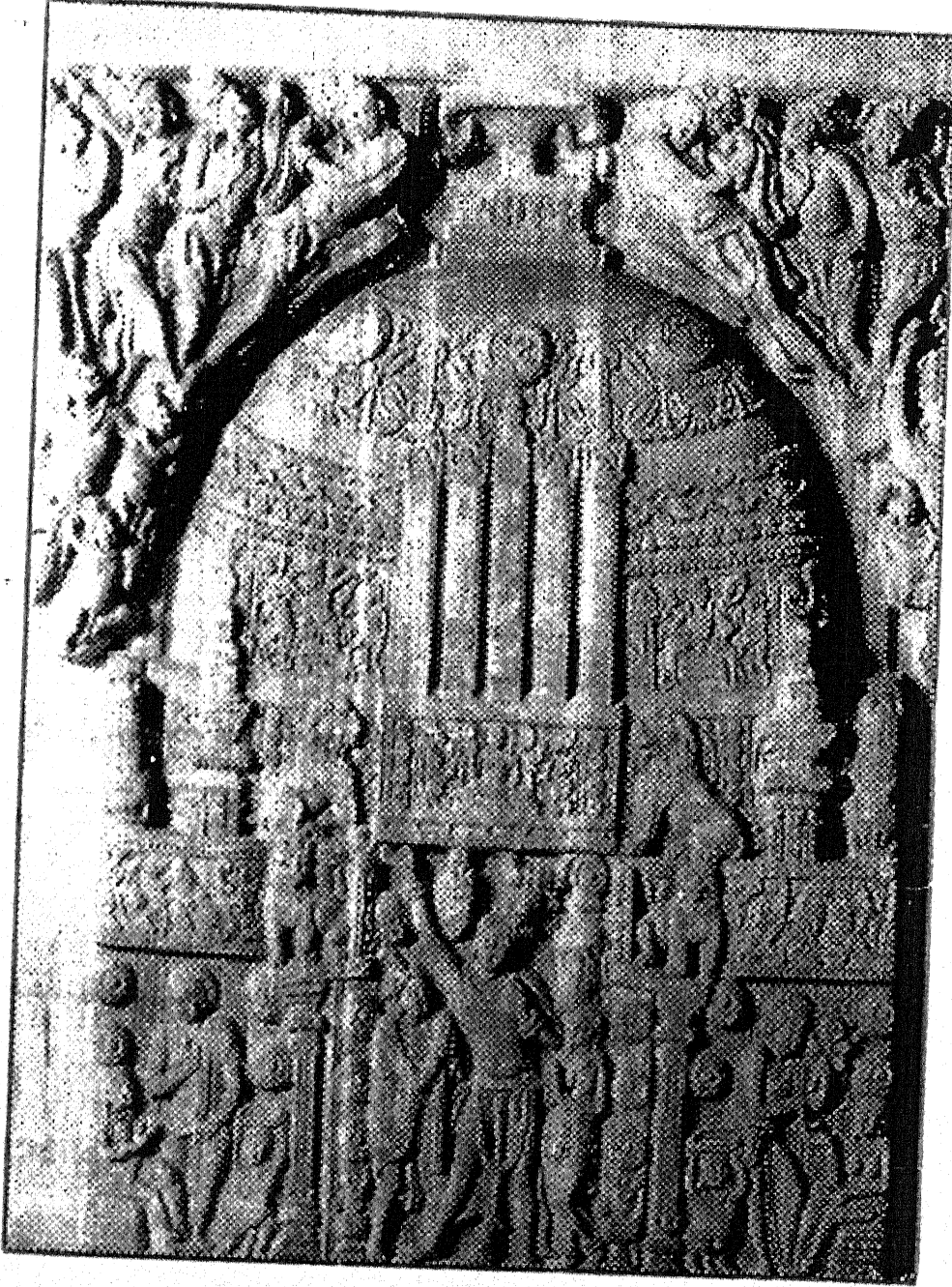
नागार्जुनकोण्डा : महास्तूप, गुण्टूर (आन्ध्रप्रदेश)

चित्र सं.–4

परिशिष्ट–5

अजन्ता : बोधिसत्व पद्मपाणि (पहली गुफा), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

चित्र सं.–5

परिशिष्ट–6

अजन्ता : मार विजय का दृश्य (पहली गुफा),

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

चित्र सं.–6

परिशिष्ट–7

अजन्ता : मरणासन्न राजकुमारी का दृश्य (सोलहवी गुफा)
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
चित्र सं.–7

परिशिष्ट–8
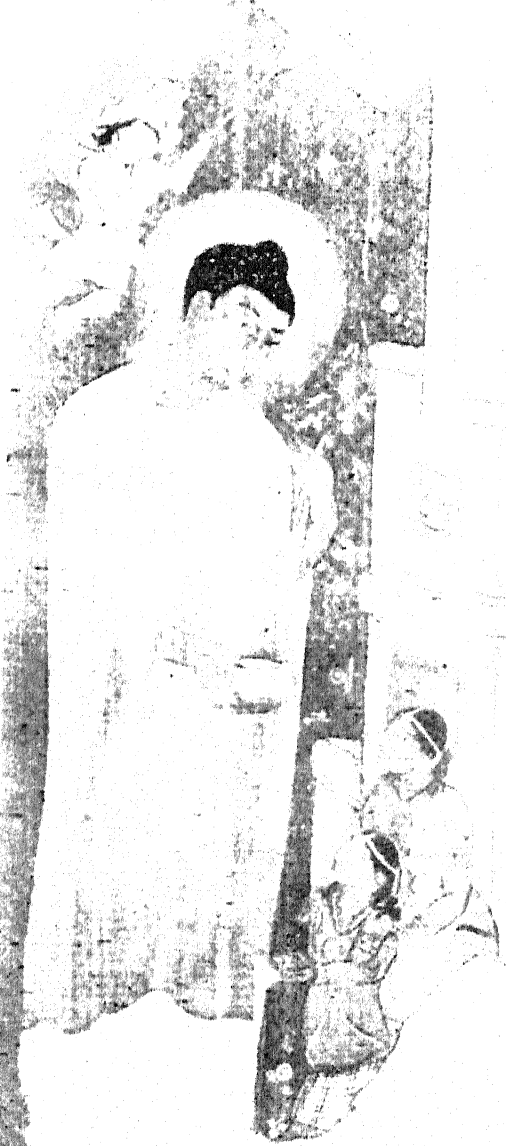
अजन्ता : माता और शिशु (17वीं गुफा)

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

चित्र सं.–8

परिशिष्ट–9

चन्द्रगुप्त I- कुमारदेवी : राजारानी प्रकार की स्वर्णमुद्रा

चित्र सं.–9

परिशिष्ट–10

समुद्रगुप्त : अश्वमेघ प्रकार की स्वर्ण मुद्रा

चित्र सं.–10

परिशिष्ट–11

सारनाथ : धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में बुद्धमूर्ति,
वाराणसी (उ0प्र0)

चित्र सं.–11

परिशिष्ट–12

उदयगिरी : वाराह प्रतिमा, विदिशा (मध्य प्रदेश)

चित्र सं.–12

परिशिष्ट–13

खोह : एकमुख लिंग (मध्य प्रदेश)

चित्र सं.–13

परिशिष्ट–14

सुल्तानगंज : बुद्ध की ताम्र निर्मित प्रतिमा, भागलपुर (बिहार)

चित्र सं.–14

परिशिष्ट–15
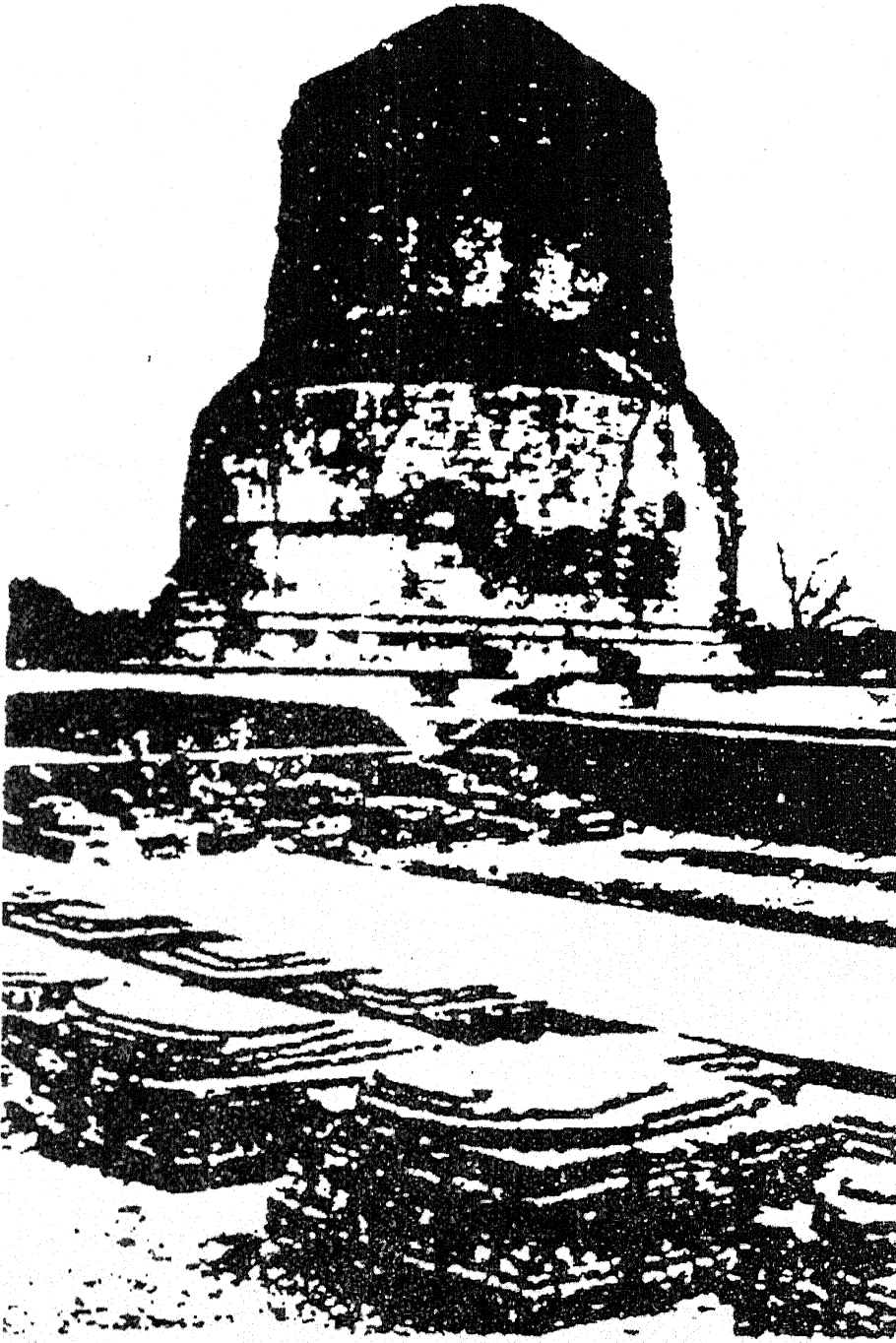
सारनाथ : धमेख स्तूप, वाराणसी (उ0प्र0)
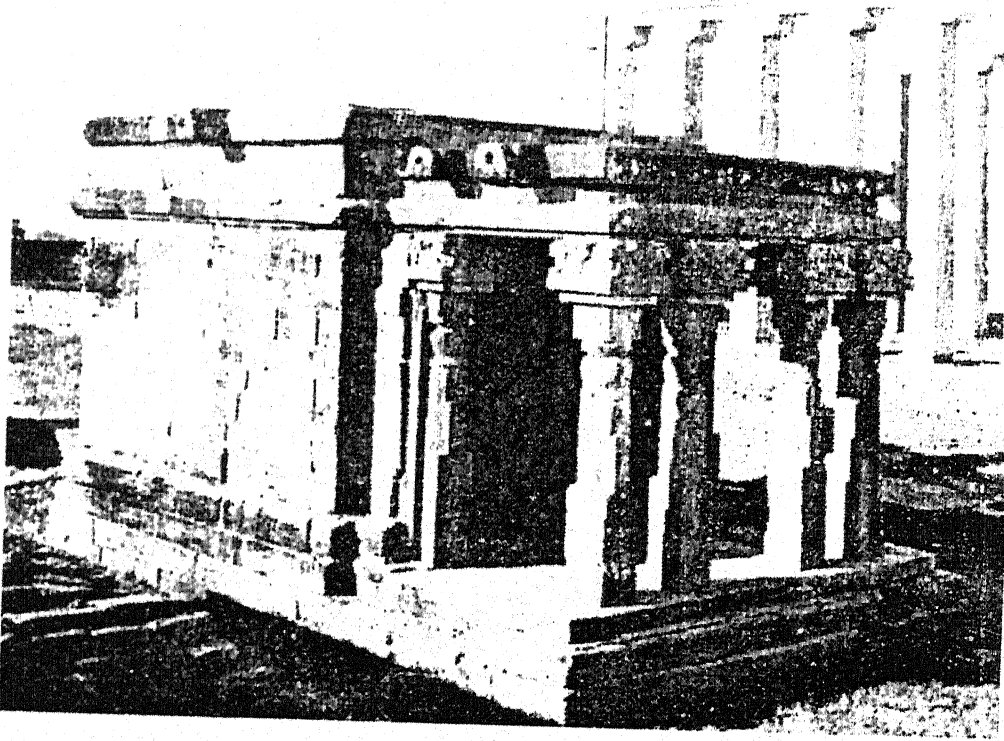
चित्र सं.–15

परिशिष्ट–16

साँची : गुप्तकाल का मन्दिर, रायसेन (मध्य प्रदेश)

चित्र सं.–16

परिशिष्ट–17

अजयगढ़ : नचना कुठार के पार्वती मन्दिर का गर्भ–गृह द्वार, पन्ना (मध्य प्रदेश)

चित्र सं.–17

परिशिष्ट–18
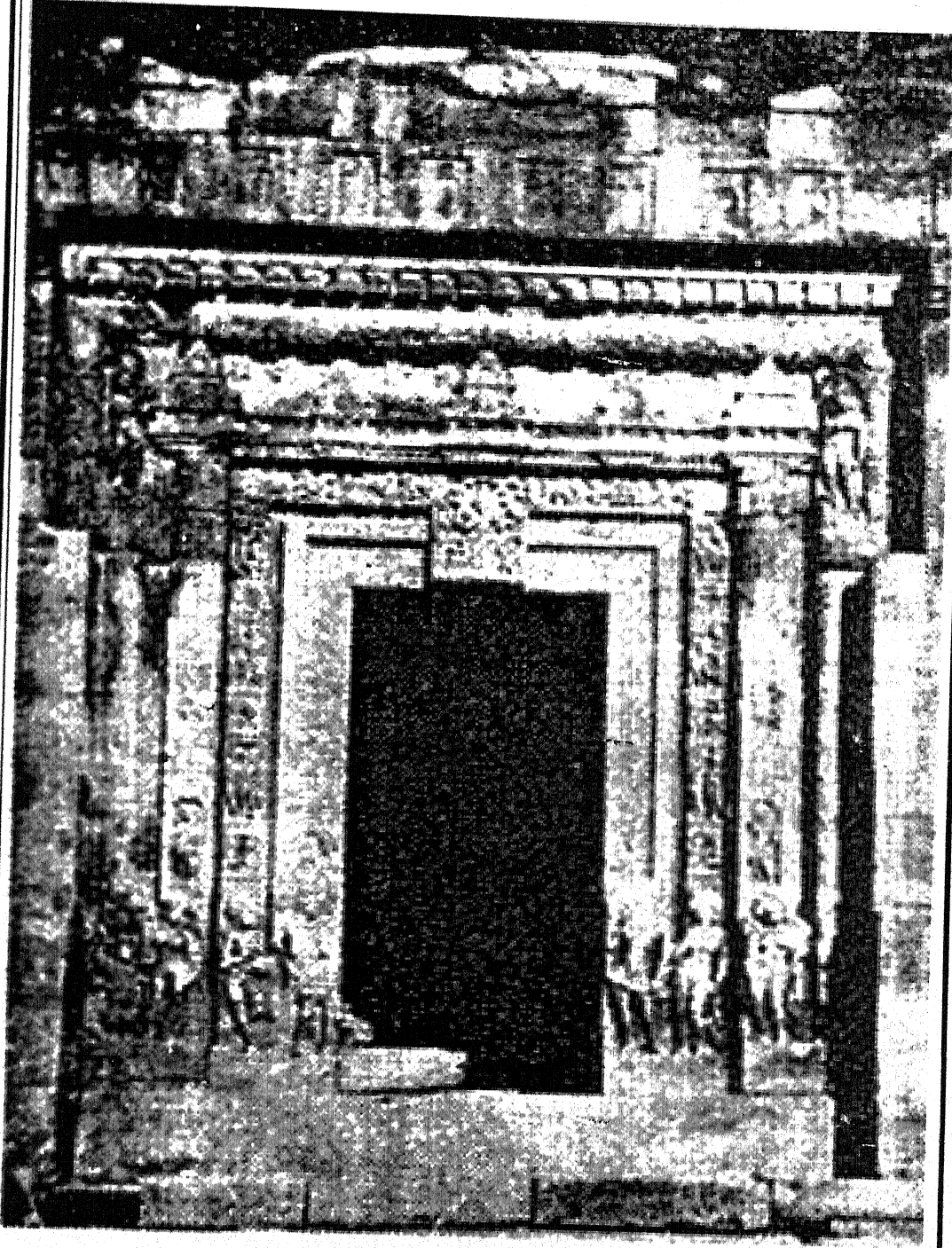
देवगढ़ : दशावतार मन्दिर, ललितपुर (उ0प्र0)

चित्र सं.–18

परिशिष्ट–19
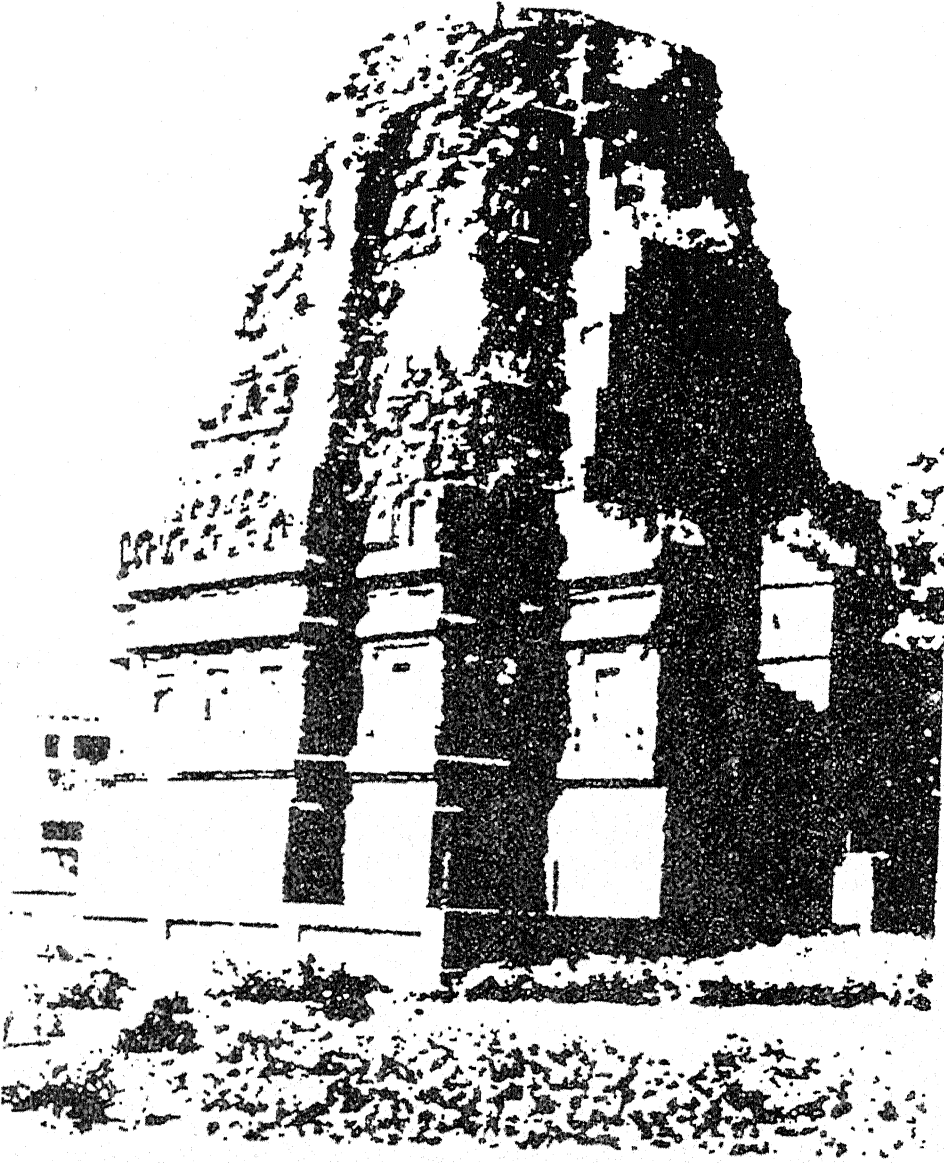
भीतरगांव : विष्णु मन्दिर, कानपुर (उ0प्र0)

चित्र सं.–19

परिशिष्ट–20
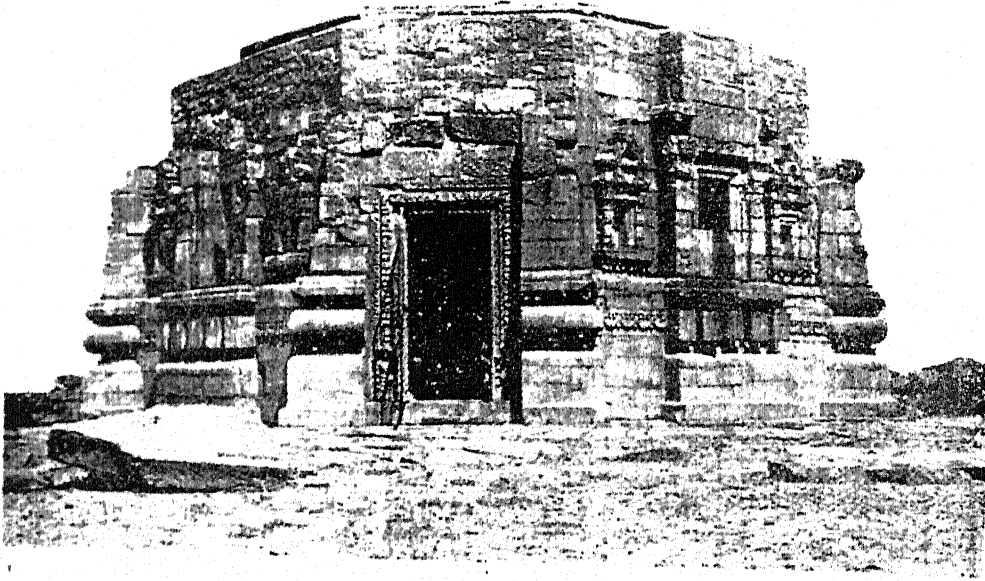
रामगढ़ : मुण्डेश्वरी मन्दिर, शाहाबाद (बिहार)

चित्र सं.–20

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

पत्र/पत्रिकायें/रिपोर्ट :

1. आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट 1924–25

2. आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट सं० 11 (1875–78) पुर्नमुद्रण, वाराणसी, 1968

3. मेमायर्स ऑफ आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया

4. ग्वालियर राज्य के पुरातत्व विभाग की वार्षिक रिपोर्ट, 1927

5. जनरल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1918

6. जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ आरियन्टल आर्ट, अगस्त–सितम्बर, 1937

7. कलादर्शन (नई दिल्ली)

8. कलादर्शन (भोपाल)

9. शोध धारा (उरई)

10. गगनांचल (नई दिल्ली)

सन्दर्भ ग्रन्थ – हिन्दी :

1. अग्रवाल, वी०एस० : भारतीय कला (पंचम पुनर्मुद्रण), पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 2007

2. अग्रवाल, पी०के० : गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, बुक्स एशिया, वाराणसी, 1994

3. अग्रवाल, एस०बी० : भारतीय चित्रकला का इतिहास, रूप शिल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000

4. अल्तेकर, ए0एस0 : गुप्तकालीन मुद्राएं, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, 1972

5. उपाध्याय, भगवत शरण : गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1969

: भारतीय कला का इतिहास, नई दिल्ली, 1981

6. उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर (द्वितीय संस्करण), बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1989

: गुप्त साम्राज्य का इतिहास (खण्ड–2), इलाहाबाद, 1952

7. उपाध्याय, यू0एन0 एवं तिवारी जी : भारतीय स्थापत्य एवं कला (पुनर्मुद्रण) मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित, दिल्ली, 2007

8. कृष्ण दास, राय : भारत की चित्रकला, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं0 2023

: भारतीय मूर्तिकला, वाराणसी, 1962

9. खरे, एम0डी0 : बाघ की गुफाएं, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1971

10. गैरोला, वाचस्पति : भारतीय चित्रकला, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1990

11. गुप्त, पी0एल0 : भारतीय वास्तुकला (संशोधित परिवर्धित संस्करण), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999

: गुप्त–साम्राज्य (द्वितीय संस्करण), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1991

12. जोशी, एन0पी0 : प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पटना, 1977

13. झा, डी0एन0 एवं श्रीमाली, के0एम0 : प्राचीन भारत का इतिहास (पुनर्मुद्रण), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 1995

14. तिवारी, एच0के0 : कला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999

15. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल प्रकाशन, पटना, 1990

16. पाण्डेय, जे0एन0 : भारतीय कला एवं पुरातत्व (दशम् संस्करण), प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 2003

17. प्रताप, रीता : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास (द्वितीय संशोधित संस्करण), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007

18. प्रसाद, ईश्वरी : प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन, मीनू पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1984

19. बाजपेयी, के0डी0 : भारतीय वास्तुकला का इतिहास (द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990

20. बाशम, ए0एल0 : अद्‌भुत भारत (संशोधित हिन्दी संस्करण), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1997

21. मिश्र, आर0एन0 : भारतीय मूर्तिकला, दिल्ली, 1978

22. राय, यू0एन0 : भारतीय कला शिल्प शास्त्र एवं प्राचीन स्थापत्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006

23. रे, एन0आर0 : मौर्य तथा मौर्योत्तर कला (हिन्दी अनुवाद, प्रथम संस्करण), नई दिल्ली, 1979

24. वर्मा, ए0के0 : भारतीय चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2000

25. शुक्त, डी0एन0 : भारतीय स्थापत्य (प्रथम संस्करण), हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, 1968

26. सिंह, ए0के0 : प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एवं चित्रकला, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1994

27. हल्दार, ए0के0 : ललित कला की धारा, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960

28. श्रीवास्तव, के0सी0 : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2003

29. श्रीवास्तव, ए0एल0 : भारतीय कला, किताब महल, इलाहाबाद, 2004

सन्दर्भ ग्रन्थ – अंग्रेजी :

1. Agarwala, V.S. : Studies in Indian Art, Varanasi, 1965

: Gupta Art, Varanasi, 1977

: The Heritage of Indian Art, New Delhi, 1964

2. Agarwala, P.K. : Gupta Temple Architecture, Varanasi, 1968

3. Altekar, A.S. : The Coines of Gupta Empier

4. Alen, I. : Catalogue of the Coines of the Gupta Dinesty, London, 1914

5. Banarjee, R.D. : Age of the Empiriel Guptas, Varanasi, 1933

6. Brown, P. : Indian Architecture, Hindu, Buddhist, Bombay, 1965

7. Cunnigham, A. : The Stupa of Bharut, Varanasi, 1962

8. Coomarswamy, A.K. : History of Indian and Indonesian Art, London, 1927

9. Day, M. : My Pilgrimage to Ajanta and Bagh, 1950

10. Fergusson, James : The History of Indian and Eastern Architecture (Part-I), London, 1910

11. Fergusson, J. and Burgees, J. : Cave Temples of India, London, 1980

12. Gupta, R.S. and Mahajan, B.D. : Ajanta, Ellora and Aurangabad Caves, Bombay, 1962

13. Havell, E.V. : Indian Sculpture and Painting, London, 1928

: A Hand Book of the Indian Art, Varanasi, 1972

14. Krishna Dev : Temples of North India, New Delhi, 1985

15. Kramrisch, Stella : Indian Sculptures, Calcutta, 1986

:The Hindu Temples (Part-2), Delhi, 1976

16. Marshale, John : The Bagh Caves in the Gwalior State, London, 1927

17. Mukerjee, R.K. : The Gupta Empier, Bombay, 1948

18. Mukerjee, A. : The Art of India, Delhi, 1966

19. Rowland, Benjamin : The Art and Architecture of India, London, 1953

20. Shivaramamurti, C. : Indian Sculptures, New Delhi, 1961

: Amarawati Sculptures in the Madras Government

Museum, Madras, 1942

: Indian Painting, Delhi, 1970

21. Singh, Madanjeet : The Cave Paintings of Ajanta, London, 1965

22. Smith, V. : A History of Fine Art in India and Ceylon, Oxford, 1911

23. Sarkar, D.C. : Silect Inskripsans, Culcutta, 1942

24. Sahani and Fogel : Catalogue of the Museum of Archaeology at Sarnath, Culcutta, 1914

25. Vorts, T. : On Unawanchangus Travels in India, London, 1905

26. Yagdani, G. : Ajanta, Hydrabad, 1933

अन्य :

1. कालिदास के ग्रन्थ

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : एस0आर0रे (सं0), कलकत्ता, 1908

ऋतुसंहार : बी0एल0 शास्त्री (सं0), निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1922

कुमारसम्भव : गंगाधर भारद्वाज (सं0), वाराणसी

मालविकाग्निमित्र : एस0 कृष्णराव (सं0),

रघुवंश : शंकर पंडित (सं0), गवरमेंट सेन्ट्रल बुक डिपो, 1897

2. वात्स्यायन का कामसूत्र : कामसूत्र–वात्स्यायन, दुर्गा प्रसाद (सं0), निर्णय सागर मंत्रालय, मुम्बई

3. शूद्रक का मृच्छवटिक : आर0डी0 करमस्कर (सं0), 1950